जैनग्रंथरत्नाकरस्थ प्रथमरत्न।

श्रीपरमात्मने नमः

स्वर्गीयकविवर भैया भगवतीदासजीकृत

ब्रह्मविलास।

जिसको

पन्नालाल बाकलीवाल

मालिक–जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय मुंबईने

श्रीयुत सज्जनोत्तम श्रेष्ठिवर्य

रावजी सखाराम दोशी,

सोलापुर निवासीकी द्रव्यसहायतासे

द्वितीय वार

सोलापुरस्थ–श्रीधर प्रेसमें, पं. वंशीधर उदयराज

के प्रबंधसे छपाकर प्रसिद्ध किया।

वीर संवत् २४५२ ई. सन् १९२६।

द्वितीय वार १००० प्रति] ❃ [मूल्य दो रुपया।

द्वितीय वारकी सूचना।

यह 'ब्रह्मविलास' वीरनिर्वाण संवत २४३० में इसी कार्यालयने जैनग्रंथरत्नाकर नामक ग्रंथमालामें प्रथम रत्न छपाया था। जिसको छपे हुये तेईस वर्ष होगये तबसे इसकी द्वितीय वार छपनेकी आवश्यकता होनेपर भी अनेक कारणोंसे आजतक छपा नहीं सके। अब सोलापुर निवासी श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य रावजी सखाराम दोशी के उत्साह और द्रव्यसहायता होनेसे इसको द्वितीय वार पुनर्मुद्रण जीर्णोद्धार कराया है। श्रीमान् पंडित वंशीधरजी न्यायतीर्थ के श्रीधर प्रेसमें छपनेसे उन्हींने संशोधन किया है जिसके लिये उनका आभार मानता हूं।

जैन समाजका हितैषीदास,

पन्नालाल बाकलीवाल।

मालिक-जैनग्रंथ रत्नाकर कार्यालय

ठि. चंदावाडी। पोष्ट-बंबई नं. ४.

ग्रंथविषयसूचि.

स्वर्गीय कविवर भैया भगवतीदासकृत

ब्रह्मविलास.

अथ पुण्यपचीसिका.

मङ्गलाचरण, छप्पय.

प्रथम प्रणामि अरहंत, बहुरि श्रीसिद्ध नमिज्जै ।
आचारज उवझाय, तासु पद वंदन किज्जै ॥
साधु सकल गुणवंत, शान्त मुद्रा लखि वंदों ।
श्रावक प्रतिमा धरन चरन नमि पाप निकंदों ॥
सम्यकवंत स्वभाव धर, जीव जगतमहिं होंहि जित ।
तित तित त्रिकाल वंदित 'भविक'[1] भ[illegible] इत शिर नाय नित ॥ १॥

श्रीजिनेंद्रस्तुति । छप्पय ।

मोहकर्म जिन हर्‍यो, कर्‍यो रागादिक नष्टित
द्वेष सबै परिहर्‍यो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित ॥
मानमूढता हरिय, दरिय माया दुखदायिन ।
लोभ लंहरगति गरिय, खरिय प्रगटी जु रसायिन ॥
केवल पद अवलंबि हुव, भवसमुद्रतारनतरन ।
त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुह पयसरन ॥ २॥

१—भविक-शब्दसे कविने अपना नाम सूचित किया है ।

श्रीसिद्धस्तुति, छप्पय.

अचल धाम विश्राम, नाम निहचै पद मंडित ।
यथाजात परकाश, वास जहँ सदा अखंडित ॥
भासहि लोकालोक, थोक सुख सहज विराजहिं ।
प्रणमहि आपु सहाय, सर्वगुणमंदिर छाजहिं ॥
इह विधि अनंत जिय सिद्धमहिं ज्ञानप्रान विलसंत नित ।
तिन तिन त्रिकाल वंदत 'भविक' भावसहित नित एकचित ॥३॥

श्रीआचार्यजीकी स्तुति. छप्पय.

पंच परम आचार, ताहि धारहिं आचारज ।
ज्ञान चार संयुक्त, करत उत्तम सब कारज ।
देत धर्म उपदेश हेत भविजीय विचारत ।
जिनवानी जो खिरत, सु तो निज हिरदै धारत ॥
कहत अर्थ परकाशकें, केवलपद महिमा लखत ।
जुगसाधुमध्य परधानपद आचारज अमृत चखत ॥४॥

श्रीउपाध्यायस्तुति. कवित्त.

द्वादशांगवानी सुवखानी वीतराग देव, जानी भव्य जीवन अनादिकी कहानी है । ताकै पाठ करिवेको भेद हृदै धरिवेको, अर्थके उचरिवेको पडित प्रमानी है ॥ पर समुझायवेको ज्ञान उपजायवेको, रूपक रिझायवेको निपुण निदानी है । याहीतें प्रमाण मानी सत्य उवझायवानी, 'भैया' यों वखानी जाकी मोक्षवधू रानी है ॥ ५ ॥

श्रीमुनिराजकी स्तुति.

दहिकै करम-अघ लहिकें परम मग, गहिकें धरम ध्यान ज्ञानकी लगन है। शुद्ध निजरूप धरै परसों न प्रीति करै, वसत शरीर पै

अलिप्त ज्यों गगन है ॥ निश्चै परिणाम साधि अपने गुणें अराधि, अपनी समाधिमध्य अपनी जगन है। शुद्ध उपयोगी मुनि राग-द्वेष भये शून्य, परसों लगन नाहिं आपमें मगन है ॥ ६ ॥

श्रावकप्रशंसा.

मिथ्यामतरीत टारी, भयो अणुव्रतधारी, एकादश भेद भारी हिरदै वहतु है। सेवा जिनराजकी है, यहै शिरताजकी है, भक्ति मुनिराजकी है चित्तमें चहतु है। वीसद्वै निवारी रिति भोजन न अक्षप्रीति, इंद्रिनिको जीति चित्त थिरता गहतु है। दयाभाव सदा धरै, मित्रता प्रगट करै, पापमलपंक हरै मुनि यों कहतु है ॥७॥

सम्यक्त्वकी महिमा.

भौथिति निकंद होय कर्मबंध मंद होय, प्रगटै प्रकाश निज आनँदके कंदको। हितको दृढाव होय विनैको वढाव होय, उपजै अंकूर ज्ञान द्वितीयाके चंदको ॥ सुगति निवास होय दुर्गतिको नाश होय, अपने उछाह दाह करै मोहफंदको। सुख भरपूर होय दोष दुख दूर होय, यातै गुणवृंद कहै सम्यक सुछंदको ॥ ८ ॥

श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाको नमस्कार, छप्पय.

प्रथम प्रणामि सुरलोक, जहां जिनचैत्य अकृत्रिम।
चैत्य चैत्य प्रति बिंब, एकसो आठ अनूपम ॥
बहुरि प्रणामि मृतलोक, बिम्ब जिनके जिंह थानक ॥
कृत्य अकृत्रिम दुविधि, लसै प्रतिमा मनमानक ॥
पाताल लोक रचना प्रबल, तिहँ थानक जिनबिंब विदित।
तहँ तहँ त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिर नाय नित ॥९॥

सम्यग्दृष्टिकी महिमा, कवित्त.

स्वरूप रिझवारेसे सुगुण मतवारेसे, सुधाके सुधारेसे, सुप्राण दयावंत है। सुबुद्धिके अथाहसे सुरिद्धपातशाहसे, सुमनके सनाहसे महाबडे महंत हैं। सुध्यानके धरैयासे सुज्ञानके करैयासे, सुप्राण परखैयासे शकती अनंत है। सबै संघनायकसे सबै बोलला-यकसे सबै सुखदायकसे सम्यकके संत हैं ॥१०॥

सवैया.

काहेको क्रूर तु क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख संकट घेरें।
काहेको मान महा शठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे॥
काहेको अंध तु बंधत मायासों, ये नरकादिकमें तुहे गेरें।
लोभ महादुख मूल है 'भैया' तु चेतत क्यों नहिं चेत सबेरे॥११॥

कवित्त.

जेते जग पाप होंहि अधरमके व्याप होंहि, तेते सब कारजको मूल लोभरूप है। जेते दुखपुंज होंहि कर्मनके कुंज होंहि, तेते सब बंधनको मूल नेहरूप है॥ जेते बहु रोग होंहि व्याधिके संयोग होंहि, तेते सब मूलको अजीरन अनूप है। जेते जग मर्ण होंहि काहूकी न शर्ण होंहि, तेते सब रूपको शरीरनाम भूप है॥१२॥

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानिरे। उपजै न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्योहार ताहि मानिरे। रावसो न रंकसो है पानीसो न पंकसो है, अति ही अटंकसो है ताहि नीके जानिरे। आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै, ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहि उर आनिरे॥१३॥

सेर आध नाजकाज अपनो करै अकाज, खोवत समाज सब

(१) अनाज, अन्न.

राजनितें अधिके। इंद्र होतो चंद्र होतो नरनागइन्द्र होतो करत तपस्या जोपै पैठि साधुमधिकें॥ इन्द्रिनको दम होतो 'यम[1] ओ नियम होतो, जमको न गम होतो ज्ञान होतो अधिकें। लोकालोक भास होतो अष्टकर्म नाश होतो, मोखमें सुवास होतो चलतो जो साधिकें॥ १४॥

सवैया.

काहेको कूर तु भूरि सहै दुख, पंचे[2]नके परपंच भखाँये[3]।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु हैं तोहि लोभ लगाये॥
तू कछु भेद न बूझतु रंचक, तोहि दगा करि देत बँधाये॥
है अबके यह दाव भलो नँर! जीत ले पंच जिनंद बताये॥१५॥
हे नॅर अंध तु बंधत क्यों निज, सूझत नाहिं कै भंग खई है।
जे अघ संचतु है नित आपको, ते तोहि सौज करैगे गई है॥
ये नरकादिकमें तोहि डारिके, देहै सजा बहु ऐसी भई हैं।
मानत नाहिं कहूं समुझाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई है॥१६॥

कवित्त.

धूमनके धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिनमाहिं जांहिं पौंन परसत ही। संध्याके समान रंग देखत ही होय भंग, दीपकपतंग जैसें काल गरसत ही॥ सुपनेमें भूप जैसें इंद्रधनुरूप जैसें, ओसबूंद धूप जैसें दुरै दरसत ही। ऐसोई भरम सब कर्म-जालवर्गणाको, तामें मूढ मग्न होय मरै तरसत ही॥ १७॥

मात्रिक कवित्त.

देख तु दृष्टि विचार अभ्यंतर, या जगमहिं कछु सांचो आह।
मात तात सुत बन्धव वनिता, इनसों प्रीति करै कित चाह।

१ दूर सब तम होतो—ऐसा भी पाठ है (२) इन्द्रियनिके (३) बहकाये. (४) 'तोहि' ऐसा भी पाठ है। (५) 'शठ' ऐसा भी पाठ है.

तन यौवन कंचन औ मंदिर, राजरिद्ध प्रभुता पद काह।
ये उपजै अपनी थितिसंजुत, तूं कित नाथ होहि शठ ताह॥१८

कवित्त.

संसारी जीवनके करमनको बंध होय, मोहको निमित्त पाय रागद्वेषरंगसों। वीतराग देवपै न रागद्वेष मोह कहूं, ताते अबंध कहे कर्मके प्रसंगसों॥ पुग्गलकी क्रिया रही पुग्गलके खेतवी, आपहीते चलै धुनि अपनी उमंगसों। जैसें मेघ परै विनु आप निज काज करै, गर्जि वर्षि झूम आवे शकति सु-छंगसों॥ १९॥

मात्रिक कवित्त.

आतम-सूवा[1] भरममहिं भूल्यो कर्म-नलिनपै वैठो आय।
विषयस्वादविरम्यो इह थानक, लटक्यो तरै ऊर्ध्व भये पाय॥
पकरै मोहमगन चुंगलसो, कहै कर्मसों नाहिं वसाय।
देखहु कि नहिं सुविचार भविक जन,जगत जीव यह धरै स्वभाय२०
तौलों प्रगट पूज्यपद थिर है, तौलों सुजस लहै परकास॥
तौलों उज्जल गुणमणि स्वच्छित, तौलों तपनिर्मलता पास॥
तौलों धर्मवचन मुख शोभत, मुनिपद ऐसे गुनहिं निवास।
जौलों रागसहित नहिं देखत, भामनिको मुखचंदविलास॥२१।

कवित्त.

जो पै चारों वेद पढे रचि पचि रीझ रीझ, पंडितकी कला में प्रवीन तू कहायो है। धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके अनेक भेद ताके पढे निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है॥ आतमके तत्त्वको निमित्त कहूं रंच पायो, तौलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसे के वतायो है

१—शुक, पोपट, राघु.

जैसें रसव्यञ्जनमें करछी फिरै सदीव, मूढतास्वभावसों न स्वाद कछु पायो है ॥ २२ ॥

सवैया.

चेतन ऐसेमें चेतत क्यों नहि, आय बनी सबही विधि नीकी।
है नरदेह यो आरज खेत, जिनंदकी बानि सु बूंद अमीकी ॥
तामें जु आप गहो थिरता तुम, तौ प्रगटै महिमा सब जीकी।
जामें निवास महासुखवास सु, आय मिलै पतियां शिवतीकी२३

कवित्त.

ग्रीषममें धूप परै तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिही उमहिकैं। वर्षाऋतु मेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत जमासा अघ आपुहीतैं डहिकैं॥ ऋतुको न दोष कोऊ पुण्य पाप फलै दोऊ, जैसें जैसें किये पूर्व तैसें रहै सहिकै। केई जीव सुखी होंहि केई जीव दुखी होंहि, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे नैकु रहिकै॥ २४ ॥

दोहा.

पुण्य ऊर्ध्व गतिको करै, निश्चै भेद न कोय।
तातें पुण्यपचीसिका, पढे धर्मफल होय ॥ २५ ॥
सत्रहसे तेतीसके, उत्तम फागुन मास।
आदि पक्ष नमि भावसों, कहै भगोतीदास ॥ २५ ॥

इति पुण्यपचीसिका ॥ १ ॥

—:*:—

अथ शतअष्टोत्तरी कवित्तबन्ध लिख्यते ।

दोहा.

ओंकार गुण अति अगम, पंचपरमेष्टि निवास ।
प्रथम तासु वंदन किये, होवत ब्रह्मविलास ॥ १ ॥

छप्पय.

द्रव्य एक आकाश, जासुमहिं पंच विराजत ।
द्रव्य एक चिद्रूप, सहज चेतनता राजत ॥
द्रव्य एक पुनि धर्म, चलन सबको सहकारी ।
द्रव्य सु एक अधर्म, रहन थिरता अधिकारी ॥
द्रव्य एक पुद्गल प्रगट, अरु अंतंक[२], पट मानिये ।
निज निज सुभावमें सब मगन, यह सुबोध उर आनिये ॥ २ ॥
जीव ज्ञानगुण धरै, धरै मूरतिगुण पुद्गल ।
जीव स्वपर करि भेद, भेद नहि लहै कर्ममल ॥
जीव सदा शिवरूप, रूपमें दर्वसु औरें ।
जीव रमै निजधर्म, धर्मपर लहै न ठौरें ।
जीव दर्व चेतनसहित, तिहू काल जगमें लसै ।
तसु ध्यान करत ही भव्य जन, पंचमि गति पलमें वसै ॥ ३ ॥
रसनाके रस मीन, प्राण पलमाहिं गमावै ।
अलि नाभा परसंग, रैन बहु संकट पावै ॥
मृग करि श्रवण सनेह, देह दुरजनको दीनी ।
दीपक देख पतंग, दृष्टि हित कैसी कीनी ॥
फरसइंद्रिवस करि परयो, कौन कौन संकट सहै ।
एक एक विषवेलिसम, पंचन सेय तु सुख चहै ॥ ४ ॥

(१) 'लहिये'—ऐसा भी पाठ है. (२) काल द्रव्य.

चेतु चेतु चित चेतु, विचक्षण बेर यह ।
हेतु हेतु तुअ हेतु, कहतु हौं रूप गह ॥
मानि मानि पुनि मानि, जनम यहु बहुरि न पावै ।
ज्ञान ज्ञान गुण ज्ञान, मूढ क्यों जन्म गमावै ॥
बहु पुण्य अरे नरभौ मिल्यो, सो तू खोवत बावरे ।
अज हू सभारि कछु गयो नहि 'भैया' कहत यह दावरे ॥५॥

कवित्त.

जैसो वीतराग देव कह्यो है स्वरूपसिद्ध, तैसो ही स्वरूप मेरो यामें फेर नाहीं है । अष्टकर्म भावकी उपाधि मोमें कहूं नाहिं, अष्ट गुण मेरे सो तौ सदा मोहि पांहि है ॥ ज्ञायक स्वभाव मेरो तिहूं काल मेरे पास, गुण जे अनन्त तेऊ सदा मोहिमाहीं हैं । ऐसो है स्वरूप मेरो तिहूं काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखते न दूजी परछांही है । ॥ ६ ॥

विकट भौसिंधु ताहि तरिवेको तारू कौन, ताकी तुम तीर आये देखो दृष्टि धरिकै । अबके संभारेतै पार भले पहुँचत हो, अबके सभारे बिन बूडत हो तरिकै ॥ बहुर्यो फिर मिलबो नाहिं ऐसो है संयोग येह, देव गुरु ग्रन्थ करि आये हिय धरिकै । ताहि तू विचारि निज आतम निहारि 'भैया' धारि परमातमाहि शुद्ध ध्यान करिकैं ॥ ७ ॥

जो पैं तोहि तरिवेकी इच्छा कछु भई भैया, तौ तौ वीतरागजूके वच उर धारिये । भौसमुद्रजलमें अनादि हीतैं बूडत हो, जिननाम नौका मिली चित्तंतैं न टारिये ॥ खेवट विचारि शुद्ध थिरतासों ध्यान काज, सुखके समूहको सुदृष्टिसों निहारिये । चलिये जो इह पथ मिलिये ज्यों तारनमें, जन्मजरामरनके भयको निवारिये ॥ ८ ॥

ज्ञानप्रान तेरे ताहि नेरे तौ न जानत हो, आनप्रान मानि आनरूप मानि रहे हो। आतमके वंशको न अंश कहूं खुल्यो कीजे, पुग्गलके वशसेती लागि लहलहे हो॥ पुग्गलके हारे हार पुग्गलके जीते जीत, पुग्गलकी प्रीति संग कैसें वहवहे हो। लागत हो धायधाय लागै न उपाय कछू, सुनो चिदानंदराय कौन पंथ गहे हो ॥ ९ ॥

छंद द्रुमिला।

इक बात कहूं शिवनायकजी, तुम लायक ठौर, कहां अटके।
यह कौन विचक्षन रीति गही, विनु देखहि अक्षनसों भटके॥
अजहूं गुण मानो तौ शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके।
चिनमूरति आपु विराजत है, तिन सूरत देखे सुधा गटके॥१०॥

सवैया.

शुद्धि[1]तें मीन पियें पय बालक, रासभ अंग विभूति लगाये।
राम कहे शुक ध्यान गहे वक भेड तिरे पुनि मूंड मुडाये॥
वस्त्र विना पशु व्योम चलै खग, व्याल तिरें नित पौनके खाये
ए तौ सबै जड रीत विचक्षन! मोक्ष नहीं विन तत्वके पाये॥११॥

कर्म स्वभावसों तांतोसो[2] तोरिकें, आतम लक्षन जानि लये हैं।
ध्यान करै निहचै पदको जिहँ, थानक और न कोऊ ठये हैं॥
ज्ञान अनंत तहां प्रतिभासत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं
और उपाधि पखारिकें चेतन, शुद्ध भये तेउ सिद्ध भये हैं॥१२॥

देखत रूप अनूप अनूपम, सुंदरता छवि रीझिकें मोहे।
देखत इन्द्र नरेन्द्र महामुनि, लच्छिविभूषण कोटिक सोहे॥

(१) जलकी शुद्धि. (२) तांतो अर्थात् तंतु।

देखत देव कुदेव सबै जग राग विरोध धरै उर दो है। ताहि विचारि विचक्षन रे मन! द्वै पल देखु तौ देखत को है॥१३॥

कवित्त.

सुनो राय चिदानंद कहो जु सुबुद्धि रानी, कहै कहा बेर बेर नेकु तोहि लाज है। कैसी लाज कहो कहां हम कछु जानत न, हमें इहां इंद्रनिको विषै सुख राज है॥ अरे मूढ विषै सुख सेये तू अनन्ती वेर, अजहूं अघायो नहि कामी शिरताज है। मानुष जनम पाय आरज सुखेत आय, जो न चेतै हंसराय तेरो ही अकाज है॥ १४॥

सुनो मेरे हंस एक बात हम सांची कहै, कहा क्यों न नीके कोउ सुखहू गहतु है। तुम जो कहत देह मेरी अरु नीके राखों, कहो कैसें देह तेरी राखी ये रहतु है॥ जाति नाहिं पांति नाहि रूपरंग भांति नाहिं, ऐसें झूठ मूठ कोउ झूंटोहू कहतु है। चेतन प्रवीनताई देखी हम यह तेती, जानि हो जु जब ही ये दुखको सहतु है॥ १५॥

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु, कौन विवसाहु, जाहि ऐसें लीजियतु है। दश द्योस विषैसुख ताको कहो केतो दुख, परिकें नरकमुख कोलों सीजियतु है॥ केतो काल बीत गयो अजहू न छोर लयो, कहूं तोहि कहा भयो ऐसे रीझियतु है। आपु ही विचार देखो कहिवेको कौन लेखो, आवत परेखो तातें कह्यो कीजियतु है॥ १६॥

मानत न मेरो कह्यो मान बहुतेरो कह्यो, मानत न तेरो गयो कही कहा कहिये। कौन रीझि रीझि रह्यो कौन बूझ बूझ रह्यो, ऐसी बातें तुमें भासों कहा कही चहिये। एरी मेरी रानी तोसों कौन है सयानी सखी, ए तो बापुरी बिरानी तू न रोस गहिये।

(१) विन. (२) दीन संशोधन।

इनसों न नेह मोहि, तोहिसों सनेह बन्यों, रामकी दुहाई कहूं तेरे गेह रहिये ॥ १७ ॥

जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर नेकु न अघातु है। चाहतु धराको धन आन सब भरों गेह, यों न जानै जनम सिरानो मोहि जातु है ॥ कालसम क्रूर जहां निशदिन घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है। देखतु है नैननिसों जग सब चल्यो जात, तऊ मूढ चेतै नाहिं लोभै ललचातु है ॥ १८ ॥

कहां है वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहां है वे चक्रवर्ति छहो खंडके धनी। कहां है वे वासुदेव युद्धके करैया वीर, कहां है वे कामदेव कामकीसी जे अनी ॥ कहां हैं वे राजा राम रावनसे जीते जिन, कहां हैं वे शालिभद्र लच्छि जाके थी घनी। ऐसे तो कईक कोटि ह्वै गये अनंती वेर, डेढ दिन तेरी वारी काहेको करै मनी ॥ १९ ॥

सुनिरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जु शरीरघर घरी ज्यों तरतु है। छिन छिन छीजे आय जल जैसें घरी जाय, ताहूको इलाज कछु उरहू धरतु है ॥ आदि जे सहे है ते तौ यादि कछु नाहि तोहि, आगे कहो कहा गति काहे उछरतु है। घरी एक देखो ख्याल घरीकी कहां है चाल, घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है ॥ २० ॥

पाय नरदेह कहो कीनों कहा काम तुम, रामारामा धनधन करत विहातु है। कैक दिन कैक छिन रहि है शरीर यह, याके संग ऐसें काज करतु सुहातु है ॥ जानत है यह घर मरवेको नाहिं डर, देख भ्रम भूलि मूढ फूलि मुसकातु है। चेतरे अचेत पुनि चेतवेको नाहिं ठार, आज कालि पींजरेसों पंछी उडजातु है ॥ २१ ॥

कर्मको करैया सो तौ जानै नाहिं कैसे कर्म, भरममें अनादिही-

को करमै करतु है। कर्मको जनैया भैया सो तौ कर्म करै नाहिं, धर्ममांहि तिहूं काल धरमें धरतु है॥ दुहूंनकी जाति पांति लच्छन स्वभाव भिन्न, कबहूं न एकमेक होइ विचरतु है। जा दिनातें ऐसी दृष्टि अन्तर दिखाई दई, ता दिनातें आपु लखि आपु ही तरतु है ॥ २२ ॥

सवैया.

जीव अकर्ता कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो। ज्ञाननिधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो॥ ज्यों जग दूध दही घृत तक्रकी, शक्ति धरै तिहुं काल बखान्यो। कोऊ प्रवीन लखै दृगसेति सु, भिन्न रहै वपुसों लपटान्यो ॥२३॥

मात्रिक कवित्त.

चेतनचिह्न ज्ञान गुण राजत, पुद्गलके वरणादिक रूप। चेतन आपरु आन विलोकत, पुग्गल छाँह धरै अरु धूप॥ चेतनकै थिरता गुण राजत, पुग्गलकै जडता जु अनूप। चेतन शुद्ध सिधालय राजत, ध्यावत है शिवगामी भूप ॥२४॥

कवित्त.

जीवहू अनादिको है कर्महू अनादिको है, भेदहू अनादिको है सर्व दोऊ दलमें। रीझवेको है स्वभाव रीझना ही है स्वभाव, रीझवेको भाव सो स्वभाव है अमलमें॥ साँचेही सो करै प्रीति साँचिसों न करी प्रीति, सांची विधि रीति सो वहाय दई पलमें। ज्ञान गुन काम कीने कामके न काम कीने, ध्यानसें सुकाम कीने वसे आप थलमें ॥ २५ ॥

दासीनके संग खेल खेलत अनादि बीते, अजहूं लों वहै बुद्धि कौन चतुराई है। कैसी है कुरूप कारी निशि जैसें अँधियारी, ओ-

१—ताका उच्चारण ह्रस्व करनेसे छंद बैठता है।

(२) 'वपुसो' की जगह 'न रहै' ऐसा भी पाठ है.

गुन गहनहारी कहा ज्ञान लई है ॥ इनहीकी संगतिसों संकट अनेक सहे, ज्ञानि सूझ भूल जाहु ऐसी सुधि गई है । आज परेखो हंस, मोहि इन बातनको, चेतनाके नाथको अचेतना क्यों भई है ॥ २६ ॥

कहां कहां कौन संग लागेही फिरत लाल आवो क्यों न आज तुम ज्ञानके महलमें । नैकहू विलोकि देखो अन्तर सुदृष्टिसेती, कैसी कैसी नीकी नारि ठाड़ी हैं टहलमें ॥ एकनतें एक बनी सुंदर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी बामकी चहलमें । ऐसी निधि पाय कहूं भूलि और काज कीजे, एतो कह्यो मानलीजे बीनती सहलमें ॥ २७ ॥

सवैया.

लाई हों लालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी बनी है । ऐसी कहूं तिहुं लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी है ॥ याहितें तोहि कहूं नित चेतन याहूकी प्रीति जु तोसों सनी है । तेरी औ राधेकी रीझि अनंत सु मोपै कहूं यह जात गनी है ॥२८॥

कायासी जु नगरीमें चिदानंद राज करै, मायासी जु रानीपै मगन बहु भयो है । मोहसो है फौजदार क्रोधसो है कोतवार, लोभसो वजीर जहां लूटिवेको रह्यो है ॥ उदैको जु काजी मानै मानको अदल जानै, कामसेवा कानवीस आइ वाको कह्यो है । ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूलि रह्यो, सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है ॥ २९ ॥

सवैया.

कौन तुम कहां आये कौनें बौराये तुमहिं, काके रस रसे कछु सुधहू धरतु हो । कौन है ये कर्म जिन्हें एकमेक मानि रहे, अजहूं न लागे हाथ भाँवरी भरतु हो । वे दिन चितारो जहां बीते हैं

अनादिकाल, कैसे कैसे संकट सहेहु विसरतु हो । तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हा; तीनलोकनाथ ह्वैके दीनसे फिरतु हो ॥ ३० ॥

देख कहा भूलि परयो देख कहा भूलि परयो, देख भूलि कहा करयो हरयो सुख सब हो । ज्ञान है अनंत ताहि अंक्षर अनन्त भाग, बल है अनंत ताहि देखो क्यों न अब हो ॥ कामवश परे तातें न-कर्म बसपरे, ऐसे दुख परे सो कहे न जाहि कब हो । बात जो नगोदकी है तहू तन गोदकी है, ऐसे अनुमोदकी है जानिहू तो तब हो ॥ ३१ ॥

सवैया.

वे दिन क्यों न चितारत चेतन, मातकी कूखमें आय बसे हो ।
ऊरध पांव लगे निशिवासर, रंच उसासनिको तरसे हो ॥
आउसंयोग बचे कहु जीवत, लोगनिकी तब दृष्टि लसे हो ।
आजु भये तुम जोवनके बस, भूल गये कितते निकसे हो ॥ ३२ ॥

कवित्त.

सहे हैं नरकदुख फेर भयो तहां रुख, बेरबेर कहै सुख में ही दुख लहा है । जोबनकी जब भरे जुवाति लगावे गरे. करै काम खोटे खरे काम आगि दहा है ॥ दिन दश बीति जाय हाथ पीट प-छिताय. जोबन न ठहराय कोजे अब कहा है । जरा आइ लागी कान भूलिगये अवसान, देखे जमके निसान परयो शोच महा है ॥ ३३ ॥

जाही दिन जाही छिन अंतर सुबुद्धि लसी ताही पल ताही समै जोतिसी जगति है । होत है उद्योत तहां तिमिर विलाइ जातु, आपापर भेद लखि ऊरधव[1] गति है ॥ निर्मल अतीन्द्री ज्ञान

(१) एक ही अर्थमे दोनो शब्द है इससे अतिशय अर्थ ध्वनित होता है ।

देखि राय चिदानंद, सुखको निधान याकै माया न जगति है जैसो शिवखेत तैसो देहमें विराजमान, ऐसो लखि सुमति स्वभा वमें पगति है ॥ ३४ ॥

मात्रिक कवित्त.

जबतैं अपनो जिउ आपु लख्यो, तबतैं जु मिटी दुविधा मनकी।
यों सीतल चित्त भयो तब ही सब, छांड दई ममता तनकी ॥
चिंतामणि जब प्रगट्यो घरमें, तब कौन जु चाहि करै धनकी।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जनकी ॥३५॥

सवैया.

केवल रूप महा अति सुंदर, आपु चिदानद शुद्ध विराजै।
अंतरदृष्टि खुलै जब ही तब, आपुहीमें अपनो-पद छाजै॥
सेवक साहिब कोउ नहीं जग, काहेको खेद करै किहँ काजै।
अन्य सहाय न कोउ तिहारे जु. अंत चल्यो अपनो पद साजै।३६॥

दोहा.

जा छिन अपने सहज ही, चेतन करत किलोल ॥
ता छिन आन न भास ही, आपहि आपु अडोल ॥ ३७ ॥

कवित्त.

पियो है अनादिको महा अज्ञान मोहमद, ताहीतें न शुधि याहि और पंथ लियो है। ज्ञानविना व्याकुल ह्वै जहां तहां गि-र्यो परै, नीच ऊच ठौरको विचार नाहिं कियो है ॥ बकियो विराने बश तनहूकी सुधि नाहिं, बूडै सब कूपमाहिं सुदामान हियो है। ऐसे मोहमदमें अज्ञानी जीव भूलि रह्यो ज्ञानदृष्टि देखो भैया महा ताको जियो है ॥ ३८ ॥

हेमंत हो जहां तहां डोलि करै चिदानद, आतम स्वभाव भूलि

(१) अन्य अर्थमें यह शब्द है।

और रस राच्यो है । इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम इन्द्रि-नके दुख देखि जाने दुख सांच्यो है ॥ कहूं क्रोध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ; अहंभाव मानि मानि ठौर ठौर माच्यो है ॥ देव तिरजंच नर नारकी गतिन फिरै, कौन कौन स्वांग धरै यह ब्रह्म नाच्यो है ॥ ३९ ॥

फरखाछद (गुजरातीभाषा.)

उहिल्या जीवडा हूं तनै शूं कहूं, वळी वळी आज तुं विषयविष सेवै।
विषयना फल अछै विषय थकी पांडुवा ज्ञाननी दृष्टि तू कां न वेवै ॥
हजी शु सीख लागी नथी कां तनै नरकना दुःख कहिवेकां न रेवै।
आव्यो एकलो जाय पण एक तू, एटलामाटे कां एटलूं खेवै ॥

कवित्त.

कोउ तौ करै किलोल भामिनीसों रीझि रीझि, वाहीसों सनेह करै कामराग अंगमें । कोउ तौ लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि, लक्ष लक्ष मान करै लच्छिकी तरंगमें । कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै, मोसमान दूसरो न देखो कोऊ जंगमे । कहै कहा 'भैया' कछु कहिवेकी बात नाहिं, सब जग देखियतु रागरस रंगमे ॥ ४१ ॥

जौलों तुम और रूप ह्वै रहे हो चिदानंद, तौलो कहूं सुख नाहिं रावरे विचारिये । इन्द्रिनिके सुखको जो मानि रहे सांचो सुख, सो तौ सब दुःख ज्ञानदृष्टिसों निहारिये ॥ ए तौ विनाशीक रूप छिनमें औरै स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु धारिये । ऐसो नरजन्म पाय नेकु तौ विवेक कीजे, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग टारिये ॥४२॥

अरे मूढ चेतन अचेतन तू काहे होत, जेई छिन जाहि फिर ग तेई तोहि आवैं ना ऐसो नरजन्म पाय श्रावकके कुल आय, [illegible]

रह्यो है विषै लुभाय ओंधी मति छाइवी ॥ आगे हू अनादिकाल वीते विपरीत हाल. अजहूं सम्हारि लाल! वेर भली पाइवी। पीछें पछतायें कछु आइ है न हाथ तेरे, तातें अब चेत लेहु भली परजायवी ॥ ४३ ॥

जीवै जग जिते जन तिन्हे सदा रैन दिन, सोचत ही छिन छिन काल छीजियतु है। धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, बडो विसतार होय जस लीजियतु है ॥ देहहू निरोग होय सुखको सयोग होइ मनवांछे भोग होय जौलों जी जियतु है। चहै वांछा पूरी होइ पैन वांछ पूरी होय, आयु थिति पुरी होय, तौलों कीजियतु है॥४४॥

मात्रिक कवित्त

जबलों रागद्वेष नहिं जीतय तबलों मुकति न पावै कोइ।
जबलों क्रोध मान मन धारत, तबलों, सुगति कहांतें होइ ॥
जबलों माया लोभ बसै उर तबलों सुख सुपनै नहिं जोइ।
ए अरि जीत भयो जो निर्मल, शिवसपति विलसतु है सोइ॥४५॥

कवित्त.

सात धातु मिलन है महादुर्गन्ध भरी, तासों तुम प्रीति करी लहत अनंद हो। नर्क निगोदके सहाई जे करन पंच तिनहीकी सीख संचि चलत सुछंद हो ॥ आठों जाम गहै काम रागरसरंगराचि, करत किलोल मानों मात ज्यों गयंद हो। कछू तौ विचार करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजू भलेजू 'भैया' भले चिदानंद हो ॥ ४६ ॥

सवैया:

ए मन मूढ कहा तुम भूले हो, हम विसार लगे परछाया।
यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोट बनाई है काया ॥

सम्यक रूप सदा गुण तेरो सु, और बनी सब ही भ्रम माया।
देखत रूप अनूप विराजत सिद्धसमान जिनंद बताया ॥ ४७ ॥

चेतन जीव निहारहु अंतर, ए सब है परकी जड काया ॥
इन्द्रकमान ज्यों मेघघटामहिं, शोभत है पै रहै नहिं छाया ॥
रैन समै सुपनो जिम देखतु प्रात वहै सब झूंट बताया।
त्यों नदिनाव सँयोगमिल्यो तुम, चेतहु चित्तमें चेतन राया ॥ ४८ ॥

देहके नेह लग्यो कहा चेतन, न्यारी ये क्यों अपनी करि मानी।
याहिसों रीझि अज्ञानमें मानिकै, याहीमें आपु न ह्वै रह्यो थानी ॥
देखतु है परतच्छ विनाशी, तऊ नहिं चेतत अंध अज्ञानी।
होहु सुखी अपनो बल फोरिकैं, मान कह्यो सर्वज्ञकी बानी ॥ ४९ ॥

सवैया।

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे।
काल अनादि वितीत भयो, अजहूं तोहि चेत न होत कहा रे ॥
भूलिगयो गतिको फिरवो अब तौ दिन च्यारि भये ठकुरारे।
लागि कहा रह्यो अक्षानिके संग 'चेतत क्यो नहिं चेतनहारे' ॥५०॥

बालक है तब बालकसी बुधि, जोबन काम हुतासन जारे।
वृद्ध भयो तब अंग रहे थकि, आये है सेत गये सब कारे ॥
पॉय पसारि पर्यो धरतीमहि, रोवै रटै दुख होत महारे।
बीती यों बात गयो सब भूलि तू 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥५१॥

बालपनै नित बालनके सॅग, खेल्यो है ताकी अनक कथारे।
जोबन आप रस्यो रमनी रस, सोउ तौ बात विदीत यथारे ॥
वृद्ध भयो तन कंपत डोलत, लार परै मुख होत विथारे।
देखि शरीरके लच्छन भैया तु, 'चेतत क्यो नहि चेतनहारे' ॥५२॥

---

(१) समस्यापूर्ति—'चेतन क्यो नहिं चेतनहारे'।

तू ही जु आय वस्यो जननी उर, तू ही रम्यो नित वालक तारे। जोवनता जु भई पुनि तोहिको, ताहीके जोर अनेक तैं मारे। वृद्ध भयो तु ही अंग रहे सब, बोलत वैन कहे तुतरारे। देखि शरीरके लक्षण भैया तु 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥ ५३॥

औरसों जाइ लग्यो हित मानिके, वाहिके, संग सुज्ञान विडारे। काल अनादि वस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लक्षण ये अरि सारे। भूलिगयो निजरूप अनूपम, मोह महा मदके मतवारे। हेरो हु दाव वन्यो अबके तुम, चेतत क्यों नहिं चेतनहारे ॥ ५४ ॥

कवित्त,

पंचनसों भिन्न रहे कंचन ज्यों काई तजे, रंच न मलीन होय जाकी गति न्यारी है। कंजनके कुल ज्यों स्वभाव कीच छुए नाहि, वसै जलमांहि पै न ऊर्धता विसारी है॥ अंजनके अंश जाके वंशमें न कहूं दीखै, शुद्धता स्वभाव सिद्धरूप सुखकारी है। ज्ञानको समूह ज्ञान ध्यानमें विराजि रह्यो, ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है ॥ ५५ ॥

चिदानंद भैया विराजत है घटमांहि, ताके रूप लखिवेको उपाय कछु करिये। अष्ट कर्म जालकी प्रकृति एक चार आठ, तामें कछु तेरी नाहि आपनी न धरिये॥ पूरबके बंध तेरे तेई आई उदै होंहि, निजगुणशकतिसों तिन्है त्याग तरिये। सिद्धसम चेतन स्वभावमें विराजत है, वाको ध्यान धरु और काहुसों न डरिये ॥ ५६ ॥

एक शीख मेरी मानि आप ही तू पहिचानि, ज्ञान दृग चर्ण आन वास वाके धरको । अनंत बलधारी है जु हलको न

भारी है, महाब्रह्मचारी है जु साथी नाहिं जरको ॥ आप महा ते-जवंत गुणको न ओर अंत, जाकी महिमा अनंत दूजो नाहि वरको । चेतनाके रस भरे चेतन प्रदेश धरे, चेतनाके चिह्न करे सिद्ध पटतरको ॥ ५७ ॥

कर्मको करैया यहै भरमको भरैया यह, धर्मको धरैया यहै शिवपुर राव है । सुख समझैया यह दुख भुगतैया यहै, भूलको भुलैया यहै चेतना स्वभाव है ॥ चिरको फिरैया यहै भिन्नको रहैया यहै, सबको लखैया यहै याको भलो चाव है। राग द्वेषके हरैया महामोखको करैया, यहै शुद्ध भैया एक आतमस्वभाव है ॥ ५८ ॥

कवित्त.

मांन यार मेरा कहा दिलकी चशम खोल, साहिब नजदीक है तिसको पहचानिये । नाहक फिरहु नाहिं गाफिल जहान बीच शुकन गोश जिनका भलीभांति जानिये ॥ पावक ज्यों बसता है अरनी[1] पखानमाहिं, तीसरोस चिदानंद इसहीमें मानिये । पंजसे गनीम तेरी उमर साथ लगे हैं खिलाफ तिसें जानि तूं आप सच्चा आनिये ॥ ५९ ॥

अबें भरमके त्योरसों देख क्या भूलता, देखि तु आपमें जिन आपने बताया। अंतरकी दृष्टि खोलि चिदानंद पाइयेगा । बाहि-रकी दृष्टिसों पौद्गलीक छाया है॥ गनीमनके भाव सब जुदे करि देखि तू, आगें जिन ढूंढा तिन इसी भांति पाया है । वे ऐब सा-हिब विराजता है दिलबीच, सच्चा जिसका दिल है तिसीके दिल आया है ॥ ६० ॥

---

१ एक प्रकारकी लकडी.

नाहक विराने ताई अपना कर मानता है, जानता तू है कि ना ही अंत तुझे मरना है। कतेक जीवनेपर ऐसे फैल करता है, सुपनेके सुखमें तेरा पूरा परना है॥ पंजसे गनीम तेरी उमरके साथ लगे, तिनोंको फरक किये काम तेरा सरना है। पाक वे ऐव साहिब दिलवीच बसता है, तिसको पहिचान वे तुझे जो तरना है॥ ६१॥

वे दिन क्यों फरामोश करता है चिदानंद, दोजकके बीच तू पुकार पडा करता था। उछालके अकाश तुझ लेते थे त्रिशूलसो आगतिससा आव तू तौ पीवते ही जरता था॥ तत्ता लोहा करिके देह तेरी तोरते थे, फिरस्तोंके आगे तू साइत भी न ठरता था जिदगानी सागरोंकी उमर तेरी हुई थी, जिसके बीच वे तू ऐसे दुःख भरता था॥ ६२॥

चेतहु चिदानंद इहां बने दोऊ फंद, कामिनी कनक छंद ऐन मैनकासी है। जिहको तू देख भूल्यो, विषयसुख मान फूल्यो मोहकी दशामें झूल्यो, ऐनमैनकासी है॥ पाये तैं अनेक वेर देखे कहा फेरि फेरि, कालकरतव हेरि ऐन मैनिकासी है। इनको तू छांडदेहु 'भैया' कह्यो मानि लेहु, सिद्ध सदा तेरो गेह ऐनमैनकासी है॥ ६३॥

कोटि कोटि कष्ट सहे, कष्टमें शरीर दहे, धूमपान कियो पै न पायो भेद तनको। वृक्षनके मूल रहे जटानमें झूलि रहे, मानमध्य भूलि रहे किये कष्ट तनको॥ तीरथ अनेक न्हये, तिरत न कहूं भये, कीरतिके काज दियो दानहू रतनको। ज्ञानविना वेर वेर क्रिया करी फेर फेर, कियो कोऊ कारज न आतमजतनको॥ ६४॥

अगम न जानतु है मूढ मिथ्या मानतु है, शास्त्र शुद्ध छोरि औ-

र पढ्यो चाहे पारसी । मिथ्यामती देव जहां शीस नावे जाय तहां, एतेपर कहे हमें ये ही पूरो पारसी ॥ निशदिन विषै सानै सुकृतको नहिं जानै, ऐसी करतूत करै पोंच्यो चाहे पारसी ॥ नर्कमाहिं परैगो सु तीस तीन भरैगो, करैगो पुकार ए कौन विपति पारसी॥६५॥

सवैया.

देव अदेवमें फेर न मान, कहै सब एक गँवार कहूं को ।
साधु कुसाधु समान गनै चित, रंच न जानत भेद कहूंको ॥
धर्म कुधर्मको एक विचारत, ज्ञान विना नर वासी चहूंको ।
ताहि विलोकि कहा करिये मन! भूलो फिरै शठ काल तिहूंको॥६६॥

दोहा.

नैननितै देखै सकल, नै ना देखै नाहि ।
ताहि देखु को देख तो, नैन झरोखे मांहि ॥ ६७ ॥

कवित्त

देखै ताहि देख जो पै देखिवेकी चाह धरै, देखे विन आप तोहि पार बडो लागै है । मोहनीद शैनमें अनादि काल सोय रह्यो, देखि तू विचारि ताहि सोवै है कि जागै है ॥ रागद्वेषसंगसों मिथ्यातरंग राचि रह्यो, अष्ट कर्म जालकी प्रतीति मानि पागै है । विषैकी कलोल हंस दैखि देखि भूलि गयो, रूप रस गंध ताहि कैसे अनुरागै है ॥ ६८ ॥

देव एक देहरेमें सुंदर सुरूप बन्यो, ज्ञानको विलास जाको सिद्धसम देखिये । सिद्धकीसी रीति लिये काहूसो न प्रीति किये पूरबके बंध तेई आइ उदै पेखिये ॥ वर्ण गन्ध रस फास जामें कछु नाहि भैया, सदाको अबन्ध याहि ऐसो करि लेखिये । अजरा अमर ऐसो चिदानंद जीव नाव, अहो मन मूढ ताहि मर्ण क्यों विशेखिये ॥ ६९ ॥

काके दोऊ राग द्वेष जाके ये करम आठ, काके ये करम आठ जाके रागद्वेख हैं। ताको नाव क्यों न लेहु? भले जानो तुम लेहु, लिखिहु बतावो लिखिवेको कहा लेख है? ॥ ताको कछु लच्छन है? देखि तू विचच्छन है, कछू उन्मान कहो? मान कह्यो भेख है। ए न कहो सुधि सुधि तो परैगो आगैं आगै, जोंप कहू इनसों मिलापको विशेख है ॥ ७० ॥

कुंडलिया.

भैया, भरम न भूलिये, पुद्गलके परसंग।
अपनो काज सवांरिये, आय ज्ञानके अंग ॥
आय ज्ञानके अंग, आप दर्शन गहि लीजे।
कीजे थिरताभाव, शुद्ध अनुभौ रस पीजे।
दीजे चउविधि दान, अहो शिव- खेत बसैया।
तुम त्रिभुवनके राय, भरम जिन[1] भूलहु भैया ॥ ७१ ॥
हंसा हँस हँस आप तुम, पूर्व संवारे फंद।
तिहिं कुदावमें बधि रहे. कैसें होहु सुछंद ॥
कैसें होहु सुछद, चंद जिम राहु गरासै।
तिमर होय बल जोर, किरणकी प्रभुता नासै ॥
स्वपरभेद भासै न देह जड लखि तजि संसा।
तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहु हंसा ॥ ७२ ॥
भैया पुत्र कलत्र पुनि, मात तात परिवार।
ए सब स्वारथके सगे, तू मनमांहि विचार ॥
तू मनमांहि विचार, धार निजरूप निरंजन।
परपरिणति सो भिन्न, सहज चेतनता रंजन ॥

(१)—जिन, निषेधार्थक शब्द है। आज्ञार्थक निषेध—मत।

कर्म भर्म मिलि रच्यो, देह जड मूर्ति धरैया ।
तासों कहत कुटुंब मोद मद माते भैया ॥ ७३ ॥
सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ ।
आये धोखे आमके, यापै पूरण इच्छ ॥
यापै पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो ।
रहे विषय लपटाय, मुग्धमति भरम भुलान्यो ॥
फलमहिं निकसे तूल स्वाद पुन कछु न हूवा ।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमरसम सूवा ॥ ७४ ॥

मात्रिक कवित्त,

आठनकी करतूत विचारहु, कौन कौन यह करत ख्याल ।
कबहूं शिरपर छत्र धरावहिं, कबहू रूप करें बेहाल ॥
देवलोक कबहूं सुख भुगतहिं, कबहू नेकु नाजको काल ।
ये करतूति करें कर्मादिक, चेतन रूप तु आप सभाल ॥ ७५ ॥
चेतन रूप विचारि विचक्षन, ए सब है परके परपंच ।
आठो कर्म लगे निशिवासर, तिन्हें निवारि लेहु किन खंच ॥
जिय समुझावत हों फिर तोकों, इनसे मग्न होउ जिनै[1] रंच ॥
ये अज्ञान तुम ज्ञान विराजत, ताते करहु न इनको रुच ॥ ७६ ॥
चेतन जाव विचारहु तो तुम, निहचै ठार रहनको कौन ।
देवलोक सुरइंद्र कहावत, तेहू करहिं अंत पुनि गौन[2] ॥
तीन लोकपति, नाथ जिनेश्वर, चक्रोधर पुनि नर हैं जौन ।
यह संसार सदा सुपनेसम, निहचे वास इहां नहीं हौन ॥ ७७ ॥
चितके अंतर चेत विचक्षन, यह नरभव तेरा जो जाय ।
पूरव पुण्य किये कहुं अति ही, तातें यह उत्तम कुल पाय ॥
अब कछु सुकृत ऐसो कर तू, जातें मरण जरा नहिं थाय ।
बार अनंती मरकें उपजे, अब चेतहु चित चेतन राय ॥ ७८ ॥

(१) जिन–मनाई । (२) गौन–गमन.

कवित्त.

अरे नर मूरख तू भामिनीसों कहा भूल्यो, विषकीसी वेल काहू ठगाको बताई है। सेवत ही याहि नेकु पावत अनेक दुःख, सुखहूकी बात कहूं सुपनै न आई है ॥ रसके कियेसों रसरोगको रमेस होइ, प्रीतिके कियेसों प्रीति नरककी पाई है। यह शुभ्र मारगमें अविवेकी ठौर ऐसा यासे कछु धोखा खाय रामकी दुहाई है ॥ ७९ ॥

मात्रिक कवित्त.

चंद्रमुखी मन धारत है जिय, अंतसमें तोकों दुखदाई ।
चारहु गतिमें यही फिरावत, तासों तुम फिर प्रीति लगाई ॥
वार अनंती नरकहिं डारिके, छेदन भेदन दुःख सहाई ।
सुबुधि कहै सुनि चेतन प्रानी, सम्यक शुद्ध गहो अधिकाई ॥८०॥

सवैया.

रे मन मूढ विचार करो, तियके संग वात सवै विगरैगी ।
ए मन ज्ञान सुध्यान धरो, जिनके संग वात सबै सुधरैगी ॥
धृ गुण आपु विलक्ष गहो पुनि, आपुहितै परतीति टरैगी ।
सिद्ध भये ते यही करनी करि, ऐसें किये शिव नारि वरैगी ॥८१॥

सोरठा

ए हो चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ।
जे नरकहिं ले जाहि, तिनहींसों राचे सदा ॥ ८२ ॥

मात्रिक कवित्त.

चेतन नींद वडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय ।
काल अनादि भये तोहि सेवत, विन जागे समकित क्यों होय ॥

निहचै शुद्ध गयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय ।
हंस अंश उज्वल है जब ही, तब ही जीव सिद्धसम सोय ॥८३॥
काल अनादि भये तोहि सोवत, अब तो जागहु चेतन जीव ।
अमृत रस जिनवरकी बानी, एकचित्त निहचै करि पीव ॥
पूरब कर्म लगे तेरे संग, तिनकी मूर उखारहु नींव ।
ये जड प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न दूध अरु घीव ॥८४॥

समान सवैया.

काल अनादितै फिरत फिरत जिय, अब यह नरभव उत्तम पायो ।
समुझि समुझि पंडित नर प्रानी, तेरे कर चिंतामणि आयो ॥
घटकी आँखैं खोलि जोंहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो ।
तिलमें तेल वास फूलनिमें, यों घटमें घटनायक गायो ॥ ८५ ॥

सवैया.

हंसको वंश लख्यो जबतें, तबतें जु मिट्यो भ्रम घोर अंधेरो ।
जीव अजीव सबै लखि लीने, सु तत्त्व यहै जिनआगमकेरो ॥
तार्क्ष्यके आवत ही अहि भागे, सु छूटि गयो भवबंधन घेरो ।
सम्यक शुद्ध गहो अपनो गुन, ज्ञानके भानु कियो है सवेरो ॥८६॥

कवित्त.

उदै करै जोपैं भानु पच्छिमकी दिशा आय, उडिके अकाश मध्य जाय कहूं धरती । अचल सुमेरु सोउ चल्यो जाय अवनीपै, सीतता स्वभाव गहै आगि महा जरती ॥ फूलै जोपै कौल कहूं पर्वतकी शिलानपै, पत्थरकी नाव चलै पानीमाहिं तरती । चलिके ब्रह्मंड जोपै तालमधि जाहि कहूं, तऊ विधनाकी लेखि लिखी नाहिं टरती ॥ ८७ ॥

सवैया.

काहेको शोच करै चित चेतन, तेरी जु बात सु आगें बनी है।
देखी है ज्ञानीतें ज्ञान अनंतमें, हानि औ वृद्धिकी रीति घनी है॥
ताहि उलंघि सकै कहि कोउ जु, नाहक भ्रामिक बुद्धि ठनी है।
याहि निवारिकें आपु निहारिके, होहु सुखी जिम सिद्ध धनी है ८८

कोउ जु शोच करो जिन रंचक, देह धरी तिंहु काल हरैगो।
जो उपज्यो जगमें दिन चारके, देखत ही पुनि सोइ मरैगो॥
मोह भुलावत मानत सांचसो, जानत याहीसों काज सरैगो।
पंडित सोई विचारत अंतर, ज्ञान सँभारिकें आपु तरैगो॥ ८९॥

काहेको देहसों नेह करै तुअ, अंतको राखी रहैगी न तेरी।
मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसों, काहुकी ह्वैके कहूं रही नेरी॥
मान कहा रह्यो मोह कुटुंबसों, स्वारथके रस लागे सगेरी।
तातें तू चेति विचक्षन चेतन, झूंटी है रीति सबै जगकेरी॥ ९०॥

कवित्त.

केवल प्रकाश होय अंधकार नाश होय, ज्ञानको विलास होय ओरलों निवाहवी। सिद्धमें सुवास होय, लोकालोक भास होय, आपु रिद्ध पास होय औरकी न चाहवी॥ इन्द्र आय दास होय अरिनको त्रास होय, दर्वको उजास होय इष्टनिधि गाहिवी। सत्व सुखराश होय सत्यको निवास होय, सम्यक भयेतें होय ऐसी सत्य साहिवी॥ ९१॥

मात्रिक कवित्त

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंसकी रीत।
क्षीर गहत छांडत जलको सँग, याके कुलकी यहै प्रतीत॥

कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीत ।
तैसें सम्यकवंत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत ॥ ९२ ॥
सिद्धसमान चिदानंद जानिके, थापत है घटके उर बीच ।
वाके गुण सब वाहि लगावत, और गुणहि सब जानत कीच ॥
ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच ।
ऐसें समकित शुद्ध करतु है, तिनतै होवत मोक्ष नगीच ॥ ९३॥

कवित्त.

निशदिन ध्यान करो निहचै सुज्ञान करो, कर्मको निदान करो आवैं नाहि फेरिकै । मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो, धर्मको प्रकाश करो शुद्ध दृष्टि हेरिकैं ॥ ब्रह्मको विलास करो, आतमनिवास करो, देव सब दास करो महामोह जेरिकैं। अनुभौ अभ्यास करो थिरतामे वास करो, मोक्षसुख रास करो कहूं तोहि टेरिकै ॥ ९४ ॥

जिनके सुदृष्टि जागी परगुणके भए त्यागी, चेतनसों लव लागी भागी भ्रांति भारी है । पचमहाव्रतधारी जिन आज्ञाके विहारी, नग्न मुद्राके अकारी धर्महितकारी है ॥ प्राशुक अहारी अट्ठाईस मूल गुणधारी, परीसह सहै भारी परउपकारी है । पर्मधर्म धनधारी सत्य शब्दके उचारी, ऐसे मुनिराज ताहि वंदना हमारी है ॥ ९५ ॥

शुभ औ अशुभ कर्म दोऊ सम जानत है, चेतनकी धारामें अखंड गुण साजे है । जीवद्रव्य न्यारो लखे न्यारे लखै आठो कर्म पूर्वीक बंधते मलीन केई ताजे है ॥ स्वसंवेग ज्ञानके प्रवानतें अ-बाधि वेदि ध्यानकी विशुद्धतासों चढे केई ताजे है। अंतरकी दृष्टि-

सों अरिष्ट सब जीत राखे, ऐसी बातैं करैं ऐसे महा ...
हैं ॥ ९६ ॥

श्रीवीर जिनस्वामीको केवल प्रकाश भयो, इंद्र सब आय ...
हां क्रिया निज कीनी है। सोचत मो इन्द्र तब वानी क्यों न ...
आज यह तो अनादि थिति भई क्यों नवीनी है॥ पूछत ...
धरपैं जायके विदेहक्षेत्र, इन्द्रभूति योग छिनमें बताय दीनी है
आय एक काव्य पढी जाय इद्रभूति पास, सुनत ही
चल्यो आय दीक्षा लीनी है ॥ ९७ ॥

छंद प्लवङ्गम

राग द्वेष अरु मोह, मिथ्यात्व निवारिये।
पर संगति सब त्याग, सत्य उर धारिये॥
केवल रूप अनूप हंस निज मानिये।
ताके अनुभव शुद्ध सदा उर आनिये॥ ९८ ॥

सवैया.

जो पट स्वाद विवेकि विचारत, रागनके रस भेद नपो है।
पंच सु वर्णके लच्छन वेदत, बूझै सुवास कुवासहिं जो है॥
आठ सपर्श लखै निज देहसो, ज्ञान अनंत कहैंगे कितो है।
ताहि विलोकि विचक्षन रे मन! द्वै पल देखतो देखत को है॥ ९९॥

कवित्त.

बुद्धि भये कहा भयो जोपैं शुद्ध चीन्हीं नाहिं, बुद्धिको तौ फल
यह तत्त्वको विचारिये। देह पाये कौन काज पूजे जो न जिन-
राज, देहकी बडाईये जप तप चितारिये॥ लच्छि आये कौन
सिद्धि रहि है न थिर रिद्धि, लच्छिको तौ लाहु जो सुपात्र मुख

रिये । वचनकी चातुरी वनाय बोले कहा होहि, वचन तौ वह
त्य शवद उचारिये ॥ १०० ॥

सवैया.

ा परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै ।
ा जगमाहिं लखै न अध्यातम, सो जिय क्यों निहचै पद पावै ॥
ी अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागरमैं फिर आवै । जो
ष खाय सो प्राण तजै, गुड खाय जो काहे न कांन विधावै ॥१०१॥

दुर्मिल सवैया, ८ सगण.

गवंत भजो सु तजो परमाद, समाधिके संगमें रंग रहो ।
हो चेतन त्याग पराइ सु बुद्धि, गहो निज शुद्धि ज्यो सुक्ख लहो ॥
वेषया रसके हित बूडत हो, भवसागरमें कछु शुद्धि गहो ।
ुम ज्ञायक हो षट् द्रव्यनके, तिनसों हित जानिके आपु कहो१०२॥

कवित्त.

देखी देह-खेतक्यारी ताकी ऐसी रीति न्यारी बोये कछु आन
उपजत कछु आन है। पंचामृत रस सेती पोखिये शरीर नित,
उपजै रुधिर मास हाडनको ठान है ॥ १०२॥ एतपर रहै नाहिं
कीजिये उपाय कोटि,छिनमें विनश जाय नाम न निशान है। एते
देखि मूरख उछाह मनमाहिं धरै, ऐसी झूठ वातनिको सांच कर
मान है ॥ १०३ ॥

कुडलिया.

सुखमें मग्न सदा रहै, दुखमें करै विलाप ।
तें अजान जानै नहीं, यहै पुन्य अरु पाप ॥
यहै पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतैं न्यारो ।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो ॥

गुण अनंत जामें प्रगट, कबहू होहि न और रूप।
तिहि पद परसे बिनु रहे, मूढ मगन संसारसुख ॥१०४॥

कवित्त

जीव जे अभव्य राशि कहे है अनंत तेउ, ताहूते अनंत गुण सिद्धके विशेखिये। ताहूते अनंत जीव जगमें जिनेश कहे, तिनहूते कर्म ये अनंत गुणे लेखिये ॥ तिनहूते पुद्गल प्रमाण है अनंत गुण, ताहूते अनंत यों अकाशको जु पेखिये। ताहूते अनन्त ज्ञान जामें सब विद्यमान, तिहूं काल परमाण एक समें देखिये ॥१०५॥

कवित्त

जेतो जल लोकमध्य सागर असंख्य कोटि, तेतो जल पियो पै न प्यास याकी गई है। जेते नाज दीपमध्य भरे है अबार ढेर, तेते नाज खायो तोऊ भूक याकी नई है ॥ तातें ध्यान ताको कर जातें यह जांय हर, अष्टादश दोष आदि ये ही जीत लई है। यहै पंथ तूहो साजि अष्टादश जाहि भाजि होय बैठि महाराज ताहि सीख दयी है ॥ १०६ ॥

कविकी लघुता, छंद कवित्त.

एहो बुद्धिवंत नर हंसो जिन मोहि कोऊ, बाल ख्याल कीनो तुम लीजियो सुधारिके। मैं न पढ्यो पिंगल न देख्यो छंद कोश कोऊ, नाममाला नामको पढो नहीं विचारिके ॥ संस्कृत प्राकृत व्याकरणहू न पढ्यो कहू, तातें मोको दोष नाहि शोधियो निहारिके। कहत भगोतीदास ब्रह्मको लख्यो विलास, तातें ब्रह्मरचना करी है विसतारिके ॥ १०७ ॥

दोहा

इति श्री शतअष्टोत्तरी, कीन्हीं निजहित काज।
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहि शिवराज ॥ १०८ ॥

इति शतअष्टोत्तरी कवित्तबंध समाप्त।

अथ द्रव्यसंग्रह मूलसहित कवित्तबन्ध लिख्यते ।

मंगलाचरण. आर्या छंद.

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

छप्पय छंद.

सकल कर्म क्षय करन, तरन तारन शिवनायक ।
ज्ञानदिवाकर प्रगट. सर्व जीवहिं सुखदायक ॥
परम पूज्य गणधरहु, ताहि पूजित—जिनराजे ।
देवानिके पति इन्द्रवृंद, वंदित छवि छाजे ॥
इह विधि अनेक गुणनिधिसहित, वृषभनाथ मिथ्यातहर ।
तासु चरणकमल वंदित भविक, भावसहित नित जोर कर ।१॥

दोहा.

तिहँ जिन जीव अजीवके, लखे सगुण परजाय ।
कहे प्रगट सब ग्रंथमें. भेदभाव समुझाय ॥ १ ॥

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भुत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

कवित्त.

जीव है सुज्ञानमयी चेतना स्वभाव धरै, जानिवो औ देखिवो अनादिनिधि पास है । अमूर्तिक सदा रहै और सो न रूप गहै, निश्चै नै प्रवान जाके आतम विलास है ॥ व्योहारनय कर्त्ता है देहके प्रमान मान, भोक्ता सुख दुःखनिको जगमें निवास है शुद्ध नै विलोके सिद्ध करमकलंक विना, ऊर्द्धको स्वभाव जाको लोक अग्रवास है ॥ २ ॥

तिक्काले चदुपाणा. इंदिय बलमाउ आणपाणा य ।
ववहारा सो जीवो, णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

तिहू काल चार प्राण धरे जगवासी जीव, इन्द्री बल आयु औ उस्वास स्वास जानियें । एई चार प्राण धरे साता मानि जीवो करे, तातें जीव नांव कह्यो विवहार मानियें ॥ निश्चै नय चेतना विराज रही शुद्ध जाके, चेतना विरुद्ध सदा याहींतें प्रमानियें । अतीत अनागत सुवर्तमान 'भैया' निज, ज्ञानप्रान शास्वतो स्वभाव यों वखानियें ॥ ३ ॥

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥

जीवके चेतना परिणाम शुद्ध राजतु है, ताके भेद दोय जिनग्रन्थनिमें गाइये । एक है सु चेतना कहावे शुद्ध दरशन, दूजो ज्ञानचेतना लखेतें ब्रह्म पाइये ॥ देखिवेके भेद चारि लीजिये हृदे विचारि, चक्षु औ अचक्षु औधि केवल सुध्याइयें । यहीं चार भेद कहे दर्शनके देखनेके, जाके परकाश लोकालोक हू लखाइये ॥ ४ ॥

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥
मइ सुइ परोक्ख णाणं, ओहो मण होइ वियल पच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा, अणोवम होइ सयलपच्चक्खम् ॥ ५ ॥

ज्ञानके जु भेद आठ ताके नाम भिन्न सुनो कुमति कुश्रुति अवधि लों विशेखिये । सुमति सुश्रुति सु औधि मनपर्जय और, के-

वल प्रकाशवान वसुभेद लेखिये ॥ मति श्रुति ज्ञान दोऊ है परोक्षवान औधि, मनपर्जय प्रत्यक्ष एकदेश पेखिये । केवल प्रत्यक्ष भास लोकालोकको विलास, यहै ज्ञान शास्वतो अनतकाल देखिये ॥ ५ ॥

अठ्ठचदुणाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

मात्रिक कवित्त.

अष्ट प्रकार ज्ञान चउ दरसन, नयव्यवहार जीवके लच्छन ।
निहचै शुद्ध ज्ञान ओ परसन, सिद्धसमान सुछंद विचक्षन ॥
केवल ज्ञान दरस पुनि केवल, राजै शुद्ध तजै प्रतिपच्छन ।
यह निहचै व्योहार कथनकी, कथा अनंत कही शिव गच्छन ॥६

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अठ्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

कवित्त

वर्ण पंच स्वेत पीत हरित अरुण श्याम, तिनहूके भेद नाना भांतिके विदीत है । रस तीखो खारो मधुरो कडुओ कषायलो, इनहूके मिले भेद गणती अतीत है ॥ तातो सीरो चीकनो रूखो नरम कठोर, हरुवो भारी सुगंध दुर्गंधमयी रीत है । मूरति सुपुद्गलकी जीव है अमूरतीक नैव्योहार मूरतीक बंधतैं कहीत है॥७॥
बध्यो है अनादिहीको कर्मके प्रबंधसेती, तातैं मूरतीक कह्यो परके मिलापसों । बंधहीमें सदा रहै समै प्रतिसमै गहै; पुग्गलसों एकमेक ह्वै रह्यो है आपमों ॥ जैसे रूपो सोनो मिले एक नांव

पाय रह्यो, तैसै जीव मूरतीक पुग्गलप्रतापसों । यहै बात सिद्ध भई जीव मूरतीकमई, बंधकी अपेक्षा लई व्योहार छापसों ॥७॥

पुग्गलकम्मादीण, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो
चेदणकम्मा णादा, सुद्धणया सुद्ध भावाणं ॥ ८ ॥

पुदगल करमको करैया है चिदानंद, व्योहार प्रवान इहां फेर कछु नाहीं है । ज्ञानावर्णी आदि अष्ट कर्मको करता है रागादिक भाव धरे आप उहि पाही है ॥ शुद्ध नै विचारिये तो राग है कलंक याके, यह तो अटंक सदा चेतनासुध ही है । अनंत ज्ञान परिणाम तिनको करैया जीव, सास्वतो सदीव चिरकाल आपमाही है ॥ ८ ॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजदि ।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्योहार नै देखिये तो पुग्गलके कर्मफल, नाना भांति सुख दुःख ताको भुगतैया है । उपजाये आपुतै ही शुभ औ अशुभ कर्म, ताके फल साता ओ असाताको सहैया है ॥ निश्चै नय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपने चेतन परिणामको करैया है । तातै भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्ध नै विलोकिये तो सबको लखैया है ॥ ९ ॥

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥ १० ॥

देहके प्रमान राजै चेतन विराजमान, लघु और दीरघ शरीरके उदैमें है । ताहीके समान परदेश याके पूरि रहे, सूक्षम औ बादर तन धरै तहां तैसो है ॥ व्यवहार नय ऐसो कह्यो समुद्घात

विना, देहको प्रमान नाहि लोकाकाश जैसो है। शुद्ध निश्चय नयसों असंख्यात परदेशी, आतम स्वभाव धरै विद्यमान ऐसो है ॥ १० ॥

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥ ११ ॥

पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय पांचो थावर कहीजिये। बेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री पंचेंद्रिय है चारो, जामें सदा चलिवेकी शकति लहीजिये ॥ तन जीभ नाक आंख कान ये ही पंच इंद्री, जाके जेते होय ताहि तैसो सर्दहीजिये। संख द्वै पिपीलि तीन भौर चार नर पंच, इन्हें आदि नाना भेद समुझि गहीजिये ॥ ११ ॥

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादरसुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

पंच इंदी जीव जिते ताके भेद दोय कहे, एकनिके मन एक मन विना पाइये। और जगवासी जंतु तिनके न मन कहूं, एकेंद्री बेइंद्री तेंद्री चौइंद्री बताइये ॥ एकेंद्रीके भेद दोय सूक्षम बादर होय, पर्यापत अपर्यापत सवै जीव गाइये। ताके बहु विस्तार कहे है जु ग्रंथनिमें, थोरेमें समुझि ज्ञान हिरदै अनाइये ॥ १२ ॥

मग्गण गुण ठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३ ॥

चउदह मारगणा चउदह गुणस्थान, होहि ये अशुद्ध नय

कहे जिनराजने । ये ही भाव जौलों तौलो संसारी कहावै जीव, इनको उलंघिकरि मिलै शिवराजने ॥ शुद्ध नै विलोकिये तौ शुद्ध है सकल जीव, द्रव्यकी उपेक्षासो अनंत छबि छाजने । सिद्धके समान ये विराजमान सबै हंस, चेतना सुभाव धरैं करैं निज काजनै ॥ १३ ॥

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥ १४ ॥

अष्टकर्महीन अष्टगुणयुत चरम सुदेह तातै कछु ऊनो सुखको निवास है । लोकको जु अग्र तहॉ स्थित है अनत सिद्ध, उतपादव्यय संयुक्त सदा जाको वास है ॥ अनंतकाल पर्यन्त थिति है अडोल जाकी, लोकालोकप्रतिभासी ज्ञानको प्रकाश है । निश्चै सुखराज करै बहुरि न जन्म धरै, ऐसो सिद्ध राशीनिको आतम विलास है ॥ १४ ॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहि सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति ॥ १ ॥

प्रकृति ओ थितिबंध अनुभागबंध परदेशबंध एई चार बंध भेद कहिये । इन्हीं चहुं बंधतै अबंध ह्वैके चिदानंद, अग्निशिखासम ऊर्द्धको सुभावी लहिये ॥ और सब जगजीव तजै निज देह जब, परभौको गौन करै तबै सर्ले गहिये । ऐसें ही अनादिथिति नई कछू भई नाहिं कही ग्रंथमांहि जिन तैसी सरदहिये ॥ १ ॥

(इति जीवके नवाधिकार)

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ॥
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ १५ ॥

अजीव दरव पंच ताके नांव भिन्न सुनो, पुद्गल औ धर्मद्र-व्यको सुभाव जानिये । अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य काल दर्ब एई, पांचो द्रव्य जगमें अचेतन बखानिये ॥ तामें पुग्गल है मूरतीक रूप रस गंध पर्शमई गुण परजाय लियें जानिये । और पंच जीवजुत कहे हैं अमूरतीक, निज निज भाव धरैं भेदी ह्वै पिछानियें ॥ १५ ॥

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाण भेद तम छाया ॥
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

शब्द बंध सूक्षम थूल औ अकार रूप, ह्वैबो मिलिबो औ विछुरिबो धूप छाय है । अंधारो उजारो औ उद्योत चंद्रकांति-सम, आतप सु भानु जिम नानाभेद छाय है ॥ पुद्गल अनन्त ताकी परजाय हू अनंत, लेखो जो लगाइये ताऽनंतानंत थाय है । एक ही समैमें आय सट प्रतिभासि रही, देखो ज्ञानवंत ऐसी पुद्गल पर्जाय है ॥ १६ ॥

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ॥
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥

जब जीव पुद्गल चलें उठि लोकमध्य, तबें धर्मास्तिकाय सहाय आय होत है । जैसें मच्छ पानीमाहिं आपुहीतें गौन करे, नीरकी सहायसेती अलसता खोत है ॥ पुनि यों नहीं जो पानी मीनको चलावे पंथ, आपुहीतें चलें तौ सहाय कोऊ नोत है । तैसें जीव पुद्गलको और न चलाय सकें, सहजें ही चलें तौ सहायको उदोत है ॥ १७ ॥

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ॥
छाया जह पहियाण, गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥

जीव अरु पुग्गलको थितिसहकारी होय, ऐसो है अधर्मद्रव्य लोकताई हद है। जैसे कोऊ पथिक सुपथमध्य गौन करे छायाके समीप आय बैठ नेकु तद है ॥ पै यों नहीं जु पंथीको राखतु बैठाय छाया, आपुन सहज बैठे वाको आश्रपद है। तैसें जीव पुद्गलको अधर्मास्तिकाय सदा, होत है सहाय 'भैया' थितिसमैं जद है ॥ १८ ॥

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयास ॥
जेण्णं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥

जीव आदि पंच पदार्थनिको सदा ही यह, देत अवकाश तातैं आकाश नाम पायो है। ताके भेद दोय कहे। एक है अलोकाकाश, दूजो लोकाकाश जिन ग्रंथनिमें गायो है ॥ जैसे कहू घर होय तामें सब वसैं लोय, तातै पच द्रव्यहूको सदन बतायो है। याहीमें सबै रहै पै निजनिज सत्ता गहै यातै परें और सो अलोक ही कहायो है ॥ १९ ॥

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये ॥
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥

जितने आकाशमाहिं रहे ये द्रव्य पच, तितने अकाशको जु लोकाकाश कहिये। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य पुद्गल-द्रव्य जीव द्रव्य एई पांचों जहाँ लहिये ॥ इनतै अधिक कछु और जो विराज रह्यो, नाम सो अलोकाकाश ऐसो सरदहिये। देख्यो ज्ञान-

तनि अनंत ज्ञान-चक्षु करि, गुणपरजाय सो सुभाव शुद्ध गहिये ॥ २० ॥

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो ॥
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥ २१ ॥

जोई सर्व द्रव्यको प्रवर्त्तावन समरथ, सोई कालद्रव्य बहुभेद-भाव राजई। निज निज परजाय विषै परिणवै यह, कालकी सहाय पाय करै निज काजई ॥ ताही कालद्रव्यके विराजि रहे भेद दोय, एक व्यवहार परिणाम आदि छाजई। दूजो परमार्थ काल निश्चय वर्त्तना सु चाल, कायतै रहित लोकाकाशलों सु गाजई ॥ २१ ॥

लोयायासपदेसे, इक्केक्के जेट्ठिया हु इक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ २२ ॥

लोकाकाशके जु एक एक परदेश विषै, एक एक काल अणु सुविराजि रहे हैं । तातैं काल अणुके असंख्य द्रव्य कहियतु, रतनकी राशि जैसें एक पुंज लहे है ॥ काहुसों न मिलै कोई रत्नजोति दृष्टि जोई, तैसें काल अणु होय भिन्नभाव गहे हैं । आदि अंत मिलै नाहिं वर्त्तना सुभावमांहि, समै पल मुहूर्त्त परजायभेद कहे है ॥ २२ ॥

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥ २३ ॥

दोहा.

जीव अजीवहि द्रव्यके, भेद सु षट्विध जान ।
तामें पंच सु कायधर, कालद्रव्य विन मान ॥ २३ ॥

संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥ २४ ॥

कवित्त.

ऐसे कह्यो जिनवर देखि निज ज्ञानमाहिं, इतने पदार्थनिको कायधर मानिये । जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य औ अकाश द्रव्य एई नाम जानिये ॥ कायके समान सदा बहुते प्रदेश धरै, तातैं काय संज्ञा इन्हैं प्रत्यक्ष प्रवानिये । निज निज सत्तामें विराजि रहे सबै द्रव्य, ऐसें भेदभाव ज्ञानदृष्टिसों पिछानिये ॥ २५ ॥

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ २५ ॥

जीवद्रव्य धर्मद्रव्य अधरमद्रव्य इन, तीनोंको असंख्य परदेशी कहियतु है । अनंत प्रदेशी नभ पुद्गलके भेद तीन, संख्याऽसंख्याऽनंत परदेशको वहतु है ॥ कालके प्रदेश एक अन्य पांचके अनेक, तातैं पंच अस्तिकाय ऐसो नाम हतु है । काल विनकाय जिनराजजूने यातैं कह्यो, एक परदेशी कैसें कायको धरतु है ॥ २६ ॥

एयपदेसोवि अणू, णाणा खंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणति सव्वण्हू ॥ २६ ॥

पुग्गल प्रमाणू जो पै एक परदेश धरै, तौ पैं बहु प्रमाणु मिलै बहु प्रदेश हैं । नानाकार खंधसों जु कितने प्रदेश होंहि, अनंत असंख्य सख्य भेदको धरेश हैं ॥ तातैं सर्वज्ञजूने पुग्गल प्रमाणु

(१) 'पयेसा' ऐसा भी पाठ है ।

प्रति, कह्यो कायधर सदा जाके सब भेश है। देखिये जु नैननिसों फुग्गलके पुंज सबै, यहै लोकमाहिं एक सासतो नरेश है ॥ २६ ॥

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवद्दद्धं ।
त खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥

जितनो आकाश पुग्गलाणु एक रोकि रह्यो, तितने आकाश को प्रदेश एक कहिये । शुद्ध अविभागी जाके एकके न होय दोय, ऐसे परमाणुके अनेक भेद लहिये ॥ अनंत परमाणूको योग्य ठौर देवेको जु, ऐसो ही अकाशको प्रदेश एक गहिये । जामें और द्रव्य सब प्रगट विराजि रहे, कोऊ काहू मिलै नाहिं ऐसो सरदहिये ॥ २७ ॥

आसवबंधणसवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ॥
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

चौपई—१५ मात्रा.

आस्रव संवर बंधको खंध, निर्जर मोक्ष पुण्यको बंध ।
पाप रु जीव अजीव सु भेव, इते पदार्थ कहों संखेव[1] ॥ २८ ॥
आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ॥
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥ २९

दुर्मिल छंद. सवैया—३२ मात्रा

जिहँ आतमके परिणामनिसों, निज कर्महि आस्रव मानि लये ।
तिहँ भावनिको यह नाम लियो, भावास्रव चेतनके जु भये ॥
दरवास्रव पुद्गलको अयबो, करमादि अनेकन भांति ठये ।
इम भावनिको करता भयो चेतन, दर्वित आस्रव ताहितैं ये ॥ २९ ॥

---

(१) सक्षेप ।

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ सविण्णेया ॥
पणपणपणदहतियचउ, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥ ३० ॥

मात्रिक कवित्त.

पांच मिथ्यात पांच है अव्रत, अरु पंद्रह परमादहिं जानि।
मन वच काय योग ये तीनो, चतु कषाय सोरहविधि मानि।
इन्है आदि परिणामजाति बहु, भावास्रव सब कहे बखानि।
तातै भावकर्मको करता, चिन्मूरत 'भैया' पहिचानि ॥३०॥
णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गल समासवदि ॥
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ[1] जिणक्खादो ॥ ३१ ॥

कवित्त.

ज्ञानावर्णी आदि अष्ट करमनिको आयवो, पुग्गलप्रमाणु मिलि नानाभांति थिते हैं। जीवके प्रदेशनिको आयके आछादतु है, कोऊ न प्रकाश लहै, असंख्यात जिते हैं॥ ऐसो द्रव्य आस्रव अनेक भांति राजतु है, ताहीके जु वसि जग वसें जीव किते है। कहे सर्वज्ञजूने भेद ये प्रत्यक्ष जाके, वेदै ज्ञानवंत जाके मिथ्यामत वीते हैं ॥ ३१ ॥

वज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो ॥
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥

चेतन परिणामसो कर्म जिते बांधियत, ताको नाम भावबंध ऐसो भेद कहिये। कर्मके प्रदेशनिको आतमप्रदेशनिमों परस्पर मिलिबो एकत्व जहां लहिय॥ ताको नाम द्रव्यबंध कह्यो जिन ग्रंथनिमें, ऐसो उभै भेद बंध पद्धतिको गहिये। अनादिहीको जीव यह बंधसेती बंध्यो है, इनहीके मिटत अनंत सुख पै[2] हिये ॥ ३२ ॥

(१) 'अणेयभेदो' ऐसा भी पाठ है। (२) 'वहिये' पाठ भी है।

पयाडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो ॥
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥ ३३ ॥

द्रव्यबंधभेद चारि प्रकृति ओ स्थितिबंध, अनुभागबंध परदेश बंध मानिये । प्रकृति प्रदेशबंध दोऊ मनबचकाय के संयोगमेती हों-हि ऐसे उर आनिये ॥ थिति बंध अनुभाग होंय ये कषायमेती, स-मुच्चै समस्या एती समुझि प्रमानिये। ऐसे बंधविधि कही ग्रंथनिके अनुसार सर्वंग विचारि सरवज्ञ भये जानिये ॥ ६३ ॥

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ॥
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणो अण्णो ॥ ३४ ॥

कर्मनिके आस्रव निरोधिवेके भाव भये, तेई परिणाम भाव-संवर कहीजिये । द्रव्यास्रव रोकिवेको कारण सु जे जे होंय, ते ते सर्व भेद द्रव्यसंवर लहीजिये ॥ याहि विधि भेद दोय कहे जिन-देव सोय, द्रव्यभाव उभै होय 'भैया' यों गहीजिये । संवरके आवत ही आस्रव न आवै कहूं, ऐसे भेद पाय परभाव त्यागि दीजिये ॥ ३४ ॥

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहापरीसहजओ य ॥
चारित्तं बहु भेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥

अहिंसादि पंच महाव्रत पंच समिति सु, मनवचकाय तीन गुप-ति प्रमानिये । धरम प्रकार दश बारह सुभावना जु, बाईस परी-सहको जीतिबो सुजानिये ॥ बहुभेद चारितके कहत न आवै पार, अति ही अपार गुण लच्छन पिछानिये । एते सब भेद भाव संवरके जानिये जु, समुचैहि नाम कहे 'भैया' उर आनिये ॥३५॥

जहकालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ॥
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥ ३६ ॥

मात्रिक कवित्त.

जे परिणाम होंहि आतमके, पुग्गल करम खिरनके हेत ।
अपनो काल पाय परमाणू, तप निमित्ततै तजत सुखेत ॥
तिहँ खिरिवेके भाव होंहि बहु, ते सब निर्ज्जरभाव सुचेत ।
पुग्गल खिरैं सुद्रव्य निर्जरा, उभयभेद जिनवर कहिदेत ॥२६॥
सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो क्खु परिणामो ॥
णेयो स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो ॥२७॥

छप्पय छंद.

सकल कर्म छय करन, भाव अंतरगत राजै ।
तिन भावनिसों कहत भाव यह मोक्ष सु छाजै ॥
दर्वमोक्ष तहाँ लहत, कर्म जहां सर्व विनासै ।
आतमके परदेश, भिन्न पुद्गलतै भासैं ॥
इहविधि सुभेद द्वै मोक्षके, कहे सु जिनपथ धारिकैं ।
यह द्रव्य भावविधि सरदहत, सम्यकवंत विचारिकैं ॥२७॥
सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ॥
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्ण पराणि पावं च ॥ २८ ॥

कवित्त.

शुभ भाव तहां जहां शुभ परिणाम होंहिं, जीवनिकी रक्षा अरु व्रतनिकों करिवो । तातें होय पुण्य ताको फल सातावेदनीय, शुभ आयु शुभ गोत बहु सुख वरिवो ॥ अशुभ प्रणामनितें जीव हिंसा आदि बहु, पापक समूह होय सुकृतको हरिवो । वेदनी असाता होय छिनकी न साता होय, आयु नाम गोत सब अशुभको भरिवो ॥ २८ ॥

इति श्रीसप्ततत्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

(१)'पुध' ऐसा भी पाठ है ।

कुंडलिया.

सब संसारी जीवको, पहिले दरशन होय।
ताके पीछें ज्ञान है, उपजैं संग न दोय॥
उपजैं संग न दोय, कोइ गुण किसि न सहाई।
अपनी अपनी ठौर, सबै गुण लहै बडाई॥
पै श्रीकेवल ज्ञानको, होय परमपद जब्ब।
तब कहुं समै न अंतरो, होंहिं इकट्ठे सब्ब॥ ४४॥

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं॥
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं॥ ४५॥

कवित्त.

पापपरिणाम त्याग हिंसातैं निकासि भाग, धरमके पथ लाग दयादान कररे। श्रावकके व्रत पाल ग्रंथनके भेद भाल, लगै दोष ताहि टाल अघनिको हररे॥ पंच महाव्रतधारि पंच हू समिती करि, तीनहू गुपति धरि तेरह भेद चररे। कहै सर्वज्ञ देव चारित्र व्योहारभेव, लहि ऐसा शीघ्रमेव बेग क्यों न तररे॥ ४५॥

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं त परम सम्मचारित्तं॥ ४६॥

अभ्यंतर बाह्य दोऊ क्रियाको निरोध तहां, परम सम्यक्त गुण चारित उदोत है। वैन अरु काय दोऊ बाहिरके योग कहे, मन अभ्यंतर योग तीनो रोध होत है॥ ताहीतैं निघट जल जात है संसाररूप, रागादिक मलिनको याही क्रम खोत है। कषाय आदि कर्मके समूहको विनाश करै, ताको नाव सम्यक चारित्रदधिपोत है॥ ४६॥

दुविहंपि मोक्खहेउ, झाणे पाउणदि ज मुणी णियमा ।
तह्मा पयत्तचित्ता, जूय ज्झाण समब्भसह ॥ ४७ ॥

मात्रिक कवित्त.

द्वै परकार मोखको कारण, नितप्रति तस कीजे अभ्यास ।
रत्नत्रयतैं ध्यानप्राप्त पुन, सुख अनंत प्रगटै निजरास ॥
ध्यान होय तो लहै रतनत्रय. छिनमें करै कर्मको नास ।
तातैं चिंता त्याग भविकजन,ध्यान करो धर मन उल्लास॥४७॥

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए ॥ ४८ ॥

छप्पय.

मोह कर्म जिन रहु, करहु जिन रागऽरु द्वेषहिं ।
इष्ट संयोगहि देख, करहु जिन राग विशेषहिं ॥
मिलहिं अनिष्टसंयोग, द्वेष जिन करहु ताहि पर ।
जो थिरता चित चहहु, लहहु यह सीख मंत्र वर ॥
ध्रुवध्यान करहु बहु विधिसहित निर्विकल्पविधि धारिकैं ।
जिमि लहहु परमपद पलकमें,त्रिविध करम अघ टारिकैं॥४८॥

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह ॥
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

चौपई १५ मात्रा

पंच परम पद कीजे ध्यान । तम अक्षरका सुनहु विधान ।
तीस पंच अक्षर गणलीजे । नमस्कार नितप्रति तिहँ कीजे ।
'णमो अरहंताणं' सात । 'णमो सिद्धाणं' पंच विख्यात ।
'णमो आयरियाणं' पंच दोय । 'णमो उवज्झायाणं' रिषि[3]होय

(१) मत। (२) 'विनान' ऐसाभी पाठ हैं। (३) सात।

'णमोलोए सव्वसाहूणं' । नवमिलि पैंतिस अक्षर गुणं ।
शोलह अक्षरको विस्तार । सुनहु भविक परमागमसार ॥
'अरहंत सिद्ध आचारज' नाम । 'उपाध्याय' नित 'साधु' प्रमाण ।
'अरहंत सिद्ध' छै अक्षर जान 'अ सि आ उ सा' पंच प्रधान ।
चतु अक्षर 'अरहंत' चितारि । द्वै अक्षर श्री 'सिद्ध' निहारि ॥
इक अक्षर 'ओं' सब ही धरै । इनको सुमरन भविजन करै ।
ये सबही परमेष्टि लखेय । अन्य सकलगुरुमुख सुनलेय ॥

दोहा.

इह विधि पंच परमपदहि, भविजन नितप्रति ध्याय ॥
इनके गुणहि चितारतै प्रगट इन्ही सम थाय ॥ ४९ ॥

णट्ठ चउघायकम्मो, दंसण सुहणाणवीरियमइओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

कवित्त.

ऐसें निज आतम अर्हतको विचारियतु, चारकर्म नष्ट गये ताहीतै अफंद है। ज्ञानदर्शवरणीय मोहिनी सु अंतराय, येही चारि कर्म गये चेतन सुछंद है॥ दृष्टिज्ञान सुख वीर्य अनंत चतुष्टै युक्त, आतमा विराजमान मानों पूर्णचंद है। परमोदारीक देह बसै राग तजै जेह, दोषनितै रह्यो सुद्ध ज्ञानको दिनंद है ॥ ५० ॥

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा ॥
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो ज्झायेह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥

ऐसे यह आतमाको सिद्ध कह ध्याइयतु, आठोंकर्म देहादिक दोष जाके नसे है। लोक ओ अलोकको जु ज्ञानवन्त दृष्टिमाहिं जाकी स्वच्छताईमें सुभाव सब लसे है॥ अनतगुण प्रगट अनतकालपरजंत, थिति है अडोल जाकी पुरुषाकार बसे है। ऐसा है स्व

रूप सिद्धखेतमें विराजमान, तैसो ही निहारि निज आपुरस रसे है ॥ ५१ ॥

दंसण णाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे ॥
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी ज्झेओ ॥ ५२ ॥

पंच जु आचरजके जानत विचार भले, ताही आचरजजूको नाम गुणधारी है । आपहू प्रवर्तै इह मारग दयाल रूप, औरें प्रवर्तावनको परउपकारी है ॥ दरसनाचार ज्ञानाचारवीर्याचार चर्णाचार तपःचारमें विशेष बुद्धि भारी है । इन्हैं आदि और गुण केतई विराज रहे, ऐसे आचारज प्रति वंदना हमारी है॥५२॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५२ ॥

मात्रक कवित्त

सम्यक दरश ज्ञान पुनि सम्यक, अरु सम्यक चारित कहिये ।
ये रतनत्रय गुण करि राजत, द्वादश अँग भेदी लहिये ॥
सदा देत उपदेश धरमको, उपाध्याय इह गुण गहिये ।
मुनि गणमाहिं प्रधान पुरुष है, ता प्रति वंदन सरदहिये ॥५३॥

दंसण णाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ॥ १४ ॥

दोहा

सम्यक दर्शन संजुगत, अरु सम्यक जहँ ज्ञान ।
तिहँ करि पूरण जो भरयो, सो चारित परमान ।
चारित मारग मोक्षको, सर्वकाल सुध होय ।
तिहँ साधत जो साधु मुनि, तिनप्रति वंदत लोय ॥५४॥

जंकिंचि विचिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ॥
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं ज्झाणं ॥ ५५ ॥

छप्पय.

जब कहुं साधु मुनीन्द्र, एक निज रूप विचारें ।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र, अघनिके पुंज विदारें ॥
जब कहुं साधु मुनीन्द्र, शुद्ध थिरतामहिं आवै ।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र त्रिविधिके कर्म बहावै ॥
इम ध्यान करत मुनिराज जब, रागादिक त्रिक टारिकै ।
तिन प्रति निश्चै कहत जिन, वँदहु सुरति सँभारिकै ॥ ५५ ॥
मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो ॥
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥

कवित्त.

मनवचकाय तिहूं जोगनिसों राचि कहुं, करो मति चेष्टा तुम इनकी कदाचिकें । बोलो जिन वैन कहूं इनसों मगन ह्वैके, चिंतो जिन आन कछु कहूं तोहि सांचिकें ॥ पर वस्तु छांडि निज रूप माहिं लीन होय, थिरताको ध्यान करि आतमसों राचिकें । देख्यो जिन जिन वान यहै उतकृष्ट ध्यान, जामे थिर होय पर्म कर्म नाच नाचिकें ॥

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाणरहधुरंधरो जह्मा ॥
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥ ५७ ॥

मात्रिक कवित्त.

जब यह आतम करै तपस्या, दाहै सकल कर्मवन कुंज ॥
श्रुतसिद्धांत भेद बहु वेदत, जपै पंच पदके गुणपुंज ॥

व्रतपचंखान करै बहु भेदै, इन संयुक्त महा सुख भुंज।
तब तिहँ ध्यान धुरंधर कहिये, परमानंद प्राप्तिमें मुंज॥५७॥

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ॥
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥

कवित्त.

सकलगुण निधान पंडितप्रधान बहु, दूषणरहित गुणभूषण-सहित हैं। तिनप्रति विनवत नेमिचंद मुनिनाथ, सोधियो जु याको तुम अर्थ जे अहित हैं॥ ग्रंथ द्रव्य सग्रह सु कीनो मै बहुतथोरो, मेरी कछु बुद्धि अलपशास्त्र जो महित है। तातैं जु यह ग्रंथ रचना-करी है कछु, गुण गहि लीज्यो एती, विनती कहित हैं॥ ५९ ॥

इति श्रीद्रव्यसग्रहग्रथे मोक्षमार्गकथन तृतीयोऽधिकार ।

दोहा–

नेमचंद मुनिनाथने, इहविध रचना कीन ॥
गाथा थोरी अर्थ बहु, निपट सुगम करदीन ॥ १ ॥

छप्पय.

ज्ञानवंत गुण लहै गहै आतमरस अम्रत ।
परसंगत सब त्याग, शांतरस वरें सु निज कृत ॥
वेदै निजपर भेद, खेद सब तजें [१]मेतन ।
छेदै भवथिति वास, दास सब करहिं अरिनगन ॥
इहविधि अनेक गुण प्रगट करि, लहै सुशिवपुर पलकमें ।
चिद्विलास जयवंत लखि, लेहु भविक निज झलकमें ॥ २ ॥

दोहा.

द्रव्यसंग्रह गुण उदधिसम किहँविधि लहिये पार ।
यथाशक्ति कछु वरणिये, निजमतिके अनुमार ॥ ३ ॥

---

(१) त्याग ।

चौपाई १५ मात्रा.

गाथा मूल नेमिचंद करी महा अर्थनिधि पूरण भरी ॥
बहुश्रुत धारी, जे गुणवंत । ते सब अर्थ लखहिं विरतंत ॥४॥
हमसे मूरख समझे नाहीं । गाथा पढे न अर्थ लखाहिं ॥
काहू अर्थ लखे बुधि ऐन । बांचत उपज्यो अति चितचैन ॥५॥
जो यह ग्रंथ कवितमें होय । तौ जगमाहिं पढै सब कोय ॥
इहिविधि ग्रंथ रच्यो सुविकाम, मानसिंह व भगोतीदास ॥६॥
संवत सत्रहसे इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस ॥
मंगल करण परमसुखधाम. द्रवसंग्रहप्रति करहुं प्रणाम ॥ ७ ॥

इति श्रीद्रव्यसंग्रहमूलसहित कवित्तबंध समाप्तः ।

अथ चेतनकर्मचरित्र लिख्यते.

दोहा.

श्रीजिन चरण प्रमाण कर, भाव भक्ति उर आन ॥
चेतन अरु कछु कर्म को, कहहुं चरित्र बखान ॥ १ ॥
सोवत महत मिथ्यात में, चहुं गति शय्या पाय ॥
वीत्यो काल अनादि तहं, जग्यो न चेतन राय ॥ २ ॥
जबही भवथिति घट गई, काल लब्धि भइ आय ॥
बीती मिथ्या नींद तहं, सुरुचि रही ठहराय ॥ ३ ॥
किये करण प्रथमहि तहां, जग्यो परम दयाल ॥
लह्यो शुद्ध सम्यक्त दरस, तोरि महा अघ जाल ॥ ४ ॥
देखहिं दृष्टि पसारिके, निज पर सबको आदि ॥
यह मेरे कौन हैं, जड़से लगे अनादि ॥ ५ ॥
तब सुबुद्धि बोली चतुर, सुन हो ! कंत सुजान ॥
यह तेरे संग अरि लगे, महासुभट बलवान ॥ ६ ॥

कहो सुबुद्धि किम जीतिये, ये दुश्मन सब घेर ॥
ऐसी कला बताव जिमि, कबहुं न आवें फेर ॥ ७ ॥
कह सुबुद्धि इक सीख सुन, जो तू मानें कंत ॥
कै तो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्रीभगवंत ॥ ८ ॥
सुनिके सीख सुबुद्धिकी, चेतन पकरी मौन ॥
उठी कुबुद्धि रिसायके, इह कुलक्षयनी कौन? ॥ ९ ॥
मै बेटी हूं मोह की, ब्याही चेतनराय ॥
कहौ नारि यह कौन है, राखी कहां लुकाय ॥ १० ॥
तब चेतन हँस यों कहै, अब तोसों नहिं नेह ॥
मन लाग्यो या नारिसों, अति सुबुद्धि गुणगेह ॥ ११ ॥
तबहिं कुबुद्धि रिसायके, गई पिताके पास ॥
आज पीय हमें परिहरी, तातें भई उदास ॥ १२ ॥

चौपाई (मात्रा १५)

तबहिं मोह नृप बोलै बैन । सुन पुत्री शिक्षा इक ऐन ॥
तू मन में मत ह्वै दलगीर । बांध मँगावत हों तुमतीर ॥ १३ ॥
तब भेजो इक काम कुमार । जो सब दूतनमें सरदार ॥
कहो बचन मेरो तुम जाय । क्योंरे अंध अधर्मी राय ॥ १४ ॥
ब्याही तिय छांडहि क्यों क्रूर कहां गयो तेरो बल सूर ॥
कै तो पांय परहु तुम आय । कै लरिबे को रहहु सजाय ॥ १५ ॥
ऐसे बचन दूत अवधार । आयहु चेतन पास विचार ॥
नृपके बैन ऐन सब कह । सुनके चेतन रिस गह रहे ॥ १६ ॥
अब याको हम परपें नाहिं । निजबल राज करें जगमाहिं ॥
जाय कहो अपने नृप पास । छिनमें करूं तुम्हारो नास ॥ १७ ॥

तुन मन में करहु गुमान । हम बहु है यह एक सुजान ॥
कर आवहु असवारी वेग । मैं भी बांधी तुम पर तेग ॥ १८ ॥
ऐसे बचन सुनत विकराल । दूत लखै यह कोप्यो काल ॥
उन से तो जब ह्वै है रारि । तबलों मोह न डारै मारि ॥ १९ ॥
तब मन में यह कियो विचार । अबके जो राखै करतार ॥
तो फिर नाम न इनको लेउं । चेतनको पुर सब तज देउं ॥ २०
तब बोले चेतन राजान । जाहु दूत तुम अपने थान ॥
फिर जिन आवहु इहिपुर माहिं । देखेसों बचिहो पुनि नाहिं ॥२१॥

सोरठा.

दूत लख्यो प्रस्ताव, मन में तो ऐसी हुती ॥
भलो बन्यो यह दाव, आयो राजा मोह पै ॥ २२ ॥
कही सबै समुझाय, बातें चेतन राय की ॥
नवहि न तुमको आय लरिबे की हामी भरै ॥ २३ ॥
सुनके राजा मोह, कीन्हीं कटकी जीव पै ॥
अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गँवार को ॥ २४ ॥
सज सज सबही शूर, अपनी अपनी फौज ले ॥
आये मोह हजूर, अबै महल्लो लीजिये ॥ २५ ॥

चौपाई.

राग द्वेष दोउ बडे बजीर । महा सुभट दल थंभन वीर ॥
फौज माहिं दोऊ सरदार । इनके पीछें सब परवार ॥ २६ ॥
ज्ञानावरण बोलै यों बैन । मो पै पंच जाति की सैन ॥
जिन जग जीव किये सब जेर । राखे भवसागर में घेर ॥२७॥

(१) आक्रमण । (२) हाजिरी । (३) कैद ।

ज्ञान उपरि मेरै सब लोग । ताहींतै न जगैं उपयोग ॥
जानें नहीं 'एक अरु दोय' । सो महिमा मेरी सब होय ॥ २८ ॥
तब दुर्शनावरण यों कहै । जगके जीव अंध ह्वै रहैं ॥
सो सब है मेरो परशाद । नौ रस वीर करें उनमाद ॥ २९ ॥
तवै वेदनी बोलै धीर । मो पै दोय जातिके वीर ॥
महा सुभट जोधा बलसूर । तीर्थंकर के रहें हुजूर ॥ ३० ॥
और जीव[1] वपुरे किहि मात । मेरी महिमा जग विख्यात ॥
मोको चाहें चहुं गति माहिं । मैं छिन सुख द्यों छिन दुख पांहि॥ ३१॥
आयु कर्म बोलै बलवंत । सिद्ध विना सब मेरे जंत ॥
मैं राखों तोलौ थिर रहै । नातरु पंथ मौत की गहै ॥ ३२ ॥
मो पैं चार जातिके सूर । तिनसों युद्ध करै को क्रूर ॥
चहुंगति मे मेरे सब दास । मैं त्यागों तब शिवपुरवास ॥ ३३ ॥
नामकर्म बोलै गहि भार । मो विन कौन करै संसार ॥
मैं करता पुदगल को रूप । तामें आय बसै चिद्रूप ॥ ३४ ॥
वीर तिरानवे मेरे संग । रूप रसीले अरु बहुरंग ॥
इनसों सरभर[2] को जिय करै । तोहू न छाँडै मर अवतरै ॥ ३५ ॥
गोत्रकर्म लै द्वय अवसार । ऊंचनीच जिनको परवार ॥
सूर वंशको यहै स्वभाव । छिनमें रंक करै छिन राव ॥ ३६ ॥
अंतराय अपनों दलसाज । पंच सुभट देखौ महाराज ॥
सबके आगें ये असवार । रणमें युद्ध करें निरधार ॥ ३७ ॥
कर हथियार गहन नहिं देहिं । चेतनकी सुधि सब हर लेहिं ॥
ऐसे सुभट एक सौ वीस । तिनके गुणजानें जगदीश ॥ ३८ ॥

---

(१) जीव । (२) बराबरी ।

इनके सुभट सात सरदार । परदल गंजन जबर झुझार ॥
तबै मोह नृप अति आनंद । देखे सब सुभटनके वृन्द ॥ ३९ ॥

प्लवङ्गम छन्द.

राग द्वेष द्वय मित्र, लिये तब बोलिकै ।
तुम ल्यावहु मम फौज, भवनत्रय खोलिकै ॥
वीस आठ असवार, बडे सब सूरमा ।
अरिपै यों चल जाहिं, नदी ज्यों पूरमा ॥ ४० ॥
राग द्वेष तहँ चले, जहां सब सूर हैं ।
लाये तुरत बुलाय, प्रभू ये हजूर हैं ॥
तब बोले मुख बैन जीवपर हम चढे ।
सुनके श्रवनन शब्द, सूरके मन बढे ॥ ४१ ॥
फौजें किन्हीं चार, बडे विसतारसो ।
निज सेवक सरदार, किये भुजभारसों ॥
पहिली फौजें सात, सुभट आगें चले ।
दूजी फौजें चार, चारतें सब भले ॥ ४२ ॥
दै धौंसा सब चढे, जहां जेतन बसै ।
आये पुरके पास, न आगें को धसै ॥
चेतनको गढ जोर, देख सब थरहरे ।
सात सुभट तब निकस, सबन आगें अरे ॥ ४३ ॥

दोहा.

उदय दूत सुधि मोहकी, कही जीवपै जाय ॥
कहां रहे तुम बैठको ?, फौज लागी आय ॥ ४४ ॥

सोरठा.

सुनके चेतन राय, चित चमक्यो कीजे कहा ॥
लीन्हों ज्ञान बुलाय, कहो मित्र कहा कीजिये ॥४५॥
तब बोलै यों ज्ञान, इनसों तो लरिये सही ॥
हरिये इनको मान, आपनी फौजें साजिये ॥ ४६ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

तब चेतन बोले सुख बीर । तुमसे मेरे बडे वजीर ॥
तो मो कहँ चिंता कछु नाहिं । निर्भय राज करूं जगमाहिं ॥४७॥
इनपै फौज करहू तय्यार । लेहु संग सब सूर जुझार ॥
तबै ज्ञान सब सूर बुलाय । हुकम सुनायो चेतनराय ॥ ४८ ॥
है तयार गहहू हथियार । कर्मनसों अब करनी मार ॥
सुनिकर सूर खुशी अतिभये । अंतमुहूरतमें सज गये ॥ ४९ ॥
लेहू हाजिरी ज्ञान वजीर । कैसे सुभट बने सब बीर ॥
तबै ज्ञान देखै सब सैन । कौन कौन सूरा तुम ऐन ॥ ५० ॥
प्रथम स्वभाव कहै मैं वीर । मोहि न लागें अरिके तीर ॥
और सुनहु मेरी अरदास । छिनमें करूं अरिनको नास ॥ ५१ ॥
तब सुध्यान बोलै सुख बैन । हुकम तुह्मारे जीतों सैन ॥
मो आगें सब अरि नसि जाय । सूर देख जिम तिमर पलाय ॥५२॥
पुनि बोलो चारित बलवंत । छिनमें करहुं अरिन को अंत ॥
अरु विवेक बोलैं बलसूर । देखत मोह नसहिं अरिकूर ॥ ५३ ॥
तब संवेग कहै कर मान । अरि कुल अबहिं करूं घमसान ॥
तब उत्तम बोले समभाव । मै जीते बांके गढराव ॥ ५४ ॥

तौ अरि बपुरे हैं किह मात । तम सम चूर करों परभात ॥
बोलै वच संतोष रसाल । मो आगें वे कहा कँगाल ॥ ५५ ॥
धीरज कहै मोसन को सूर । पलमे करहुँ अरिन चकचूर ॥
सत्य कहै मोमैं बहु जोर । मैं जीतों वैरी कठिन कशोर ॥ ५६ ॥
उपशम कहत अनेक प्रकार । मै जीते वैरी सरदार ॥
दर्शन कहत एकही बेर । जीतों सकल अरिनको घेर ॥ ५७ ॥
आये दान शील तप भाव । निश्चय विधि जानें जिनराव ॥
पार न पावहुँ नाम अपार। इहि विधि सकल सजे सरदार ॥५८॥
तबहिं ज्ञान चेतनसों कही । फौज तुह्मारी सब बन रही ॥
चेतन देखै नयन उघार । यह तौ फौज भई तय्यार ॥ ५९ ॥
अबहीं मेरे सूर अनंत । ल्यावहु ज्ञान हमारे मंत ॥
शक्ति अनन्त लसें निज नैन । देखो प्रभू तुह्मारी सैन ॥ ६० ॥
अनंत चतुष्टय आदि अपार । सेना भई सबै तयार ॥
जुरे सुभट सब अति बलवंत । गिनती करत न आवै अन्त॥६१॥

दोहा.

कहै ज्ञान चेतन सुनहु, रोष करहु जिन रंच ॥
एक बात मुहि ऊपजी, कहूं बिना परपंच ॥ ६२ ॥
कहै जीव कहि ज्ञान तू, कैसी उपजी बात ॥
तुम तो महा सुबुद्धि हो, कहते क्यों सकुचात ? ॥६३॥
तबहिं ज्ञान निःशंक ह्वै, बोले प्रभु सन बैन ॥
चाकर एकहि भेजिये, गहि लावे सब सैन ॥६४॥

सोरठा.

कहा विचारो मोह, जिहँ ऊपर चढत हो ॥
भेजहु सेवक सोह, जीवीत लावै पकरके ॥ ६५ ॥

कहै चेतन सुनज्ञान, वह घेरयो पुर आयके ॥
यह कहो कौन सयान, रहिये घरमें बैठके ॥ ६६ ॥
सूरनकी नहिं रीति, अरि आये घरमें रहै ॥
कै हारे कै जीति, जैसी है तैसी बनै ॥ ६७ ॥
कहै ज्ञान सुनि सूर, तुम जो कहा सो सांच है ॥
कहा विचारो कूर, जिहँ ऊपर तुम चढत हो ॥ ६८ ॥

पद्धरिछंद (१६ मात्रा)

तब जीव कहै सुनिये सुज्ञान । तुम लायक नाहीं यह सयान ॥
वह मिथ्यापुरको है नरेश । जिहँ घेरे अपने सकल देश ॥ ६९ ॥
जाके सँग सूरा है अनेक । अज्ञान भाव सब गहें टेक ॥
मंत्रीसुर रागद्वेष हेर । छिनमे सब सेना करहिं जेर ॥ ७० ॥
संशय सो गढ जाके अटूट । विभ्रम सी खाई जटाजूट ॥
विषया सी रानी जासु गह । सुत जाके सूर कषायसेह ॥ ७१ ॥
सैनापति चारों है अनंत । जिहँ घेरो अव्रतपुर महंत ॥
व्रतमानी लीन्हों देश छीन । परमत्तहिं दोही आय कीन ॥७२॥
इहि विधी सब घेरे देश जेह । चढ आई फौजे लगी तेह ॥
तातें नृप आप अनंत जोर । बल जासुन पारावर और ॥ ७३ ॥
आयुध जाके भ्रम चक्र हाथ । बहु धारा जास उपाधि साथ ॥
महा नाग फॉस विद्या अनेक । बँध सत्तर कोडा कोडि टेक॥ ७४ ॥
वाणादिक महा कठोर भाव । जिहिं लगै बचत नहिं रंक राव ॥
इहि विधी अनेक हथियार धार । कहूं नाम कहत नहीं लहै पार ७५॥
यह मोह महा बलवत भूप । तुम ज्ञाता जानत सब स्वरूप ॥
कैसें कर इन सों बचौ जाव ? । तुम स्यानें है चूकौ न दाव ॥७६॥

सोरठा.

तब बोले यों ज्ञान, जिय ! तुमने सांची कही ॥
पै मेरे अनुमान, तुम क्यों जानो बात यह ॥ ७७ ॥
कहै जीव सुन मित्र मैं वीतक अपनो कहूं ॥
तू धरि निश्चयचित्त, सुनहु बात विस्तारसों ॥ ७८ ॥

चौपाई.

यही मोह नृप मोहि भुलाय । निजपुत्री दीन्ही परनाय ॥
ताकी याद मोह कछु नाहिं । काल अनादि याहिविधि जाहिं ७९
मेरी सुधि बुधि सब हर लई । मोहि न सुरत रंच कहुं भई ॥
इहि कीन्हो जैसो नट कीस । विविध स्वांग नाच्यौ निशिदीस ८०
चौरासी लख नाम धराय । कबहु स्वर्ग नरक लै जाय ॥
कबहू करै मनुष तिरजंच । लखेन जाहिं याके परपंच ॥ ८१ ॥
जडपुर को मुह कियो नेरश । मै जानो सब मेरो देश ॥
तब मै पाप किये इहि संग । मानि मानि अपने रस रंग ॥
तब मै वसौ मोहके गेह । तातें सब विधि जानों येह ॥ ८२ ॥
कहो कहां लों बहु विसतार । थोरेमैं लख लेहु विचार ॥ ८३ ॥

सोरठा.

तब बोलै इम ज्ञान, यह परमारथ मैं लह्यौ ॥
अब तुम सुनहु सुजान, एक हमारी वीनती ॥ ८४ ॥
सेवक भेजो एक, जो अतिही बलवंत हो ॥
तब रहै तुह्मरी टेक, मेरे मन ऐसी वसी ॥ ८५ ॥
कहै जीव सुन ज्ञान, विना विचारे क्यों कहो ॥
मोह महा बलवान, ताकी पटतर कौन है ? ॥ ८ ॥

चौपाई.

कहै ज्ञान सुन जीव नरेश। तुम सम और न कोउ राजेस॥
सुख समाधि पुर देश विशाल। अभय नाम गढ अतिहि रसाल ८७
तामें सदा वसहु तुम नाथ। निशि दिन राज करो हित साथ॥
सुमति आदि पटरानी सात। सुबुधि क्षमा करुणा विख्यात८८॥
निर्जर दोय धारणा एक। सात आदि अरु सखी अनेक॥
बांधव जहां धरमसे धीर। अध्यातम से सुत वरबीर॥८९॥
मित्र शांति रस वसे सुपास। निजगुण महल सदा सुख वास॥
ऐसे राज करहु तुम ईश। सुख अनंत विलसहु जगदीश ९०
तुम पै सूर मैनको जोर। तिनको पार नहीं कहुं ओर॥
तुम अपने पुर थिर है रहो। वचन हमारो सत सरदहो॥९१॥
आज्ञा करहु एक जन कोय। सज सेना वह आगे होय॥
कहै जीव तुम सुनहु सुज्ञान। तुह्मरे वचन हमें परवान॥ ९२॥
हम आज्ञा यह तुमको करी। लेहु महूरत अति शुभ घरी॥
चढहु कर्म पै सज हथियार। सूर वडे सब तुह्मरी लार॥ ९३॥
हमतुममें कछु अन्तर नाहिं। तुम हममें हम हैं तुम माहिं॥
जैसे सूर तेज दुति धरै। तेज सकल सूरज दुति करै॥९४॥
इहि विधि हम तुम परमसनेह। कहत न लहिये गुणको छेह॥
ज्ञान कहै प्रभु सुन इक वैन। शिक्षा मोहि दीजियो ऐन॥९५॥
तुम तो सब विधि हौ गुन भरे। पै अरि सों कबहूं नहिं लरे॥
तातें तुम रहियो हुशियार। युद्ध वडे अरिसों निरधार॥९६॥

वेशरी छंद [१६ मात्रा]

ज्ञान कहै विनती सुन स्वामी तुम तौ सबके अन्तर जामी॥
कहा भयो न करी मै रारी। अब देखो मेरी तरवारी ॥९७॥

वे सब दुष्ट महा अपराधी । किहं विधि सैन जाय सब साधी ॥
मेरे मन अचिरज यह ज्ञाना । पै मै जानों तुम बलवाना ॥ ९८॥

दोहा.

ज्ञान कहै चेतन सुनो, तुमसे मेरे नाथ ॥
कहा विचारो क्रूर यह, गहि डारों इक हाथ ॥ ९९ ॥
तब चेतन ऐसें कहै, जीत तुह्मारी होय ॥
मारि भगावों मोहको, रागद्वेष अरि दोय ॥ १०० ॥

करिखा छंद

ज्ञान गंभीर दलबीर संग ले चढ्यो, एक तें एक सब सरस सूरा । कोटि अरु संखिन न पार काऊ गने, ज्ञानके भेद दल सबल पूरा॥ १०१ ॥सिपहसालार सरदार भयो भेद नृप, अरिन दलचूर यह बिरद लीनो । हाथ हथियार गुणधार विस्तार बहु, पहिर दृढभाव यह सिलह कीनो ॥१०२॥ चढत सब वीर मन धीर असवार हैं, देखि अरिदलनको मान भंजै । पेखि जयवंत जिनचंद सबही कहै, आज पर दलनिको सही गंजै ॥१०३॥ अतिहि आनंदभर वीर उमगंत सब, आज हम भिडनको दाव पायो ॥ युद्ध एमो विकट देखि अरि थर हरें, होय हम नाम दिन दिन सवायो ॥ १०४ ॥

मुरहठा छंद.

जो ज्ञानकी सनै
बज्झहि व युद्ध यह मोह भागे; चेतन गुण गावंत ॥
सूर मोरचे बहुरि सन्मुखभयो, लर अरिदलपै धावंत ॥
ए सन्मुख जेह ॥
रुपत्वनके गेह ॥ १०५॥

) चौथा गुणस्थान । (२) सेनापति
क्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व
आ लोभ ये ७ प्रकृतियें । (५) उपशांत को

दोहा.

नाम विवेक सु दूनको, लीन्हों ज्ञान बुलाय ॥
जाय कहहु वा मोहको, भलो चहै तो जाय ॥ १०६ ॥
जो कबहूं टेढो वकै, तो तुम दीज्यो सोंम[1] ॥
धिक धिक तेरे जनमको, जो कछु राखै हौंस ॥ १०७ ॥
तेरो बल जेतो चलै, तेतो कर तू जोर ॥
वे चाकर सब जीवके, छिनमें करि हैं भोर[2] ॥ १०८ ॥
ज्ञान भलाई जानकें, मैं पठयो तोहि पास ॥
चेतनको पुर छांडदे, जो जीवनकी आस ॥ १०९ ॥

सोरठा.

चल्यो विवेक कुमार, आयो राजा मोहपै ॥
कह्यो वचन विस्तार, भलो चहै तो भाजिये ॥ ११० ॥
सुनके वचन हुताश, कोप्यो मोह महा बली ॥
छिनमें करिहों नाश, मो आगें तुम हो कहा ॥ १११ ॥

दोहा.

एकहि ज्ञानावर्णीने, तुम सब कीने जेर ॥
इतनी लाज न आवही, मुखहिं दिखावहु फेर ॥ ११२ ॥
काल अनंतहिं कित रहे, सो तुम करहु विचार ॥
अब तुममें कूवत भई, लरिवेको हुश्यार ॥ ११३ ॥
चौरासी लख स्वांगमें, को नाचत हो नाच ॥
वा दिन पौरुष कित गयो, मोहि कहो तुम सांच ॥ ११४ ॥
इतने दिनलों पालिके, मैं तुम कीने पुष्ट ॥
तातें लरिवेको भये, गुण लोपी महा दुष्ट ॥ ११५ ॥

(१) शपथ (२) नष्टभ्रष्ट.

जाहु जाहू पापी सबै, चेतनके गुण जेह ॥
मोको मुख न दिखावहू, छिनमें करिहों खेह ॥ ११६ ॥
मोहवचन ऐसे स्रये, सुनिके चल्यो विवेक ॥
आयो राजा ज्ञान पैं, कही बात सब एक ॥ ११७ ॥
वह क्योंहू भाजै नहीं, गहि बैठ्यो यह टेक ॥
लरिहों फोजें जोरिके, बोलै दूत विवेक ॥ ११८ ॥
दूतवचन सुनिकें हँसो, ज्ञान बली उरमाहिं ॥
देखो थिति पूरी भई, क्योंहू माने नाहिं ॥ ११९ ॥
लेहु सुभट तुम बेग ही, अव्रतपुर[1] अभिराम ॥
रह्यो कूर वह घेरिकें, मेंटहु वाको नाम ॥ १२० ॥
चढी सैन सब ज्ञानकी, सूर बीर बलवन्त ॥
आगे सेनानी[2] भयो महा विवेक महंत ॥ १२१ ॥

करिखा छंद.

आय सन्मुख भये मोहकी फौजसों, भिडनके मतैं सब सूर गाढे । देखि तब मोह अति कोह[3], मनमें कियो, सुभट ललकीर रहे आप ठाडे ॥१२२॥ सूर बलवंत मदमत्त महा मोहके, निकसि सब सैन आगे जु आये ॥ मारि घमसान महा जुद्ध बहु रुद्ध करि, एक तै एक सातों सवाये ॥ १२३ ॥
वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिके सुभट सातों गिराये । कुमक जो ज्ञानकी सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा समाये देखि तब युद्ध यह मोह भाग्यो तहां, आय अव्रतहिं सब सूर जोरे, बांधकर मोरचे बहुरि सन्मुखभयो, लरनकी हौंसतें कैर निहोरे १२५

(१) चौथा गुणस्थान । (२) सेनापति । (३) क्रोध । (४) मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व और अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ ये ७ प्रकृतियें । (५) उपशांत की । (६) चौथे गुणस्थानमें ।

चौपाई १५ मात्रा.

इहविधि मोह जोरि सब सैन । देशव्रत[1]पुर बैठो ऐन ॥
करै उपाय अनेक प्रकार । किहिविधि ल्यों अव्रतपुर मार॥१२६॥
सुभट सात तिनको[2] दुख करै । तिन विन आज निकसि को लरै॥
जो होते वे सूर प्रधान । तो लेते अव्रतपुर थान ॥ १२७ ॥
ऐसे वचन मोह नृप कहे । रागद्वेष तब अति उर दहे ॥
हा हा ! प्रभु ऐसें क्यों कहो । एक हमारी शिक्षा लहो ॥१२८॥
सुभट तुह्मारे हैं वहु वीर । तिनमें जानहु साहस धीर ॥
तिनको आज्ञा प्रभुजी देहु । इहविधि अव्रतपुर तुम लेहु॥१२९॥
तबै मोहनृप बीडा धरै । कोन सुभट आगे है लरै ॥
तब बोले अप्रत्याख्यान । मैं जीतूं अबके दलज्ञान ॥ १३० ॥
कहै मोहनृप किहिविधि वीर । मोहि बतावहु साहस धीर ॥
बोले अप्रत्याख्यान प्रकास । सुनहु प्रभू मेरी अरदास ॥१३१॥
मै अव्रतपुरमें छिप जाउ । चेतन ज्ञान बसै जिह ठाउ ॥
संग लेय अपने सब[3] लोग । नानाविधि परकासों भोग ॥१३२॥
उनके[4] उपसम वेदकभाव । क्षयउपसम वसुभेद लखाव ॥
इनकै थिरता वहु कछु नाहीं । छिन सम्यक छिन मिथ्यामाहि १३३
क्षायक एक महा जे जोर । पहिले प्रगटै ना उहि ओर ॥
तोलों देखहु मैं क्या करों । व्रतके भाव[5] सर्वथा हरों ॥१३४॥
अव्रतमें उपशम हट जाय । जिहँकर पापपुण्य मन लाय ॥
जर वह मगन होय इहि संग । जीति लेहु तवही सरवंग॥१३५॥

---

(१) पचमगुणस्थानमें । (२) चिंता । (३) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ । (४) चेतनके । (५) श्रावकके व्रत ।

इहिविधि जीतो परदल जाय । जो मोहि आज्ञा दीजे राय ॥
तबै मोहनृप चिंतै सही । यह तौ बात भली इन कही ॥१३६॥
सिद्धि करहु अप्रत्याख्यान । लेहु सूर सँग जे बलवान ॥
इहिविधि आयो पुरके माहिं । ज्ञानीविन जानै कोउ नाहिं॥१३७॥
निजविद्या परकाशै सही । नानाविध क्रोधादिक लही ॥
ताके भेद अनेक अपार । कौलों कहिये बहु विस्तार ॥ १३८ ॥

दोहा.

इहिविधि सब ही सैन ले, आयो अप्रत्याख्यान ॥
अव्रतपुरमें बैठिके, करै व्रतनिकी हान ॥१३९॥
ताके पीछें मोहनृप, आयो सब दल जोरि ॥
महासुभट सँग सूर ले, चढ्यो सु मूंछ मरोरि ॥१४०॥
कुमन जसूस बुलायके, मोह कहै यह बात ॥
तुम सुधि लावहु वेगही, कहां सुभट वे सात ॥१४१॥
कुमन खबरि पहिले दई, वे मूर्छित उन पास ॥
कछु विद्या कीजे यहां, ज्यों वे लहै प्रकास ॥१४२॥
मोह करे विद्या त्रिविध, रागद्वेष लै संग ॥
उनमें कछु चेतन भये, कछु रहे मूर्छित अंग ॥१४३॥
सुमन दूत सब ज्ञानपै, कही मोहकी बात ॥
कहॉ रहे तुम बैठि बह, सुभट जिवावत सात ॥१४४॥
जो वे सात जिये कहूं, तौ तुम सुनहो बात ॥
चेतनके सब सुभट को, करि है पलमें घात ॥१४५॥
मोह जु फौजें जोरिके, आयो करि अभिमान ॥
तुमहू अपने नाथको, खबरि पठावहु ज्ञान ॥१४६॥

(१) पांचवें गुणस्थानमें. (२) गुप्त दूत. (३) उपशमरूप.

तवै ज्ञान निज नाथपै, भेज्यो सम्यक वेग ॥
कहो बधाई जीतकी, अरु पुनि यह उद्वेग॥ १४७ ॥
वहुरि मिले वे दुष्ट सव, आये पुरके माहिं ॥
करिवेकी मनसा करें, भागनकी वुधि नाहिं ॥ १४८ ॥
इह विधि सम्यकभाव सव, कही जीवपै जाय ॥
सुनिकें प्रवल प्रचंड अति, चढ्यो सुचेतनराय ॥ १४९ ॥
महा सुभट वलवंत अति, चढ्यो कटक दल जोर ॥
गुण अनत सव संग है, कर्म दहनकी ओर ॥ १५० ॥
आय मिले सव ज्ञानसे, कीन्हों एक विचार ॥
अवकें युध ऐसो करहु, वहुरि न वचै गॅवार ॥ १५१ ॥
चढे सुभट सव युद्धको, सूरवीर वलवंत ॥
आये अंतर भूमिमहिं, चेतन दल सुअनत ॥ १५२ ॥

सोरठा

रोपि महारण थंभ, चेतन धर्म सुध्यानको ।
देखत लगहि अचंभ, मनहिं मोहकी फौजको ॥ १५३ ॥

दोहा.

दोऊ दल सन्मुख भये, मच्यो महा संग्राम॥
इत चेतन योधा वली, उतै मोह नृप नाम ॥ १५४॥

करिखा छंद.

मोहकी फौजसों नाल गोले चलें, आय चैतन्यके दलहि लागें ॥
आठ मल दोष[१] सम्यक्त्वके जे कहे, तेहि अव्रतमें मोह दागें १५५
जीवकी फौजसों प्रवल गोले चलें. मोहके दलनिको आय मारें ॥
अंतर[२] विरागके भाव वहु भावता, ताहि प्रतिभास ऐसो विचारें १५६

(१) शंकादि । (२) आंतरिक वैराग्य ।

बहुरि पुनि जोर करि अतिहि घन घोर करि, मोहनृपचंद्र बातें चलावै। दोष घट आय तन अतिहि उपजाय घन जीवकी फौज सन्मुख बगावै॥ हंसकी फौजतें बान घमसानके, गाजते बाजते चले गाढे॥ मोहकी फौजको मारि ललकारिकरि, हेयोपादेयके भाव काढे॥ १५८
अष्ट मदगजानिके हलकै हकारि दै, मोहके सुभट सब धगत सूरे॥ एकतें एक जोधा महा भिडत हैं, अतिहि बलवंत मदमंत पूरे १५९
जीवकी फौजमें सत्य परतीतके, गजनिके पुज बहु धसत माते॥ मारिके मोहकी फौजको पलकमें, करत घमसान मदमत्त आते १६०
मार गाढी मचै, सुभट कोउ ना बचै, घाव विन खाये, दुहुं दलनमाहीं एकतें एक योधा दुहुं दलनमें, कहते कछु ऊपमा बनत नाहीं १६१
सात जे सुभट मूर्छित पडते भये, मोहने मंत्रकरि सब जिवाये॥ आय इहिं जुद्धमाहिं तिनहूको रुद्ध करि. जीवको जीति पीछे हटाये॥
मिश्र[1] सासदनेहिं[2] परसमिथ्यातमहि[3], उमगिकै बहुरि अव्रतहिं[4] आयो मारि घमसान अवसान खोये त्वरित, सातमें एक ढूंढ्यो न पायो॥

सोरठा.

इहविधि चेतन राय, युद्ध करत है मोहसों ॥
और सुनहु अधिकाय, अबहिं परस्पर भिडत है ॥१६४॥

मरहठा छंद.

रणसिंगे बज्जहिं, कोउ न भज्जहिं करहिं, महा दोउ जुद्ध ॥
इत जीव हंकारहिं, निजपरवारहिं, करहु अरिनको रुद्ध ॥
उत मोह चलावे, तब दल धावे, चेतन पकरो आज ।
इहविधि दोऊ दल, में कल नहि पल, करहिं अनेक इलाज १६५

(१) तीसरे गुणस्थानमें। (२) दूसरे सासादन गुणस्थानमें। (३) पहिले मिथ्यात्वगुणस्थानको भी स्पर्श करके। (४) चौथे गुणस्थानमें।

चौपाई १५ मात्रा

मोह सराग भावके बान । मारहिं खैंच जीवको तान ॥
जीव वीतरागहिं निज ध्याय । मारहिं धनुषबाण इहि न्याय १६६
तबहिं मोहनृप खड्ग प्रहार । मारै पाप पुण्य दुइ धार ॥
हंस शुद्ध वेदै निज रूप । यही खरग मारैं अरि भूप १६७
मोह चक्र ले आरत ध्यान । मारहि चेतनको पहिचान ॥
जीव सुध्यान धर्मकी ओट । आप बचाय करै परचोट ॥१६८॥
मोह रुद्र बरछी गहि लेय । चेतन सन्मुख घाव जु देय ॥
हंस दयालुभावकी ढाल । निजहिं बचाय करहि परकाल १६९
मोह अविवेक गहै जमदाढि । घाव करै चेतनपर काढि ॥
चेतन ले यमधर सुविवेक । मारि हरै वैरि की टेक ॥१७०॥
चेतन क्षायक चक्र प्रधान वैरिन मारि करहि घमसान ॥
अप्रत्याख्यान मूरछित भये । मोह मारि पीछें हट गये ॥१७१॥
जीत्यो चेतन भयो अनंद । वाजहिं शुभ बाजे सुखकंद ॥
आय मिले अव्रतके भोग । दर्शनप्रतिमा आदि संयोग १७२
व्रतप्रतिज्ञा दूजो भाव । तीजो मिल्यो सामायिक राव ॥
प्रोषधव्रत चौथो वलवंत । त्याग सचित व्रत पंच महंत॥१७३॥
षष्ठ सुब्रह्मचर्य दिन गाय । सप्तम निशिदिन शील कहाय ॥
अष्टम पापारंभ निवार । नवमों दशपरिग्रह परिहार ॥१७४॥
किंचित ग्राही परम प्रधान । महासुबुधि गुणरत्न निधान ॥
दशमों पापरहित उपदेश । एकादशम भवन तज वेश॥ १७५॥
प्राशुक लेय अहार सुजैन । कहिय उदंड विहारी ऐन ॥
ये एकादश भूप अनूप । आय मिले श्रावकके रूप ॥ १७६ ॥

(१) धर्मध्यान । (२) रौद्रध्यानरूपी बरछी ।

चेतन सबसों करै जुहार । परम धरम धन धारन हार ॥
निज बल हंस करहिं आनंद । परम दयाल महा सुखकंद ॥१७७

दोहा.

इहि विधि चेतन जीतकें, आयो व्रतपुरमाहिं ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, नेकु विराधै नाहिं ॥ १७८ ॥
जिह जिह थानक काजके, कीन्हें सब विधि आय ॥
अब भावै वैराग्य तह, सुनहु 'भविक' मन लाय ॥१७९॥
ढाल–पंचमहाव्रत मन धरो सुनि प्रानीरे,
छांडि गृहस्थावास आज सुनि प्रानीरे ॥ टेक ॥

तैं मिथ्यात्वदशा विषै सुन प्रानीरे, कीन्हे पाप अनेक आज, सुनि प्रानीरे ॥ भव अनंत जे तै किये सुनि प्रानीरे, रागद्वेष पर संग, आज सुनि प्रानीरे ॥१८०॥ ज्ञान नेकु तोको नहीं सुनि० तब कीने बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ ते दुख तोको देय हैं सु० जो चूको अब दाव, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८१ ॥ तैं अव्रतमें जे किये सुनि० । व्रत विना बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ देश विरतमें पांच जे सुनि० । थावरहिंसा लागि आज सुनि प्रानीरे १८२ किये कर्म तैं अतिघने सुनि० । क्यों भुगते विनजाय,आज सुन प्रानीरे मोह महाहितु तैं कियो,सुनि०वह तोको दुख देय आज सुनि प्रानीरे। ॥१८३॥ जिह जिय मोह निवारियो सुनि० । तिह पायो आनंद, आज सुनि प्रा० ॥ मनवच काया योगसों सुनि० । तैं कीने बहु कर्म आज सुनि प्रानीरे ॥१८४॥ वे भुगतेविन क्यों मिटैं सुनि० जे बांधे तें आप, आज सुनि प्रानीरे॥जो तू संयम आदरै सुनि० । करै तपस्या घोर आज सुनि प्रानीरे॥१८५॥तो सब कर्म खपायकें सुनि०

---

(१) पांचवा गुणस्थान ।

पावे परम अनंद आज सुनि प्रानीरे ॥ पूरब बांधे कर्म जो सुनि० सब छिनमें खप जांहिं आज सुनि प्रानी रे ॥ १८६ ॥ इहिविधि भावन भावतै सुनि०। आयो अति वैराग आज सुनि प्रा०। जिय चाहै संयम गहौं सुनि०। अब कौन विधि होय, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८७ ॥

दोहा.

जिय चाहै संयम गहौं, मोह लेन नहिं देय ॥
बैठ्यो आगें रोकिकें, अब प्रमत्तपुर[1] जेय ॥ १८८ ॥
सुभट जु प्रत्याख्यान को, करिकें आगें थान ॥
बैठ्यो घाटी रोकिकें, मोह महा अज्ञान ॥ १८९ ॥
केतक चाकर जोर जे, भेजे व्रतहिं छिपाय ॥
ते चेतनके दलनमें, निशदिन रहैं लुकाय ॥ १९० ॥
कबहूं परगट होंय कछु, कबहू वे छिपि जांहि ॥
इहिविधि सेना मोहकी, रहै सु इहिदल माहिं ॥ १९१ ॥

चौपाई.

मोह सकल दलसों पुरद्वार। आय अस्यो सँग ले परिवार ॥
चेतन देशविरतपुर[2] मांहि। आगें पांव धरे कहुं नाहिं ॥ १९२ ॥
मोह किये परपंच अनेक। गहिवेको गहि बैठ्यो टेक ॥
जो चेतन आवै पुर[3] मांहि। तौ राखों गहिकें निज पांहि ॥१९३॥
वहुरि न निकसन छिन इक देहुं। डारि मिथ्यात्व वैर निज लेहुं ॥
यह चेतन मोसों युध करै। जो आवै अबके कर तरै ॥ १९४ ॥
तौ फिर याको ऐसे करों। सुधि बुधि शक्ति सबहि परिहरों
इहिविधि मोह दगाकी बात। रचना करहि अनेक विख्यात ॥१९५

(१) छट्ठे गुणस्थानमें। (२) पांचवां गुणस्थान। (३) छट्ठे गुणस्थानमें

सुमन खबर सब जियको दई । एक बात सुनि हो प्रभु नई ॥
मोह रचै फंदा बहु जाल तुम मति भूलहु दीन दयाल ॥१९६॥
अबके जो पकरैगो तोहि । तौ फिर दोष न दीजो मोहि ॥
मैं सब खबर नाथ तुम दई । जैसी कछु हकीकत भई ॥ १९७ ॥
तबै हंस इहपुरको पंथ । चल्यो उलंघि महा निर्ग्रंथ ॥
अप्रमत्तपुरकी लइ राह । जिह मारग पंथी बहु राह ॥ १९८ ॥
रोके आय जु प्रत्याख्यान । जुद्ध करे बिन देहुं न जान ॥
चेतन कहै जाहु शठ दूर । छिनमें मारि करूं चकचूर ॥ १९९ ॥
तबहिं जोर नानाविधि करै । चेतन सन्मुख ह्वैकें लरै ॥
चेतन ध्यानधनुष कर लेय । मूर्छित कर आगें पग देय ॥२००॥
गिरयो जु प्रत्याख्यान कुमार । चेतन पहुँच्यो सप्तम द्वार ॥
मोह कहै देखहु रे जोर । यह तो किये जातु है भोर ॥२०१॥
पकरहु सुभट दौरि इह जाहि । ल्यावहु पकरि बेगि मोहि पांहि ॥
चाल्यो धर्मराग बलवीर । विकथा वचन दूसरो धीर ॥ २०२ ॥
निद्रा विषय कषाय सु पंच । पकरि हंस ले आये घंचँ ॥
चेतन देखै यह कह भई । मोहि पकरि ले आये दई ॥ २०३ ॥
यह परमत्त देश है सही । मोकों सुमन अगाऊ कही ॥
अब कछु ऐसो कीजे काज । जासों होय अप्रमत राज ॥२०४॥
अट्ठाईस मूलगुण धरै । बारह भेद तपस्या करै ॥
सहै परीसह बीसरु दोय । उभय दया पालै मुनि सोय ॥२०५॥
इहिविधि लहे अप्रमत आय । तबै मोह निज दास पठाय ॥

(१) छठे गुणस्थानको (२) सातवें गुणस्थानकी (३) प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय । (४) उपशमरूप । (५) प्रत्याख्यानावरणका उपशम होगया । (६) सातवें गुणस्थानमें । (७) गला ।

पकरि भगावैं करि बहु मान । तब हंस चिंतै निज ज्ञान ॥२०६॥
यह तो मोह करै बहु जोर । मोको रहन न दे उहि ओर ॥
अब याको मैं भिथिल करौं । अप्रमत्तमें तब पग धरौं ॥ २०७॥
तबहि हंस थिरता अभ्यास । कीन्हीं ध्यान अगनिपरकाश ॥
जारीं शक्ति मोह की कई । महा जोरतैं निर्बल भई ॥ २०८ ॥
हंस लयो निजबल परकास । कीन्हों अप्रमत्तपुर वास ॥
सुभट तीनि मोहके दूरे । अरु परमाद सबै अप हरे ॥२०९
तज्यो अहार विहार विलास । प्रथम करण कीनो अभ्यास ॥
सप्तम पुरके अंत अनूप । करै कर्ण चारित्र स्वरूप ॥२१०॥
आवै संग मोह दल लेय । पै कछु जोर चलै नहिं जेय ॥
अब जिय अष्टम पुर पग धरै । मोह जु संग गुप्त अनुसरै ॥२११॥
करहि करण चेतन इह ठांव । दूजो कह्यो अपूरब नाव ॥
जे कबहूं न भये परिणाम । ते इहि प्रगटे अष्टम ठाम ॥२१२
अब चेतन नवमें पुर आय । जामें थिरता बहुत कहाय ॥
पूरब भाव चलहि जे कहीं । ते इह थानक हालै नहीं ॥२१३॥
इहिविधि करण तीसरो करै । तबै मोह मन चिंता धरै ॥
यह तो जीते सब पुर जाय । मेरो जोर कछू न बसाय ॥२१४॥

दोहा.

मोह सेन सब जोरिकें, कीन्हों एक विचार ॥
परगट भये बनै नहीं, यह मारै निरधार ॥ २१५ ॥
तातै सुभट लुकाय तुम, पुरनके मांहि ॥
जो कहुं आवै दावमें, तो तुम तजियो नाहिं ॥ २१६ ॥

---

(१) नरक तिर्यंच और देव आयुको । (२) उपसमित किये । (३) अनिवृत्त करन नामके नवमें गुण स्थानमें ।

हम हू शकति छिपायकें, रहैं दूरलों जाय ॥
जो जीवत बचि है कहू, तौ तुम मिलि है आय ॥ २१७॥
नगर ग्राम उपशांत पुर, तह लों मेरो जोर ॥
जो ऐहै मो दावमें, तौ मैं करिहों भोर ॥ २१८ ॥
तुम हू सब जन दौरिकें, आय मिलहुगे धाय ॥
तब या हंसहिं पकरिके, देहैं भली सजाय ॥ २१९ ॥
इह विचार सब सैनसों, कीन्हों मोह नरेश ॥
रहे गुप्त दबि दबि सबै, कर कर उपसम भेश ॥ २२० ॥

चौपाई.

चेतन चर चलाय चहुं ओर । पकरहिं मूढ मोहके चोर ॥
जन छत्तीस गहे ततकाल । मूर्छित करके चले दयाल ।२२१।
सूक्षमसांपरायके[1] देश । आय कियो चेतन परवेश ॥
तिह थानक इक लोभ कुमार । जीत कियो मूर्छित तिह बार २२२
आगे पांव निशंकित धरै । अब वैरी मोसों को लरै ॥
मै जीते सब कर्म कठोर । इहि विधि धर्‍यो निशंकित जोर २२३
जब उपशांत मोहके देश । हद्द माहिं कीन्हों परवेश ॥
तबही मोह जोर निज कियो। चेतन पकरि उलटि इत दियो२२४
आये सुभट मोहके दौर । मूर्छित छिपे रहे जिह ठौर ॥
पकरि हंस मिथ्यापुर माहिं। ल्याये क्रूर सबहि गहि बांह ।२२५।
इहां न कछु निहचै यह बात । उत्कृष्ट कहिये विख्यात ॥
ओरहु थानक है बहु जहां। चेतन आय बसत है तहां ॥ २२६ ॥
उपशम समकित जाको होय । मिथ्यापुर लों आवे सोय ॥
क्षायक सम्यकवंत कदाचि। उपसम श्रेणि चढै जो राचि ।२२७

---

(१) दशवां गुणस्थान ।

तौ वह चौथे पुरलों आय । गिरकर रहै इहां ठहराय ॥
औरों थानक उपसम गहै । दोऊ सम्यकवंत जु रहै ॥२२८॥
अब मिथ्या पुरमें दुख देय । मोह वली चेतनको जेय ॥
नाना विध संकट अज्ञान । सहै परीषह यह गुणवान ॥ २२९ ॥
पंच मिथ्यात्व भेद विस्तार । कहत न सुरगुरु पावे पार ॥
सादि मिथ्यात्व नाश जिय लहै । ताके उदै कौन दुख सहै॥२३०
सो दुख जानहिं चेतनराम । कै जाने केवल गुणधाम ॥
कहत न लहिये पारावार ।दुख समुद्र अति अगम अपार ॥ २३१
इहि विधि सहै करमकी मार । अब चेतन निज करै सम्हार ॥
द्रव्यरु क्षेत्र काल भव भाव । पंचहु मिले बन्यो सब दाव ॥२३२

दोहा.

ध्यान सुथिरता राखि के, मनसों कहै विचार ॥
संगति इनकी त्यागिके, अब तु थिर हो यार ॥ २३३ ॥

ढाल— चेत मन भाईरे ॥ एदेशी—

माया मिथ्या अग्र शौच, मन भाईरे, तीनो सल्य निवार, चेत मन भाईरे ॥ क्रोध मान माया तजो मन० लोभ सब परित्याग, चेत मन भाईरे ॥ २३४ ॥ झूंठी यह सब संपदा, मन० झूठो सब परिवार, चेत मन भाईरे ॥ झूंठी काया कारिमी[1] मन० झूठो इनसों नेह, चेत मन भाईरे॥ २३५ ॥ यह छिनमें उपजै मिटै मन० तू अविनाशी ब्रह्म, चेत मन भाईरे ॥ काल अनंतहि दुख दियो मन० इसही मोह अज्ञान चेत मन भाईरे ॥ २३६ ॥ जो तोको सुमरण कहूँ मन० आवे रंचक मात्र, चेतमन भाई रे ॥ तो कबहूँ संसारमें मन० तू न विपयसुख सेव चेतमन भाई रे ॥२३७॥

(१) कर्मसे उत्पन्न हुई ।

को कहै कथा निगोदकी मन० ताके दुखको पार चेतमनभाई रे ॥
काल अनंत तो तें लहे मन० दुःख अनंती बार चेतमनभाई रे ॥३९
देव आयु पुनि तैं धर्‍यो मन० तामें दुःख अनेक चेतमनभाई रे ॥
लोभ महासुखहैजहां, मन० प्रगट विरह दुख होय, चेतमनभाईरे ४०
दुःख महा बहु मानसी मन० देखे अन्य विभूति चेत मन भाई रे ॥
तिर्यक् गतिमें तू फिर्‍यो मन० संकट लहे अनेक चेतमन भाई रे ४१
अविवेकी कारज किये मन० बांधे पाप अनेक, चेत मन भाई रे ॥
नरदेही पाई कहूं मन० सेये पंच मिथ्यात चेत मन भाई रे ॥४२॥
कहुं कारज को तो सर्‍यो मन० जनमें गमायो व्यर्थ चेतमनभाईरे
भ्रमत भ्रमत संसारमें मन कबहु न पायो सुख चेतमनभाईरे ४३
अबके जो तोको भई मन० कछु आतम परतीत चेतमनभाईरे ॥
धारिलेहु निजसंपदा मन० दर्शन ज्ञान चरित्र चेतमनभाईरे ४४
और सकल भ्रमजालहै मन० तत्त्व इहै निज काज चेतमनभा० ॥
सुखअनंत यामें बसे मन० निज आतम अवधार चेतमनभा० ४५
सिद्ध समान सुछंद है, मन० निश्चै दृष्टि निहारि, चेतमनभाई रे॥
इहिविधि आतम संपदा मन० लहि करि आतमकाज चेतमनभाई रे।

दोहा.

इहि विधि भाव सुभावतें, पायो परमानंद ॥
सम्यक दरश सुहावनो, लह्यो सु आतमचंद ॥ २४७ ॥
क्षायिक भाव भये प्रगट, महा सुभट बलवंत ॥
कीन्हों जिह छिन एकमें, सुभट सात[१]को अंत ॥२४८॥
मोह तबै निर्बल भयो, अबके कछु विपरीत ॥
मेरे सुभट भये शिथिल, लागहिं उनकी जीत ॥२४९॥

(१) दर्शन मोहकी प्रकृति ३ और अनतानुबधी क्रोध मान माया लोभ।

चेतन ध्यान कमान ले, मारे क्षायक बान ॥
मोह सूड छिपतो फिरै, ज्ञान करै घमसान ॥ २५० ॥
देश विरत पुरमें चढचो, चेतन दल परचंड ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, पालै सदा अखंड ॥ २५१ ॥

सोरठा.

मोह भयो बलहीन, छिप्यो छिप्यो जित तित रहै ॥
चेतन महा प्रवीन, सावधान ह्वै चलत है ॥ २५२ ॥
अप्रमत्तपुरमाहिं[1], चेतन आयो विधिसहित ॥
तहां न जोर बसाहि, मोह मान मिट्टित भयो ॥ २५३ ॥
चेतन करि तहँ ध्यान, सुभट तीनै[2] औरहि हरे ॥
पुनि चारित्र प्रमान, करन[3] किये सप्तम पुरहि ॥ २५४ ॥

दोहा.

तजी अहार विहारविधि, आसन दृढ ठहराय ॥
छिन छिन सुख थिरता बढै, यों बोलै जिनराय ॥२५५॥
अबहिं अपूरब[4] करनमें, आयो चेतनराय ॥
कियो करन[5] दूजो जहां थिरता ह्वै अधिकाय ॥ २५६ ॥
नवमें पुरमें आयकें, तृतिय करन करि लेय ॥
हरिके सुभट छतीसँ[6] तहँ, आगेंको पग देय ॥ २५७ ॥
आयो दशमें पुरविषै, चेतन महा सचेत ॥
सुभट एक इतहू हरचो, तबै ज्ञान सुधि देत ॥ २५८ ॥

---

१ सातवें गुणस्थानमें । २ नरक, तिर्यंच देव आयु । ३ अधःप्रवर्तकरण प्रारंभ किया । ४ आठवें गुणस्थानमें । ५ दूजा अपूर्वकरन प्रारंभ किया । ६ नवमें अनिवृत्तकरननामक गुणस्थानमें तीसरा करन प्रारंभ किया ७ दर्शनावरणीकी २ मोहिनीकी ४ नामकर्मकी ३० इसप्रकार छत्तीस प्रकृतियें । ८ सूक्ष्म लोभ ।

सावधान ह्वै नाथजी, रहियो तुम इह ठौर ॥
इहां मोहको जोर है, तुम जिन आनहु और ॥ २५९ ॥
पहिले हानि जो तुम लही, सो थानक इह आहि ॥
तातै मैं विनती करौं, प्रभू भूल जिन जाहि ॥ २६० ॥
तब चेतन कहै ज्ञान सुनि, अब यह पंथ न लेहिं ॥
चलहिं उलंघि उतावले, आगे धोंसा देहिं ॥ २६१ ॥
कहे बहुत संक्षेपसों, इहविधि ये गुणथान ॥
पूरब वरनन विधि सबैं, समझि लेहु गुणवान ॥ २६२ ॥
जो फिरकें वरनन करैं, ह्वै पुनरुक्ति प्रदोष ॥
तातै थोरेमें कह्यो, महा गुणनिके कोष ॥ २६३ ॥

पद्धरिछद.

जहँ चेतन करि सब करम छीन । उपशांत मोहपुर उलँघि लीन ।
आयो द्वादशमहि महमहंत । सब मोह कर्म छय करिय-अंत ॥
जहँ यथाख्यात प्रगट्यो अनूप । सुखमय सब वेदै निजस्वरूप ।
जहँ अवधि ज्ञान पूरन प्रकास । केवल पुनि आयो निकट भास ॥
सो छीनमोह पुर प्रगट नाम । तिहि थानक विलसैं निजसुधाम
अब अंतराय कहुँ करिय अंत । षोडश सब प्रकृति खपाय तंत ॥ ६६
जहँ घातिया चारों कर्म नाश । सब लोकालोक प्रत्यक्ष भास ॥
प्रगट्यो प्रभु केवल अतिप्रकाश । जहँ गुण अनत कीन्हों निवास ६७
प्रगटी निज संपति सब प्रतच्छ । विनशी कुलकर्म अज्ञान अच्छ ।
प्रगट्यो जहँ ज्ञान अनंत ऐन । प्रगट्यो पुनि दरश अनंत नैन ॥ ६८

(१) ग्यारहवां गुणस्थान. (२) क्षीणमोह बारहवें गुणस्थानमें (३) यथाख्यातचारित्र. (४) बारहवां गुणस्थान. (५) ज्ञानावर्णकी ५ दर्शनवर्णीकी ४ यशकीर्ति १ ऊंच गोत्र १ व अंतराय ५ इसप्रकार १६ प्रकृति.

प्रगट्यो तहँ वीर्य अनंत जोरि। प्रघट्यो सुख शक्ति अनंत फोरि॥
तहँ दोष अठारह गये भाज। प्रभु लागे करन त्रिलोकराज॥६९
सब इन्द्र आय सेवहिं त्रिकाल। प्रभु जय जय जय जीवनदयाल।
तहँ करत अष्टप्रातिहार्य देव। विधि भावसहित नितभविक सेव॥
प्रभु देत महा उपदेश ऐन। जिहँ सुनत लहत भवि परम चैन
जहँ जनम जरा दुखनाश होय। प्रभु विद्यादेश बताय सोय॥७१
इहविधि सयोगपुर राज योग। प्रभु करत अनंत विलास भोग॥
तोउ करम चार नहिं तजहिं संग। लगरहे पूर्व तिथिबंध अंग॥७२
प्रभु शुक्लध्यानआरूढ होय। अंतरीक्ष विराजहिं गगन सोय॥
तहँ आसन दृढ ठहराय एक। पद्मासन कायोत्सर्ग टेक॥ ७३॥
प्रभु डग नहिं भरहिं कदाच भूम। तऊ कर्म करत हैं कौन धूम॥
लिये लिये फिरत तिहुँ लोकमाहिं। जिहँ थानक पूरव बंध आहिं॥
कहुँ राखहिं थिर कहुँ लै चलंत। कहुँ वानि खिरै कहुँ मौनवंत।
कहुँ समवशरण कहुँ कुटी होय। कहूँ चौदहराजु प्रमान लोय॥७५॥
इहविधि ये कर्म करंत जोर। नहिं जान देत शिववधू ओर॥
एतेपै निर्बल कहे बखान। मनु जरी जेवरीकी समान॥ ७६॥
तोउ समय समयमें आय आय। चेतन परदेशन थित बधाय॥
यह एक समयमें करत त्याग। थिर होन देत नहिं दुतिय लाग॥
तऊ सुभट पचासी लगि रहंत। निजनिजथानक निजबल करंत॥
चेतन परदेश न घात होय। तातैं जगपूज्य जिनेश होय॥७८॥

दोहा.

चेतन राय सयोगपुर,[१] इहविध विलसहि राज॥
अब चहुँ कर्मन हननको, ठानहि एक इलाज॥२७९॥

(१) तेरहवें गुणस्थानमें.

श्री सयोगपुर देशमें, चेतन करि परवेश ॥
लाग्यो हरण सुकर्मको, ताजिके जोगकलेश ॥ २८० ॥
तब सुवेदनी कर्मने, दीनों रस निज आय ॥
दुहुमें एक भई प्रकट, जानहिं श्रीजिनराय ॥ २८१ ॥
हंस पयानो जगततैं, कीनो लघुथितिमांहि ॥
हरिके चारहिं कर्मको, सुधे शिवपुर जाहिं ॥ २८२ ॥
तहँ अनत सुख शास्वते, विलसहिं चेतनराय ॥
निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय ॥ २८३ ॥

चौपाई.

अविचल धाम वसे शिव भूप । अष्टगुणातम सिद्ध स्वरूप ॥
चरमदेह परमित परदेश । किंचित ऊनो थित विनभेश ॥
पुरुषाकार निरंजन नाम । काल अनंतहि ध्रुव विश्राम ॥
भव कदाच न कबहू होय । सुख अनंत विलसै नित सोय ॥
लोकालोक प्रगट सब वेद । षट द्रव्य गुण पर्याय सुभेद ॥
ज्ञेयाकार सकल प्रतिभास । सहजहिं स्वच्छ ज्ञानजिहँ पास ॥
षट्गुणी हानि वृद्धि परनमै । चेतन शुद्ध स्वभावहि रमै ॥
उत्पत व्यय ध्रुव लक्षण जास। इहविधि थिते सबै शिवरास ॥ ८७
जगत जीत जिहि विरुद प्रमान । पायो शिवगढ रतननिधान ॥
गुण अनंत कहिये कत नाम । इहविध तिष्ठहि आतमराम ॥८८॥
जिनप्रतिमा जगमें जहँ होय । सिद्ध निसानी देखहु सोय ॥
सिद्ध समान निहारहु आप । जातै मिटहि सकल संताप ॥८९॥
निश्चय दृष्टि देख घटमांहि । सिद्ध रु तोमहिं अन्तर नाहिं ॥
ये सब कर्म होंय जड अंग । तू 'भैया' चेतन सर्वंग ॥९०॥

ज्ञान दरश चारित भंडार । तू शिवनायक तू शिवसार ॥
तू सब कर्मजीत शिव होय । तेरी महिमा वरनैं कोय ॥ २९१ ॥

दोहा.

गुण अनंत या हंसके, किंहविधि कहैं वखान ॥
थोरेमें कछु वरनये, 'भविक' लेहु पहिचान ॥२९२॥
यह जिनवानी उदधिसम, कविमति अंजुलि मात्र ॥
तेती ही कछु संग्रही, जेतो हो निज पात्र ॥ २९३ ॥
जिनवानी जिहँ जिय लखी, आनी निजघटमाहिं ॥
तिहँ प्रानी शिवसुख लह्यो, यामें धोखो नाहिं ॥ २९४ ॥
चेतन अरु यह कर्मको, कह्यो चरित्र प्रकाश ॥
सुनत परम सुख पाइये, कहै भगवतीदास ॥ २९५ ॥
सत्रहसौ छत्तीसकी, जेष्ठ सप्तमी आदि ॥
श्रीगुरुवार सुहावनो, रचना कही अनादि ॥ २९६ ॥

इति चेतनकर्मचरित्र समाप्त. ।

अथ अक्षरबत्तीसिका लिख्यते ॥

दोहा.

गुण अपार ओंकारके, पार न पावै कोय ॥
सो सब अक्षर आदि ध्रुव, नमै ताहि सिधि होय ॥ १ ॥

चौपाई.

कका कहैं करन[1] वश कीजे । कनक कामिनी दृष्टि न दीजे ॥
करिके ध्यान निरजन[2] गहिये । केवलपद इहविधिसों लहिये ॥२॥

(१) इन्द्रियोंको ।
(२) कर्मरहित आत्मस्वरूपको ।

खक्खा कहै खबर सुनि जीवा। खबरदार ह्वै रहो सदीवा ॥
खोटे फंद रचे अरिजाला। छिन इक जिनभूलहु वहख्याला ॥३॥
गग्गा कहै ज्ञान अरु ध्याना। गहिकें थिर हूजे भगवाना ॥
गुण अनंत प्रगटहिं ततकाला। गरिके जाहिं मिथ्यातम जाला ॥४॥
घग्घा कहै स्वघर पहिचानों। घने दिवस भये फिरत अजानों॥
घर अपने आवो गुणवंता। घने कर्मको ज्यों ह्वै अंता ॥५॥
नन्ना कहै नैनसों लखिये। नयनिह्चै व्यवहार परखिये ॥
निजके गुण निजमें गहि लीजे। निराविकल्प आतमरस पीजे ॥६॥
चच्चा कहै चरचि गुण गहिये। चिन्मूरति शिवसम उर लहियै ॥
चंचल मन थिर करधरि ध्याना। सीखसुगुरुसुन चेतन स्याना ॥७॥
छच्छा कहै छांडि जगजाला। छहों काय जीवनगतिपाला ॥
छांड अज्ञान भावको संगा। छाकि अपने गुण लखि सर्वंगा ॥८॥

चौपाई १५ मात्रा.

जज्जा कहै मिथ्यामति जीत। जैनधरमकी गहु परतीत ॥
जिहिसों जीव लगै निजकाज। जगतउलंघि होय शिवराज ॥९॥
झज्झा कहै झूठ पर बीर। झूटे चेतन साहस धीर ॥
झूठो है यह करम शरीर। झालि रहे मृगतृष्णानीर ॥ १० ॥
नन्ना कहै निरंजन नैन। निश्चै शुद्ध विराजत ऐन ॥
निज तजकें परमें नहिं जाय। निरावरण वेदहु जिनराय ॥११॥
टट्टा कहै टेव निज गहो। टिककें थिरअनुभव पद लहो ॥
टिकन न दीजे अरिके भाव। टुकटुकसुखको यही उपाव ॥१२॥

चौपाई १६ मात्रा.

ठट्ठा कहै आठ ठग पाये। ठगत ठगत अबकैं कर आये ॥
ठगको त्याग जलांजलि दीजे। ठाकुर ह्वैकें तब सुखलीजे ॥१३॥

---

१ जीजे ऐसा भी पाठ है.

डड्डा कहै डंक विष जैसो। डसै भुजंग मोहविष तैसो ॥
डारयो विष गुरु मंत्र सुनायो। डर सब त्याग माल समुझायो॥१४॥
ढड्ढा कहै ढील नहीं कीजे। ढूंढ ढूंढ चेतन गुण लीजे ॥
ढिग तेरे है ज्ञान अनंता। ढकै मिथ्यात्व ताहि करि अंता॥१५॥

दोहा.

नन्ना अक्षर जे लखो, तेई अक्षर नैन ॥
जे अक्षर देखै नहीं, तेई नैन अनैन ॥ १६ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

तत्ता कहै तत्त्व निज काज। ताको गहे होय शिवराज ॥
ताको अनुभौ कीजे हंस। तावेदतहै तिमिर विध्वंस ॥१७॥
थत्था कहै इन्द्रिनको भूप। थंमन मन कीजे चिद्रूप ॥
थाकहिं सकल कर्मके संग। थिरतासुख तहँ होय अभंग ॥१८॥
दद्दा कहै परगुणको दान। दीने थिरता लहो निधान ॥
दया वहै सुदया जहँ होय। दया शिरोमणि कहिये सोय ॥१९॥
धद्धा कहै धरमको ध्यान। धरि चेतन! चेतनगुण ज्ञान ॥
धवल परमपद प्रापति होय। ध्रुवज्यों अटलटलै नहि सोय ॥२०॥
नन्ना नव तत्त्वनसों भिन्न। नितप्रति रहै ज्ञानके चिन्न ॥
निशदिन ताके गुण अवधारि। निर्मल होय करमअघटारि ॥२१॥
पप्पा कहै परमपद इष्ट। परख गहो चेतन निज दिष्ट ॥
प्रतिभासहि सब लोकालोक। पूरण होय सकल सुख थोक॥२२॥
फफ्फा कहै फिरहु कित हंस। फिर फिर मिलै न नरभव वंस ॥
फंद सकल अरिके चकचूरि। फोरि शकति निज आनंद पूरि॥२३॥
बब्बा कहै ब्रह्म सुनि वीर। वर विचित्र तुम परम गंभीर ॥

बोध बीज लहिये अभिराम । विधिसों कीजे आतमकाम ॥२४॥
भभ्भा कहै भरमके संग । भूलि रहे चेतन सर्वंग ॥
भाव अज्ञाननको कर दूर । भेदज्ञानतें परदल चूर ॥ २५ ॥
मम्मा कहै मोहकी चाल । मेटि सकल यह परजंजाल ॥
मानहु सदा जिनेश्वरवैन । मीठे मनहु सुधातें ऐन ॥ २६ ॥
जज्जा कहै जैनवृष गहो । ज्यों चेतन पंचमि गति लहो ॥
जानहु सकल आप परभेद । जिहंजानें ह्वै कर्म निखेद ॥ २७ ॥
रर्रा कहै राम सुनि वैन । रमि अपने गुन तज परसैन ॥
रिद्ध सिद्ध प्रगटहि ततकाल । रतन तीन लख होहु निहाल ॥२८॥
लल्ला कहै लखहु निजरूप । लोकअग्र सम ब्रह्मस्वरूप ॥
लीन होहु वह पद अवधारि । लोभकरन परतीत निवारि ॥२९॥

सोरठा.

वव्वा बोलै वैन, सुनो सुनोरे निपुण नर ।
कहा करत भव सैन, ऐसो नरभव पायके ॥ ३० ॥

दोहा.

शश्शा शिक्षा देत है सुन हो चेतन राम ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सारो आतम काम ॥ ३१ ॥
खक्खा खोटी देह यह, खिणक माहि खिर जाय ॥
खरी सुआतम संपदा, खिरै न थिर दरसाय ॥ ३२ ॥
सस्सा सबि अपने दलहि, शिवपथ करहु विहार ॥
होय सकल सुख सास्वते, सत्यमेव निरधार ॥ ३३ ॥
हहा कहै हित सीख यह, हंस बन्यों है दाव ॥
हरिलै छिनमें कर्मको, होय बैठि शिवराव ॥ ३४ ॥

क्षक्षा क्षायकपंथ[1] चढि, क्षय कीजे सब कर्म ॥
क्षण इकमें वसिये तहां, क्षेत्र सिद्धि सुख धर्म ॥ ३९ ॥

इति अक्षर बत्तीसिका.

अथ श्रीजिनपूजाष्टकं लिख्यते ॥

दोहा.

जल चंदन अरु सुमन लै, अक्षत शुचि नैवेद ॥
दीप धूप फल अर्घ विधि, जिनपूजा वसुभेद ॥ १ ॥

जलपूजा—कवित्त.

नीर क्षीरसागरको निर्मल पवित्र अति, सुंदर सुवास भर्यो सुरपैं अनाइये । गंगकी तरंगनके स्वच्छ सुमनोज्ञ जल, कंचन कलश वेग भरकें मगाइये ॥ और हू विशुद्ध अंबु आनिये उछाहसेती, जानिये विवेक जिन चरन चढाइये । मौदुख समुद्रजल अंजुलिको दीजे इहां तीन लोक नाथकी हजूर ठहराइये ॥ २ ॥

चंदन पूजा.

परम सुशीतल सुवास भरपूर भर्यो, अतिही पवित्र सब दूषन दहतु है । महावनराजनके वृक्षन सुगंध करै, संगतिके गुण यह विरद वहतु है ॥ बावन जुचंदन सुपावन करन जग, चढ जिनचर्ण गुण वाहीतें लहतु है । मोह दुखदाहके निवारिवेको महा हिम, चंदनतै पूजो जिन चित्त यों कहतु है ॥ ३ ॥

अक्षतपूजा.

शशिकीसी किर्ण कैधों, रूपाचलवर्ण कैधों मेरुतट किर्ण

(१) क्षपकश्रेणी मांड.

कैधों फटिकप्रमाने हैं ॥ दूधकेसे फैन कैंधों चिन्तामणि रेणु कैंधों, मुक्ताफल ऐन कैंधों, हीरा हेरि आने है ॥ ऐसे अति उज्ज्वल है तंदुल पवित्र पुंज, पूजत जिनेश पाद पातक पराने हैं। अच्छै गुण प्रापति प्रकाश तेज पुंज होय, अच्छै जिन देखे अच्छ इच्छतें अघाने हैं ॥ ४ ॥

पुष्पपूजा.

जगतके जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो, ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है। ताके शर जानियत फूलनिके वृंद बहु, केतकी कमल कुंद केवरा सुहायो है ॥ मालती सुगंध चारु बेलिकी अनेक जाति, चंपक गुलाब जिनचरण चढायो है। तेरी ही शरण जिन जोर न बसाय याको, सुमनसों पूजे तोहि मोहि ऐसो भायो है ॥ ५ ॥

नैवेद्यपूजा.

परम पुनीत जान मेवनके पुंज आन, तिन्हें पुनि पहिचान जिनयोग्य जानिये। अन्न औ विशुद्ध तोय ताको पकवान होय, कहिये नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये ॥ पूजत जिनेन्द्रपाय पातक-पराने जाय, मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों बखानिये। क्षुधाको न दोष होय ज्ञानतनपोष होय, परम संतोष होय ऐसी विधी ठानिये ॥ ६ ॥

दीपकपूजा.

दीपक अनाये चहू गतिमै न आवे कहूं, वर्तिका बनाये कर्म-वर्ति न बनत है। घृतकी सानिग्धतासों मोहकी सनिग्ध जाय, ज्योतिके जगाये जगाजोतिमें सनत है ॥ आरती उतारतें आरत

सब जाय टर, पांय ढिग धरे पाप पंकति हनत है। वीतराग देव जूकी सेव कीजे दीपकसों, दीपत प्रताप शिवगामी यों भनत है॥७॥

धूपपूजा.

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम, जाति धूपदान जिमि शुद्ध निपजाइकैं। वन्हि जे विशुद्ध बनी तेज पुंज महाघनी, मानो धरी रत्न कनी ऐसी छवि पाइकै॥ तामें कृष्णागरुकी जु-कानिकाहू खेव कीजे, वहै कर्मकाठनिके पुंजगहि ताइकैं। पूजिये जिनेन्द्र पांय धूपके विधान सेती, तीनलोकमांहि जो सुवास बा-स छायकैं॥ ८॥

फलपूजा.

श्रीफल सुपारी सेव दाडिम बदाम नेव, सीताफल संगतरा शुद्धसदा फल है। बिही नामपाती ओ बिजोरा आम अम्रतसे, नारंगी जँभीरी कर्ण फल जे कमल है॥ ऐसे फल शुद्ध आनि पूजिये जिनंद जान तिहूं लोकमधि महा सुकृतको थल है। फ-ल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय, द्रव्य भाव सेये सुखसं-पति अचल है॥ ९॥

अर्घविधिपूजा.

जल सुविशुद्ध आन चंदन पवित्र जान, सुमन सुगध ठान अक्षत अनूप है। निरखि नैवेद्यके विशेष भेद जान सबै, दीपक सँवारि शुद्ध और गंध धूप है॥ फल ले विशेष भाय पूजिये जि-नंद पाय, वसु भेद ठहराय अरघ स्वरूप है। कमल कलंक पंक हरिके भयो अटक, सेवक जिनंद 'भैया' होत शिव भूप है॥१०

दोहा.

शुचि करकें निज अंगको, पूजहु श्रीजिन पाय॥
दर्वित भावतविधि सहित, करहु भक्ति मन लाय॥ ११॥

जिन पूजाके भेद बहु, यहविधि अष्टप्रकार ॥
प्रतिपूजा जल धारसों, दीजे अर्घ सुधार ॥ १२ ॥

इति श्रीजिनपूजाष्टक.

अथ फुटकर कविता मात्रिक कवित्त.

प्रथम अशोक फूलकी वर्षा, वानी खिरहि परम सुख कार ।
चामर छत्र सिंहासन शोभित, भामंडलद्युति दिपै अपार ॥
दुदुंभि नाद बजत आकाशहिं, तीन भवनमें महिमा सार ।
समवशरण जिन देव सेवको, ये उतकृष्ट अष्टप्रतिहार ॥ १३ ॥

सवैया सुन्दरी.

काहेको देशदिशांतर धावत, काहे रिझावत इंद नरिंद ।
काहेको देवि औ देव मनावत, काहेको शीस नवावत चंद॥
काहेको सूरजसों कर जोरत, काहे निहोरत मूढमुनिंद[1] ।
काहेको शोच करै दिनरैन तूं, सेवत क्यों नहिं पार्श्वजिनंद॥१४

वीतरागकी स्तुति छप्पय.

देव एक जिनचंद नाव, त्रिभुवन जस जंपै ।
देव एक जिनचंद, दरश जिहँ पातक कंपै ॥
देव एक जिनचंद, सर्व जीवन सुखदायक ।
देव एक जिनचंद, प्रगट कहिये शिवनायक ॥
देव एक त्रिभुवन मुकुट, तास चरण नित वंदिये ।
गुण अनंत प्रगटहि तुरत, रिद्धिवृद्धि चिरनंदिये ॥ १५ ॥

कवित्त.

आतमा अनूपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भविजीवो !
तुम आपमें निहारकें। कर्मको न अंश कोऊ भर्मको न वंश को-

---

(१) पाखडीतपस्वी

ऊ, जाकी शुद्धताईमें न और आप टारकें ॥ जैसो शिवखेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, यहां वहां फेर नाही देखिये विचारकें । जोई गुण सिद्धमाहिं सोई गुण ब्रह्ममांहि, सिद्धब्रह्म फेर नाहिं निश्चैनिरधारकें ॥ १६ ॥

प्रश्नोत्तरदोहा.

कौन ज्ञान विन आवरन, कौन देव विनराग ॥
कौन साधु निर्ग्रन्थ है, कौन व्रती जिहँ त्याग ॥ १७ ॥

एकाक्षरीदोहा.

नानी नानी नानमें, नानी नानी नान ॥
नन नानी नन नाननैं, नन नैनानन नान ॥ १८ ॥

द्व्यक्षरीदोहा.

मानन मानों मानमें, मान मान मै मान ॥
मनु ना मानै मानमें, मान मानुमें मान ॥ १९ ॥

त्र्यक्षरी दोहा.

चेतन चेतो चेतना, तो चेते चित चैन ॥
तातें चेतन चेत तू, चेतनता नित नैन ॥ २० ॥

चतुरक्षरी दोहा.

अध्यातममें आतमा, मम अध्यातम धाम ॥
आतम अध्यातम मतै धू मम आतम ताम ॥ २१ ॥

अथ वर्त्तमानचतुर्विंशति जिनस्तुति लिख्यते ।

श्रीआदिनाथजिनस्तुति छप्पय.

आदिनाथ अरहंत, नाभिराजा कुलमंडन ।
नगर अयोध्या जनम, सर्व मिथ्यामति खंडन ॥

केवल दर्शन शुद्ध, वृषभ लक्षन तन सोहै ।
धनुष पांच सौ देह. इन्द्र शतके मन मोहै ॥
मरुदेवि मात नंदन सुजिन, तिहूंलोक तारनतरन ।
मनभाव धारि इक चित्तसों, भव्यजीव वंदत चरन ॥ १ ॥

श्रीअजितजिनस्तुति. मात्रिक कवित्त.

जितशत्रूसुत विजयानंदन, गजलच्छन तेरै अभिराम ।
अष्ट महा मद सब जिनजीते, नगरअजोध्या तज धन धाम ॥
केवल ज्ञान किये नर केते पंचमि गति पहुंचे शुभ ठाम ।
ऐसे अजित नाथ तीर्थंकर, तिनको नित कीजे परनाम ॥२॥

श्रीसंभवजिनस्तुति- मात्रिक कवित्त.

संभवनाथ सकल सुखदायक, सावस्ती नगरी अवतार ।
राय जथारथ सेना जननी, केवल दर्शन रूप अपार ॥
हय लच्छनतनस्वामी शोभत, अरि सब जीत तरे निरधार ।
भव्यजीव परणाम करत है, हे प्रभु भवदधिपार उतार ॥३॥

श्रीअभिनंदनजिनस्तुति.

अभिनंदन चंदनसों पूजों, समरस राजाकुल अवतार ।
नगर अजोध्या जन्म लियो जिन. कपि लच्छन जगमें विस्तार
सिद्धारथ माता कुलमंडन, पापविहंडन परम उदार ।
तातैं जगत जीव नित वंदत, भवसागर प्रभु पार उतार ॥४॥

श्रीसुमतिजिनस्तुति.

सुमति नाथ सुमरे सुखसंपत, दुख दरिद्र दूर सबजाय ।
नगरसुकोशल जन्मलियो जिन, पिता मेघ अरु मंगला माय ॥
बल अनंत भगवंत विराजै, लच्छन कांक नित सेवै पाय ॥
मनवचभाव नित्य भवि वंदै, श्रीजिनचर्णन शीस नवाय ॥५॥

श्रीपद्मप्रभजिनस्तुति.

पद्मप्रभ धरराजानंदन, मात सुसीमा जगतजगीस ।
कोसंवी नगरी जिन जन्मे, इन्द्रादिक प्रणमहि निशदीस ॥
लच्छन कमल विराजै प्रभुके, शोभत तहं अतिशय चौतीस ।
चरणकमल प्रभुके नित वंदे, भव्यात्रिकाल नाय निज शीस ॥६॥

श्रीसुपार्श्वजिनस्तुति.

श्री सुपास जिन आश जु पूरै, सेवहु नित भविजन चरनं ।
पयट्ठराजा सीवै सुलच्छन, पोहमिकुश प्रभु अवतरनं ॥
केवल वयन देशना देते, भविजनमन अम्रत झरनं ।
नगर बनारसि नित जन वंदै, भव्य जीव सब तुम शरनं ॥७॥

श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति.

चन्द्रप्रभ चंदेरी उपजे, मंगला मात पिता महसैन ।
शशिलच्छन सेवै चरनादिक, समकित शुद्धदेत तिहं ऐन ॥
लोकालोक प्रगट घट अंतर, बानि खिरै अम्रत मुख जैन ।
ताके चरण भव्य नितवंदित, अविचलरिद्ध देत प्रभु चैन॥८॥

श्रीसुविधिजिनस्तुति.

सेवहु सुविधि नाथ तीर्थंकर, जसु सुमरे सुखसंपति होय ।
काकदी नगरी जिन उपजे, मगर लंछ प्रभुके तन जोय ॥
रामा मात जगत सब जाने, अरिकुल व्याप सकै नहिं कोय ।
अवनीपति सुग्रीव कहावत, ताकै सुत वंदत तिहुं लोय ॥९॥

श्रीशीतलजिनस्तुति–कवित्त.

कंचन वरन तन रचन डिगत मन, तिहुंलोक नाथ जिन इन्द्रमुख भासई। नंदाजूकी कूख धन दृढरथ राजा तन, अष्टकुल

(१) सेही। (२) 'जितसेन' ऐसा भी पाठ है।

मदहन, ज्ञानको प्रकाशई ॥ लच्छन श्रीवृच्छपाव शीतल श्री-नाथ नाव, भद्दल जिनंद गांव रवि ज्यों उजासई। देशना सुदेह सार होंहि तहाँ जैजैकार, भव्यलोक पावे पार मिथ्याको विनाशई ॥ १० ॥

श्रीश्रेयांसजिनस्तुतिमात्रिक कवित्त

श्रीपुर नगर जगत सब जानै, विष्णराय विसनाके नंद ।
समवशरनमधि जिनवर शोभत, मोहत है नृपके कुलवृंद ॥
लच्छन खग सेवै चरणादिक, तीर्थंकर श्रेयांस जिनंद ।
तिनके चरणन चित्तलायकें, वंदत हैं नित इंदनरिंद ॥ ११ ॥

श्रीवासुपूज्यजिनस्तुति.

श्रीवासुपूज्य चंपा नगरी पति, महिषी लंछ मही सब जानै ।
वासुपूज राजाकुल मंडन, जायासुत सब जगत वखानै ॥
सुरपति आय सीस नित नावे, प्रभुसेवा निजमनमें आनै ।
सम्यकदृष्टि नितप्रति सेवहिं, जिनके वचन अखंडित मानै ॥ १२

श्रीविमलजिनस्तुति-छप्पय.

विमलनाथ इकदेव, सिद्धसम आप विराजै ।
त्रिभुवनमांहि जिनंद, जासु धुनि अंबरगाजै ॥
कंपिलपुर जिन जन्म, शुक्र लंछन सहि मानै ।
सुरपति सेवहि पांय, जगत्रयमाझ वखानै ॥
कृतवर्म भूप स्यामाजननि, केवलज्ञान दिवाकरन ।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जयजिनवर तारनतरन ॥ १३ ॥

श्रीअनन्तजिनस्तुति-मात्रिक कवित्त.

अनंत नाथ सीचाना लंछन, सुजसा मात कहै सब कोय ।

पिता जास श्रीसैन नरेश्वर, नगर अजोध्या जन्में सोय ॥
गुण अनंत बलरूप विराजै, सिद्ध भये अरिके कुल खोय ।
भावसहित भविप्रानी वंदत, हे प्रभु शिवपद हमको होय ॥१४॥

श्रीधर्मजिनस्तुति.

लच्छन वज्र रतनपुर उपजे, धर्मनाथ तीर्थंकर धीर ।
भानुमहीपतिके कुलमंडन, सुवृता मात वडे वलवीर ॥
समवशरनमें देशना देते, प्रभुधुनि जिम सागर गंभीर ।
चरन सदा भवि प्रानी वंदत, जैजै जिनवर चरमशरीर ॥१५॥

श्रीशान्तिजिनस्तुति–सिंहावलोकन छप्पय.

जिनवर ताराचंद, चंदतारा नित वंदै ।
वंदै सुरनर कोटि कोटि, सुरवृंद अनंदै ॥
आनँद मगन जु आप, आप हस्तिनपुर आये ।
आये शांति जिनदेव, देव सवही सुख पाये ॥
पाये सुमात ऐरारतन, तन कंचन विश्वसेन गिन ।
गिन सु कोप गुनको वन्यो, वन्यो सुतारन तर न जिन॥१६॥

श्रीकुंथुजिनस्तुति, मात्रिक कवित्र.

पद्मासन भगवत्त विराजहिं, केवल वयन देशना देहिं ।
गजपुर नगर सूरसिंह भूपति, ताके नंद अभयपद देहिं ॥
कुंथुनाथ तीर्थंकर जगमें, सव प्रानिनको आनंद देहिं ।
जस श्रीवत्सक लंछन सोहै, भव्य त्रिकालहि वंदन देहि ॥१७॥

श्रीअर जिनस्तुति.

नंद्यावर्त्त सुलच्छन सोहै, सुरपति सेव करै नित आय ।
संघ चतुर्विध देशना सुनते, वैरभाव नहिं रहै सुभाय ॥

अर्जुनमात मही सब जानै, पिता जासु है दक्षिण राय ।
श्रीअरनाथ नगर गजपुरवर, वंदें भव्य जिनेश्वर पाय ॥ १८ ॥

श्रीमल्लिजिनस्तुति.

मल्लिनाथ मिथुलानगरीपति, अद्भुत रूप जिनेन्द्र विराजै ।
कुंभराय परभावति जननी, लच्छन कलश चरण सो छाजै ॥
सुरपति आय शीश नित नावें, कंचन कमल धरें प्रभु काजै ।
समोशरण गह गहै जिनेसुर, बानी सुन मिथ्यातम भाजै ॥१९॥

श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तुति सिंहावलोकन छप्पय.

मुनिसुव्रत जिन नाव, नाव त्रिभुवन जस जंपै ।
जंपै सुरनर जाप, जाप जपि पाप जु कंपै ॥
कंपै अरिकुल रीति, रीति जिन नीति प्रकासै ।
परकाशै घट सुमति, सुमति गजग्रंह बासै ॥
बासै जिनवर सिद्ध चित, चितवत कूरम चरण तन ।
तन पदमावति पूजजिन, जिनसेवक वंदै सुमुनि ॥ २०॥

श्रीनमिजिनस्तुति-मात्रिक कवित्त.

नम्यनाथ नीलोत्पललच्छन, मिथुलानाव नगर परसिद्ध ।
विजय राग परभावति जननी, सुमिरे पावै अविचलरिद्ध ।
केवल ज्ञान जिनेश्वर वंदत, होत सदा समकितकी वृद्धि ।
भावसहित जो जिनको पूजै, तिन घर होय सदानवनिद्धि ॥२१॥

श्रीनेमिजिनस्तुति कवित्त.

नेमिनाथ नाथ नेमि काहूसों न राखै प्रेम, मनवच सदा एम रहै दशा जोगकी । समुद्रके सुत धीर सिंधुज्यों गंभीर वीर, संख रहै चर्ण तीर लिप्सा नाहीं भोगकी ॥ सौरिपुर शिवामाय जग जिननाथ राय नीलरत्न जासु काय, लखै मात लोगकी । अनं.

त बलधारी है सौ सदा ब्रह्मचारी है, ऐसे जिन वंदत रहै न दशा रोगकी ॥ २२ ॥

श्रीपार्श्वनाथजिनस्तुति छप्पय.

अम्रत जिनमुख झरै, द्वार सुरदुंदुभि बाजे ।
सेवहिं सुरनर इंद्र, नाग फन शीश विराजे ॥
नगर बनारसि नाम, तात अससेन कहिज्जे ।
वामा मात विख्यात, जगत जिन पूजा किज्जे ॥
सुअनंत ज्ञान बल रूपधर, आप जगत तर सिद्धहुव ।
वंदै सुभव्य नर लोकके, जय जय पास जिनंद तुव ॥२३॥

श्रीवीरजिनस्तुति.

जिनवर श्रीमहावीर, इन्द्र सेवा नित सारहिं ।
सुरनर किन्नर देव तेहु, मिथ्या मत टारहिं ।
क्षत्रिय कुल जिन जन्म राय सिद्धारथ नंदन ।
त्रिशला उर अवतार, सिंह पद पाप निकंदन ॥
विधिचार संघ सुन देशना, केवल वचन विशाल अति ।
जिनप्रभु वंदत सम भावधर, जय जय दीनदयाल मति ॥ २४ ॥

दोहा.

जिन चौवीसी जगतमें, कलपवृक्षसम मान ॥
जे नर पढैं विवेकसों, ते पावहिं शिवथान ॥ २५ ॥

इति चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः ।

अथ विदेहक्षेत्रस्थ वर्तमानजिनविंशतिका.

श्रीसीमंधरजिनस्तुति- छप्पय.

सीमंधर जिनदेव, नगर पुंडरिगिर सोहै ।
वंदहि सुरनर इन्द्र, देखि त्रिभुवन मन मोहै ॥

वृष लच्छन प्रभु चरन सरन, सबहीको राखहिं ।
तरहु तरहु संसार सत्य, सत यहै जु भाखहिं ॥
श्रेयांस रायकुल उद्धरन, वर्त्तमान जगदीश जिन ॥
समभावसहित भविजननमहिं, चरण चारु संदेह विन ॥ १ ॥

श्रीयुगमंधरजिनस्तुति—कवित्त.

केवल कलप वृच्छ पूरत है मन इच्छ, प्रतच्छ जिनंद जुगमंधर जुहारिये । दुंदुभि सुद्वार बाजै, सुनत मिथ्यात्व भाजै, विराजै जगमें जिनकीरति निहारिये ॥ तिहुं लोक ध्यान धरै नामलिये पापहरै, करै सुर किन्नर तिहारी मनुहारिये । भूपति सुदढराय विजया सु तेरी माय, पाय गज लच्छन जिनेशके निहारिये ॥२॥

श्रीबाहुजिनस्तुति सवैया—द्रुमिला.

प्रभु बाहु सुग्रीव नरेश पिता, विजया जननी जगमें जिनकी ।
मृगाचिन्ह विराजत जासुधुजा. नगरी है सुसीमा भली जिनकी॥
शुभकेवल ज्ञान प्रकाश जिनेश्वर, जानतु है सबही जिनकी ।
गनधार कहै भवि जीव सुनो, तिहु लोकमें कीरति है जिनकी ॥३॥

श्रीसुबाहु जिनस्तुति सवैया.

श्रीस्वामि सुबाहु भवोदधि तारन, पार उतारन निस्तारं ।
नगर अजोध्या जन्म लियो, जगमें जिन कीरति विस्तारं ॥
निशढिल पिता सुनंदा जननी, मरकटलच्छन तिस तारं ।
सुरनरकिन्नर देव विद्याधर, करहि वंदना शशि तारं ॥ ४ ॥

श्रीसुजातिजिनस्तुति कवित्त.

अलिका जु नाम पावै इन्द्रकी पुरी कहावे, पुंडरगिरि सरभर नावे जो विख्यात है । सहसकिरनधार तेजतैं दिपै अपार, धुजापै विरा-

जै अंधकारहू खिझात है ॥ देवसेन राजासुत जाकी छवि अदभुत, देवसेना मातु जाके हरप न मात है। श्रीसुजाति स्वामीको प्रणाम, नित्य भव्य करै जाके नामलिये कुल पातक विलात है ॥ ५ ॥

श्रीस्वयप्रभुजिनस्तुति सवैया. (मात्रिक)

श्रीस्वयंप्रभु शशिलंछन पति तीनहु लोकके नाथ कहावें ।
मित्रभूतभूपतिके नंदन विजया नगर जिनेश्वर आवें ॥
धन्य सुमंगला जिनकी जननी, इन्द्रादिक गुण पार न पावें ।
भव्यजीव परणाम करतु है, जिनके चरन सदा चित लावें ॥ ६ ॥

श्री ऋषभाननजिनस्तुति छप्पय.

ऋषभानन अरहंत, कीर्तिराजाके नंदन ।
सुरनरकरहिं प्रणाम, जगतमें जिनको वंदन ॥
वीरसेनसुतलशय, सिंहलच्छन जिन सोहै ।
नगर सुसीमा जन्म देखि, भविजनमनमोहै ॥
अमलान ज्ञान केवलप्रगट, लोकालोक प्रकाशधर ।
तल चरनकमल वंदनकरत, पापपहार परांहिं पर ॥ ७ ॥

श्रीअनंतवीर्यजिनस्तुति कवित्त.

श्रीअनंतवीर्यसेव कीजिये अनेक भेव विद्यमान येही देव मस्तक नवाइये । तात जासु मेघराय मंगला सुकही माय, नगरी अजोध्याके अनेक गुण गाइये ॥ ध्वजापै विराजै गज पेखै पाप जाय भज, त्रिकोटनकी महिमा देखे न अघाइये। तिहू लोकमध्य ईस आतिशै चौतीस लसै, ऐसे जगदीश 'भैया' भलीभांति ध्याइये ॥ ८ ॥

श्रीसूरप्रभजिनस्तुति—सिंहावलोकन छप्पय.

सूरप्रभ अरहंत, हंत करमादिक कीन्हें ।
कीन्हें निज सम जीव, जीव बहु तार सु दीन्हें ॥

दीन्हें रविपद वास, वास विजयामहि जाको।
जाको तात सुनाग, नाग भय माने ताको ॥
ताको अनंतबलज्ञानधर, धर भद्रा अवतार जी।
जिहंभावधारि भवि सेवही, वहि नरिंद लहिं मुकतिश्री ॥९॥

श्रीविशालजिनस्तुति सवैया.

नाथ विशाल तात विजयापति, विजयावति जननी जिनकी।
धन्य सु देश जहां जिन उपजे, पुंडरगिरि नगरी तिनकी ॥
लच्छन इंदु बसहि प्रभु पायें, गिनै तहां कोन सुरगनकी।
मुनिराज कहै भविजीव तरै, सो है महिमा महिमें इनकी ॥१०॥

श्रीवज्रधरजिनस्तुति कवित्त.

अहो प्रभु पद्मरथ राजाके नंदनसु, तेगेई सुजस तिहूंपुर गाइयतु है। केई तव ध्यान धरै, केई तव जापकरै, केई चर्णशर्णतरै जीवपाइयतु है। नगर सुसीमा सिधि ध्वजापै विराजै शंख, मातुसरस्वातिके आनंद बधायतु है। वज्रधरनाथ साथ शिवपुरी करो कहि तुम दास निशदीस शीस नाइयतु हैं ॥ ११ ॥

श्रीचन्द्राननजिनस्तुति छप्पय.

चन्द्राननजिनदेव, सेव सुर करहिं जासु नित।
पद्मासन भगवंत, डिगत नहिं एक समयाचित ॥
पुंडरिनगरी जनम, मातु पद्मावति जाये।
वृषलच्छन प्रभुचरण, भविक आनंद जु पाये ॥
जस धर्मचक्र आगें चलत, ईतिभीति नासंत सब।
सुत वाल्मीक विचरंत जहं, तहंतहं होत सुभिक्ष तब ॥१२॥

श्रीचन्द्रबाहुजिनस्तुति मात्रिककवित्त.

लक्षण पद्मरेणुका जननी, नगर विनीता जिनको गांव।

तीन लोकमें कीरति जिनकी, चन्द्राबाहु जिन तिनको नांव ॥
देवानंद भूमिपतिके सुत, निशिवासर वंदहिं सुर पांव ।
भरत क्षेत्रतैं करहि वंदना, ते भविजन पावहिं शिवठांव ॥१३॥

श्रीभुजंगमजिनस्तुति सवैया.

महिमा मात महाबलराजा, लच्छन चंद भुजा पर नीको ।
विजय नग्र भुजंगम जिनवर, नाव भलो जगमें जिनहीको ॥
गणधर कहै सुनो भविलोको, जाप जपो सबही जिनजीको ।
जास प्रसाद लहै शिवमारग, वेग मिलै निजस्वाद अमीको॥१४॥

श्रीईश्वरजिनस्तुति मात्रिक कवित्त

ईश्वरदेव भली यह महिमा, करहि मूल मिथ्यातमनाश ।
जस ज्वाला जननी जगकहिये, मंगलसैन पिता पुनि पास ॥
नगरी जास सुमीमा भनिये, दिनपति चर्ण रहै नित तास ।
तिनको भावसहित तिन वंदै, एक चित्त निहचै तुम दास ॥१५॥

श्रीनेमप्रभुजिनस्तुति कवित्त.

लच्छन वृषभ पांय पिता जास वीरराय, सेना पुनि जिनमाय सुंदर सुहावनी । नगरी अजोध्या भली नवनिधि आवे चली, इन्द्रपुरी पांय तली लोकमें कहावनी ॥ नेमि प्रभु नाथ वानी अम्रत समान मानी तिहू लोक मध्यजानी दुःखको बहावनी । भविजीव पांयलागै सेवा तुम नित मागै, अबै सिद्धि देहु आगै सुखको लहावनी ॥१६॥

श्रीवीरसेनाजिनस्तुति सवैया.

महा बलवंत, बडे भगवंत, सबै जिय जंत सुतारनको ।
पिता भुवपाल, भलो तिनमाल लह्यो निजलाल उधारनको ॥
पुंडरी सु वासहि रावन पास, कहै तुम दास उबारनको
वीरसेन राय भली भानुमाय, तारोप्रभु आय विचारनको ॥१७

श्रीमहाभद्रजिनस्तुति, सवैया.

महाभद्र स्वामी तुम नाम लिये, सीझै सब काम विचारनके ।
पिता देवराज उमादे माय, भली विजया निसतारनके ॥
शशि सेवै आय लगै, तुम पाय भले जिनराय उधारनके ।
किरपा करि नाथ गहो हम हाथ, मिलै जिनसाथ तिहारनके॥१८

श्रीदेवजसजिनस्तुति, छप्पय.

जिन श्रीदेवजस स्वामी, पिताअवभूत भनिज्जै ।
लच्छन स्वास्तिक पांव, नांव तिहुं लोक गुणिज्जै ॥
पावहि भविजन पार, मात गंगा सुखधारहिं ।
नगर सुसीमा जन्म आय, मिथ्यामति टारहिं ॥
प्रभु देहिं धरम उपदेश नित, सदा बैन अम्रत झरहिं ।
तिन चरणकमल वंदन करत, पापपुंज पंकति हरहिं ॥१९॥

श्रीअजितवीर्यजिनस्तुति, छप्पय.

वर्तमानजिनदेव पद्म, लच्छन तिन छाजै ।
अजितवीर्य अरहंत, जगतमें आप विराजै ॥
पद्मासन भगवंत ध्यान इक निश्चय धारहि
आवहि सुरनरवृंद, तिन्है भवसागर तारहि ॥
नगर अजोध्याजन्मजिन, मात कननिका उरधरन ।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जै जै जिन आनँद करन॥२०॥

दोहा.

वर्त्तमान वीसी करी, जिनवर वंदन काज ॥
जे नर पढै विवेकसों, ते पावहिं शिवराज ॥ २१ ॥

समुच्चयवर्त्तमानवीसतीर्थंकरकवित्त -

सीमंधर जुगमंद्र बाहु ओ सुबाहु संजात स्वयंप्रभु नाव तिहुं पन ध्याइये। ऋषभानन अनंतवीर्य विशालसूरप्रभ, वज्रधरनाथके चरण चितलाइये॥ चंद्रानन चन्द्रबाहु श्रीभुजंगमईश्वर, नेमिप्रभुवीरसेन विद्यमान पाइये। महाभद्र देवजस अजितवीरज भैया, वर्त्तमानवीसको त्रिकाल सीस नाइये॥ २२॥

इति वर्त्तमानजिनविंशतिका.

अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते।

दोहा.

परम देव परनाम कर, परमसुगुरु आराधि।
परम सुधर्म चितार चित, कहू माल गुणसाधि॥ १॥

चौपाई.

एकहि ब्रह्म असंखप्रदेश। गुण अनंत चेतनता भेश॥
शक्ति अनंत लसै जिह माहिं। जासम और दूसरो नाहिं॥२॥
दर्शन ज्ञान रूप व्यवहार। निश्चय सिद्ध समान निहार॥
नहि करता नहिं करि है कोय। सदा सर्वदा अविचल सोय॥३
लोकालोक ज्ञान जो धरै। कबहुं न मरण जनम अवतरै॥
सुख अनंत मय जासुभाव। निरमोही बहु कीने राव॥ ४॥
क्रोध मान माया नहिं पास। सहजै जहाँ लोभको नास॥
गुण थानक मारगना नाहिं। केवल आपु आपुही माहिं॥५॥
परका परस रंच नहिं जहां। शुद्ध स्वरूप कहावै तहां॥
अविनाशी अविचल अविकार। सो परमातम है निरधार॥६॥

दोहा.

यह निश्चय परमात्मा, ताको शुद्ध विचार ॥
जामें पर परसै नहीं, 'भैया' ताहि निहार ॥ ७ ॥

इति परमात्माकी जयमाला।

अथ तीर्थंकरजयमाला।

दोहा.

श्रीजिनदेव प्रणाम कर, परम पुरुष आराध ॥
कहों सुगुण जयमालिका, पंच करणरिपु साध ॥ १ ॥

पद्धरिछंद.

जयजय सु अनंत चतुष्टनाथ। जयजय प्रभुमोक्ष प्रसिद्ध साथ ॥ जय जय तुम केवल ज्ञान भास। जय जय केवल दर्शन प्रकाश ॥२॥ जय जय तुम बल जु अनंत जोर। जय जय सुख जास न पार ओर ॥ जय जय त्रिभुवन पति तुम जिनंद। जय जय भवि कुमदनि पूर्ण चंद ॥ ३ ॥ जय जय तम नाशन प्रगट भान। जय जय जित इंद्रिन तू प्रधान ॥ जय जय चारित्र सु यथाख्यात। जय जय अघनिशि नाशन प्रभात ॥ ४ ॥ जय जय तम मोह-निवार वीर। जय जय अरिजीतन परम धीर ॥ जय जय मन्मथमर्दन मृगेश। जय जय जम जीतनको रसेश ॥ ५ ॥ जय जय चतुरानन हो प्रतक्ष। जय जय जग जीवन सकल रक्ष ॥ जय जय तुम क्रोध कषाय जीत। जय जय तुम मान हर्यो अजीत॥६ जय जय तुम मायाहरन सूर। जय जय तुम लोभनिवार पूर ॥ जय जय शत इंद्रन वंदनीक। जय जय अरि सकल निकंद

नीक ॥ ७ ॥ जय जय जिनवर देवाधिदेव । जय जय तिहूंपन भवि करत सेव ॥ जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव । जय जय सुख पावहिं ते सदीव ॥ ८ ॥

घत्ता.

ते निजरमरत्ता तज परसत्ता, तुम सम निज ध्यावहि घटमें ॥
ते शिवगति पावे बहुर न आवे, बसें सिंधुसुखके तटमें ॥ ९ ॥

इति तीर्थंकर जयमाला.

अथ श्रीमुनिराज जयमाला ।

दोहा.

परमदेव परनाम कर, सतगुरु करहुं प्रणाम ॥
कहूं सुगुण मुनिराजके, महा लब्धिके धाम ॥ १ ॥
ढाल-मुनीश्वर वंदो मनधर भाव, ए देशी ।
पंच महाव्रत आदरैंजी, समति धरें पुनि पंच ॥
पचहु इन्द्रिय जीतकैंजी, रहै विना परपंच मुनीश्वर० ॥ २ ॥
षट आवश्यक नित करैंजी, जीव दया प्रतिपाल ॥
सोवैं पश्चिम रयनमेंजी शुद्ध भूमि लघुकाल, मुनीश्वर० ॥ ३ ॥
स्नान विलेपन ना करैंजी, नग्न रहै निरधार ॥
कचलोंचै हित भावसोंजी, एकहि वेर अहार, मुनीश्वर० ॥ ४ ॥
थिर ह्वै लघु भोजन करैंजी, तजैं दंतवन काज ॥
ये पालैं निरदोषसोंजी, सो कहिये ऋषिराज, मुनीश्वर० ॥ ५ ॥
दोष लगे प्रायश्चित करैंजी, धरैं सुआतम ध्यान ॥
सोधै नित परिणामकोजी, सो संयम परवान, मुनीश्वर० ॥ ६ ॥

दोष छियालीस टालकैं जी, लेवहिं शुद्ध आहार ॥
श्रावकको कुल जानकैजी, जल अचवें तिहँबार, मुनीश्वर० ॥ ७ ॥
महा तपस्या व्रत करैजी सहै परीसह घोर ॥
वीस दोय बहु भेदसोंजी, काय कसैं अतिजोर, मुनीश्वर० ॥ ८ ॥
निर्मल कर निज आतमाजी, चढैं श्रेणि शुध ध्यान ।
'भैया' ते निहचै सहीजी, पावहिं पद निर्वान, मुनीश्वर० ॥ ९ ॥

दोहा.

यह श्रीमुनिगुणमालिका, जो पढिरे उरमाहिं ॥
तिनको शिवसंपति मिलै, जनममरनभय न हिं ॥ १० ॥

इति मुनिश्वर जयमाला.

अथ अहिक्षिति पार्श्वनाथजिनस्तुति.

दोहा.

अश्वसेन अंगज विमल, वामाके कुलचंद ॥
तिहँ केवल कल्याण भवि, पूजिये पार्श्वजिनंद ॥ १ ॥

छंद.

पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्रीअहिछत्तये ।
जिहँ थान प्रभुजू ध्यान धरिये, आतमरस महँ रत्तये ॥
उपसर्ग कमठ अज्ञान कीन्हों, क्रोधसों अगिनत्तये ।
वहु वाघ सिंह पिशाच व्यंतर. गजादिक मदमत्तये ॥ २ ॥
कोऊ रुंडमाला पहरि कंठहि, अगनि जाल मुकंत्तये ।
महाकाल रूप त्रिकाल सूरति, भय दिखावत गत्तये ॥
महि बरप वरपा क्रूर थाक्यो, भव समुद्रहिं पत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये ॥ ३ ॥

धरणीन्द्र औ पद्मावती तहँ, आय जिन सेवंतये ।
सुअनंत बल जुत आप राजत, मेरु ज्यों अचलत्तये ।
करि कर्म चार विनाश ताछिन, लह्यो केवल तत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये ॥ ४ ॥
शत इंद्र मिल कल्याण पूजा, आय विविध रचत्तये ।
तिहँ काजतैं यह भूमि महिमा, जगतमें प्रगटत्तये ॥
भवि जात्रि आवैं जिनहि ध्यावैं, निजातम सर्दहत्तये ।
पूजिये पास जिनद भविजन, नगर श्रीअहिछित्तये ॥ ५ ॥

दोहा.

सावधान मन राखिकैं, जे जिनगुण गावंत ॥
संपति सुख तिनको सदा, गनत न आवै अंत ॥ ६ ॥
सत्रहसौ इकतीसकी, सुदी दशमी गुरुवार ॥
कातिकमास सुहावनो, पूजे पार्श्वकुमार ॥ ७ ॥

इति श्रीअहिक्षितिपार्श्वनाथजिनस्तुति.

अथ शिक्षा छंद.

दोहा.

देह सनेह कहा करै, देह मग्न को हेत ॥
उत्तम नरभवपायकें, मूढ अचेतन चेत ॥ १ ॥

मरहठा छंद.

हे मूढ अचेतन कछुइक चेतो, आखिर जगमें मरना है ।
नरदेही पाई, पूर्व कमाई, तिसमों भी फिर टरना है० ॥ टेक ॥ २ ॥
क्यों धर्म विसारो पापचितारो, इन बातन क्या तरना है ॥
जो भूप कहाये हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है हे मूढ ॥ ३ ॥

धन यौवन आये, रह अरुझाये, सो संध्याका बरना है ॥
विषयारस राते, रहे सुमाते, अंतअगनिमें जरना है, हेमूढ० ॥ ४ ॥
कै दिनको जीवो, विषैरस पीवो, बहुरि नरकमें परना है ॥
जैसी कछु करनी, तैसी भरनी, बुरे फैलसों डरना है ॥ हेमूढ० ॥ ५ ॥
छिन छिन तन छीजै, आयु न धीजै अंजुलि जल ज्यों झरनाहै ॥
जमकी असवारी, रहैतयारी, तिनसों निशदिन लरना है, हेमूढ० ॥ ६
कै भौ फिर आयो, अंत न पायो, जन्म जरा दुख भरना है ॥
क्या देख भुलाने, भरम बिरानें, यह स्वपनेका छरना है, मूढ० ॥ ७ ॥
दुरगतिको परिबो, दुखको भरिबो, काल अनंतहु सरना है ॥
परसों हित मानै, मूढ न जानै, यह तम नाहिं उबरना है, हेमूढ० ॥ ८ ॥
मिथ्यामत लीन्हें, आप न चीन्हें कर्म कलंकन हरना है ॥
जिनदेव चितारो आपु निहारो, जिनसों जीव उधरनाहै, हेमूढ० ॥ ९

दोहा.

जनम मरनतैं नाथ क्यों, जीव चतुर्गति माहिं ॥
पचमि गति पाई नही, जो महिमा निजमाहिं ॥ १० ॥
निज स्वभावके प्रगटतें, प्रगट भये सब दर्ब ॥
जनम मरन दुख त्यागकैं, जानन लागौ सर्व ॥ ११ ॥
'भैया' महिमा ज्ञानकी, कहै कहां लौं कोय ॥
कै जानै जिन केवली, कै समदृष्टी होय ॥ १२ ॥

इतिशिक्षावली ।

अथ परमार्थपदपंक्ति.

१ । राग भैरों.

या देहीको शुचि कहाकीजे, जासों धोइये सोईपै छीजै, या

देहीको ०॥ टेक॥ जो जो धोइये सो सो भरी, देखहु दृष्टि विचारके खरी, या देहीको० ॥ २ ॥ दशों द्वार निशिवासर बहनी, कोटि जतन किये थिर नहिं रहनी, या देहीको० ॥ ३ ॥ तत्त्व यहै आतम रसपीजे, परगुण त्याग जलंजलि दीजे, या देहीको०॥४॥

२ राग देव गंधार ।

अब मैं छाड्यो पर जंजाल, अब मैं० टेक ।

लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल अबमैं०॥१
आतम रस चाख्यो मैं अदभुत, पायो परमदयाल, अबमैं० २॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल, अबमैं०॥३॥

३ । राग विलावल ।

या घटमें परमातमा चिन्मूरति भइया ॥
ताहि विलोकि सुदृष्टिसों पंडित परखैया, या घटमें० ॥१॥
ज्ञान स्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया ॥
तिहूं लोकमें प्रगट है, जाकी ठकुरैया, या घटमें० ॥ २ ॥
आप तरै तारैं परहिं, जैसें जल नइया ॥
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझे समुझैया, या घटमें ॥ ३ ॥
देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै वसइया ॥
त्रिभुवन मुकुट वहै सदा, चेतो चितवइया, या घटमें०॥४॥

४ । पुन राग विलावल.

नरदेही वहु पुण्यसों. चेतन तैं पाई ॥
ताहि गमावत वावरे, यह कौन बडाई, नरदेही० ॥ १ ॥
जप तप संयम नेम व्रत करि लेहुरे भाई ॥
फिर तोको दुर्लभ सदा यह गति ठकुराई, नरदेही ॥ २ ॥

५ । राग रामकली.

अरे तैं जु यह जन्म गमायोरे, अरे तैं० टेक ।

पूरब पुण्य किये कहुं अतिही, तातै नरभव पायोरे ॥
देव धरम गुरु ग्रंथ न परखै, भटकिभटकि भरमायोरे अरे०॥ १
फिर तोको मिलिवो यह दुर्लभ, दश दृष्टान्त[1] बतायोरे ॥
जो चेतै तो चेतरे 'भया' तोको कहि समुझायोरे अरे० ॥ २ ॥

६ । पुनः राग रामकली.

जीयको मोह महादुखदाई, जीयको० टेक ॥
काल अनादि जीति जिंह राख्यो, शक्ति अनंत छिपाई ॥
क्रम क्रम करके नरभव पायो, तऊन तजत लराई. जीयको० ।१
मात तात सुत बन्धव वनिता, अरु परवार बडाई.
तिनसों प्रीति करै निशिवासर, जानत सब ठकुराई जीयको० ॥२
चहुं गति जनममरनके बहुदुख, अरु बहु कष्ट सहाई ॥
संकट सहत तऊ नहि चेतत, भ्रममदिरा अति पाई जीयको०॥३॥
इह विन तजे परम पद नाहीं, यों जिनदेव बताई ॥
तातैं मोह त्याग लै भइया, ज्यों प्रगटे ठकुराई, जीयको० ॥४॥

७ । राग काफी.

जाको मन लागो निजरूपहिं, ताहि और क्यों भावे ।
ज्यों अटूट धन लहै रंक कहु, और न काहु दिखावै ॥ १ ॥
गुण अनंत प्रगटै जिहं थानक, तापटतर को आवै ॥
इहिविधि हंस सकल सुखसागर, आपुहि आप लखावै ॥ २ ॥

---

(१) मनुष्यभवकी दुर्लभतादिखानेकेलिये जिनमतमें दश दृष्टान्तस्वरूपकथायें हैं उनके द्वारा ।

८ । राग सारंग.

जगतगुरु कबनिज आतम ध्याऊं जगत० टेक ॥
नग्नदिगंबरमुद्राधारिकै कब निज आतम ध्याऊं ॥
ऐसी लब्धि होई कब मोको, हौं वा छिनको पाऊं, जगत०॥१॥
कब घर त्याग होऊं वनवासी, परम पुरुष लौ लाऊं ॥
रहौं अडोल जोड पदमासन, करम कलंक खपाऊं, जगत०॥२॥
केवल ज्ञान प्रगट कर अपनों, लोकालोक लखाऊं ॥
जन्म जरा दुख देय जलांजलि, हौं कब सिद्ध कहाऊं, जगत० ॥३॥
सुख अनंत विलसौं तिहँ थानक, काल अनंत गमाऊं ॥
"मानसिंह"[1] महिमा निज प्रगटै, बहुर न भवमें आऊं, जगत०॥४

९ । राग धमाल गौडी.

गौडीप्रभु पारस पूजिये हो, मनधर परम सनेह, गौडी० टेक ।
सकल करम भय भंजनो हो, पूरै वंछित आश ।
तास नाम नित लीजिये हो दिन दिन लीला विलास, गौडी० ॥१॥
केवलपद महिमा लखो हो, धरहु सुथिरता ध्यान ॥
ज्ञानमांहि उर आनिये हो, इहिविधि श्रीभगवान, गौडी० ॥३॥
और सकल विकलप तजो हो. राखहु प्रभुसों प्रीति ॥
आप सरवर ए करें हो, यहै जिनंदकी रीति, गौडी, ॥ ४ ॥
जाके वदन विलोकते हो, नाशै दूर मिथ्यात, ॥
ताहि नमहुं नित भावसों हो, पास जगत विख्यात, गौडी०॥५

१० । पुन:

कहा परदेशीको पतियारो, कहा-टेक० ।
मनमाने तब चलै पंथको, सांज गिनै न सकारो ।
सबै कुटंब छोड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो, कहा० ॥१॥

(१) मानसिंह भैया भगवतीदासजीका परम मित्र था ।

दूर दिसावर चलत आपही, कोऊ न राखन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो, कहा०॥२॥
धनसों राचि धरमसों भूलत, झूलत मोहमझारो।
इहि विधी काल अनंत गमायो, पायो नहि भवपारो, कहा०॥३॥
सांचे सुखसों विमुख होत है भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहरे भइया, आपही आप संभारो, कहा० ॥ ४ ॥

११। पुनः

ते गहिले[1] भाई ते गहिले, जेगराते[2] अबके पहिले।
आपा पर जिहँ भेद न जान्यो, ते बूडे भवभ्रमवहले, ते गहले॥१॥
धन धन करत फिरत निशिवासर, तिनको जनम गयो अहले।
भ्रममें मगन लगन पुद्गलसों, ते नर भवसागर टहले, ते गहले॥२॥
क्रोध मान माया मद माते, विषयनके रस माहिं रले।
'भैया' चेत चतुर कछु अबकें, नहि तो नरक निगोद हिले, ते ग०।३

१२। राग केदारो.

छांडिदे अभिमान जियरे छांडिदे० ॥ टेक-
काको तू अरु कौन तेरे, सबही हैं महिमान॥
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान, जियरे० ॥ १ ॥
जगत देखत तोरि चलवो, तूभी देखत आन॥
घरी पलकी खबर नाहीं, कहां होय विहान, जियरे० ॥ २ ॥
त्याग क्रोधरु लोभ माया, मोह मदिरापान॥
राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान, जियरे० ॥ ३ ॥
भायो सुरपुर देव कबहूं, कबहुं नरक निदान।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान, जियरे०॥ ४ ॥

---

१ बावले, २ राचे,

१३। राग सोरठ.

अरे सुन जिनशासनकी बतियाँ, जातें होय परम सुखि छतियां, अरे० टेक। निजपर भेद करहु दिन रतियां, ज्यों प्रगटहिं शिवशकतिअनंतियां, अरे० ॥ १ ॥ सुख अनंत सब होय निकतियां, मिटहि सकल भव भ्रमकी घतियां. अरे० ॥ २ ॥ परम ज्योति प्रगटै परभातियां, 'भैया' निजपद गहु निज मतियां, अरे० ॥ ३ ॥

१४। राग कान्हरो.

देखो मेरी सखीये आज चेतन घर आवै ॥
काल अनादि फिरयो परवशही, अब निज सुधहिं चितावै, दे० ॥ १ ॥
जनमजनमके पाप किये जे, ते छिन माहि बहावै ॥
श्रीजिनआज्ञा शिरपर धरतो, परमानंद गुण गावै, देखो० ॥ २ ॥
देत जलांजुली जगत फिरनको ऐसी जुगति बनावै ॥
विलसै सुख निज परम अखंडित, भैया सब मनभावै, देखो ॥ ३ ॥

१५। राग केदारो.

कैसें देऊं करमन दोप कैसें० ॥ टेक ॥

मगन है है आप कीने, गहे रागरु दोप ॥
विपयोंके रस आप भूलयो, पापसों तन पोस, कैसें० ॥ १ ॥
देवधर्म गुरु करी निंदा, मिथ्या मदके जोस ॥
फल उदै भई नरकपदवी, भजोगे कै कोस, कैसें० ॥ २ ॥
किये आपसु बनै भुगते, अब कहा अफसोस ।
दुखित तो बहु काल बीते, लही न सुख चल ओस, कैसें० ॥ ३ ॥

क्रोध मानरु लोभ माया, भर्यो तन घट ठोस ॥
चेत चेतन पाय नरभव, मुकति पंथ सुघोष; कैसें० ॥ ४ ॥

१६ । राग केदारो.

कहो परसों प्रीति कीन्हीं, कहा गुण तुम जान ।
चतुर चेतन चितविचारो, कहहुँ पुनि पहिचान ॥ १ ॥
वे अचेतन तुम सुचेतन, देखि दृष्टि विनान ।
परहिं त्याग स्वरूप गहिये, यहै, बात प्रमान ॥ २ ॥

१७ । राग अडानो.

रे मन ऐसा है जिनधर्म, रे मन० टेक ॥
जाके दरस सरस सुख उपजत, मिटत सकल भव भर्म ॥
शुद्धस्वरूप सहज गुणसागर, जानत सबको मर्म, रे मन० ॥१॥
ज्ञान दरस चारित कर राजत, परसत नाहीं कर्म ॥
निश्चय ध्यान धरो वा प्रभुको, ज्यों प्रगटै पद पर्म, रे मन० ॥ २ ॥

१८ । दोहा (विहाग.)

श्रीजिन चरणांबुज प्रते, वंदत भवि धर भाव ।
केवल पद अवलंबि निज, करत भगत व्यवसाव ॥ १ ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल में श्री जिनबिंब अनूप ॥
तिहँ प्रति वंदत भविक नित, भावसहित शिवरूप ॥ २ ॥

१९ । राग अडानो.

भविक तुम वंदहु मन धर भाव, जिन प्रतिमा जिनवरसी कहिये, भ०।
जाके दरस परमपद प्रापति, अरु अनंत शिवसुख लहिये, भविक ॥१
निज स्वभाव निरमल ह्वै निरखत, करम सकल अरि घट दहिये ॥
सिद्ध समान प्रगट इह थानक, निरख निरख छवि उर गहिये, भ.२॥

अष्ट कर्म दल भंज-प्रगट भई चिन्मूरति मनु बन रहिये ।
इहि स्वभाव अपनो पद निरखहु, जो अजरामर पद चहिये, भविक०
त्रिभुवन माहिं अकृत्रिम कृत्रिम, वंदन नितप्रति निरवहिये ।
महा पुण्य संयोग मिलत है, भइय। जिन प्रतिमा सरदहिये, भविक०

२० । पुनः

हो चेतन तो मति कौन हरी, चेतन० टेक ॥
कै लै गयो मिथ्यामति मूरख, कै कहुं कुमति धरी ॥
कै कहुं लोभ लग्यो तोहि नीको, कै विष प्रीति करी, हो चे० ॥ १
कै कहुं राग मिल्यो हितकारी, रीति न समुझि परी ॥
अब हूं चेत परमपद अपनो, सीख सु धार खरी, होचे० ॥ २

२१ । पुनः

हो चेतन वे दुःख विसरि गये ॥ टेक ॥
परे नरकमें संकट सहते, अब महाराज भये ।
सूरी सेज सबै तन वेदत, रोग एकत्र ठये ॥ हो चे० ॥ १ ॥
करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनंदये ।
कहूं शीत कहूं उष्ण महा भुवि. सागर आयु लये, हो चे० ॥२॥

२२ । राग मारू.

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरारे ।
विन देख्यो होसी नहि क्योंही, काहे होत अधीरा रे ॥१॥
समयो एक बढे नहिं घटसी, जो सुख दुखकी पीरा रे ।
तू क्यों सोच करै मन कूडो, होय वज्र ज्यों हीरा रे ॥२॥
लगै न तीर कमान बान कहूं, मार सकै नहिं मीरा रे ।
तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे ॥३

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभुको, जो टारै भव भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे ॥४॥

२३। राग धनाश्री।

जिनवाणी को को नहिं तारे, जिन० ॥ टेक ॥
मिथ्यादृष्टी जगत निवासी, लहि समकित निज काज सुधारे।
गौतम आदिक श्रुतिके पाठी, सुनत शब्द अघ सकल निवारे, जिन०
परदेशी राजा छिन बादी, भेद सुतत्त्व भरम सब टारे।
पंचमहाव्रत धर तू 'भैया' मुक्तिपंथ मुनिराज सिधारे, जिन ॥२॥

२४। पुनः।

जिनवाणी सुनि सुरत संभारे जिन० ॥ टेक ॥
सम्यग्दृष्टी भवननिवासी, गह व्रत केवल तत्त्व निहारे, जिन० ॥१॥
भये धरणेन्द्र पदमावति पलमें, जुगलनाग प्रभु पास उबारे।
बाहूबलि बहुमान धरत है, सुनत वचन शिव सुख अवधारे, जिन ॥२
गणधर सबै प्रथम धुनि सुनिके, दुविध परिग्रह संग निवारे ॥
गजसुकुमाल बरस वसुहीके, दिक्षाग्रहत करम सब टारे, जिन० ॥३॥
मेघकुँवर श्रेणिकको नंदन, वीरवचन निजभवहिं चितारे ॥
और हु जीव तरे जे भैया, ते जिनवचन सबै उपगारे, जिन० ॥४॥

२५। पुनः।

चेतन परे मोह वश आय, चेतन ॥ टेक ॥
मानत नाहिं कहूं समुझायो, विषयन रहे लुभाय ॥
नरक निगोद भ्रमन बहु कीन्हो, सो दुख कह्यो न जाय, चेतन०, १॥
नरभव पाय धरम नहिं पायो, आगेको न उपाय ॥
जैसें डारि उदधि चिंतामणि, मूरख फिर पछताय, चेतन० ॥२॥

सतगुरु वचन धारिले अबके, जातें मोह विलाय ॥
तब प्रगटै आतम रस भैया सो निश्चय ठहराय, चेतन० ॥ ३ ॥

॥ इति परमार्थ पदपंक्ति ॥

अथ गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर,

दोहा.

कहुं दिव्यध्वनि शिष्य सुनि, आयो गुरुके पास ॥
पूज्य सुनहु इक बीनती, अचरजकी अरदास ॥ १ ॥
आज अचभौ मैं सुनो, एक नगरके बीच ॥
राजा रिपुमें छिप रह्यो, राग करें सब नीच ॥ २ ॥
नीचसु राज्य करै जहां, तहां भूप बलहीन ॥
अपनो जोर चलै नहीं, उनहीके आधीन ॥ ३ ॥
वे याको मानें नहीं, यह वासों रसलीन ॥
सत्तर कोडाकोडिलों, बंदीखानें दीन ॥ ४ ॥
बंदीवान समान नृप, कर राख्यो उहि ठौर ॥
वाको जोर चलै नहीं उनहींके सिरमौर ॥ ५ ॥
वे जो आज्ञा देत है, सोइ करैं यह काम ॥
आप न जानें भूप मैं, ऐसो है चित भ्राम ॥ ६ ॥
उनकी चेरीसों रचे, तजि निज नारि निधान ॥
कहो स्वामि सो कौन वह, जिनको ऐसो ज्ञान ॥७॥
कौन देश राजा कवन, को रिपु को कुल नारि ॥
को दासी कहु कृपाकर, याको भेद विचारि ॥ ८ ॥

गुरुरुवाच.

गुरु बोलै समकित बिना, कोऊ पावै नाहिं ॥
सबै ऋद्धि इक ठौर है, काया नगरीमाहिं ॥ ९ ॥

काया नगरी जीव नृप, अष्ट कर्म अति जोर ॥
भाव अज्ञानदासी रचे, पगे विषयकी ओर ॥१०॥
विषयबुद्धि जहां है नहीं, तहां सुमतिकी चाह ॥
जो सुमती सो कुल त्रिया, इहि याको निरवाह ॥११
आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥
आप आपु न जानहीं, कहो आपु क्यों होय ॥१२॥
आप न जानें आपको, कौन-बतावनहार ॥
तबहिं शिष्य समकित लह्यो, जान्यों सबहि विचार ॥
इहि गुरु शिष्य चतुर्दशी, सुनहु सबै मनलाय ॥
कहै दास भगवंतको, समताके घर आय ॥ १४ ॥

इति गुरुशिष्यचतुर्दशी.

अथ मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी

छप्पय.

बन्दहुं ऋषभ जिनेन्द्र, अजित संभव अभिनन्दन ।
सुमति सु पद्म सुपार्श्व, बहुरि चन्द्रप्रभ वंदन ॥
सुविधि शीतल श्रेयांश, वासुपूजहिं सुखदायक ।
विमल अनंत रु धर्म, शान्ति कुंथ जु शिवनायक ॥
अर मल मुनसुव्रत नमत, पाप पुज पंकति हरिय ।
नमि नेम पार्श्व जिन वीर कहं, भवित्रिकाल वंदन करिय॥१॥

कवित्त मनहर.

मिथ्या गढ भेद भयो अन्धकारनाश गयो, सम्यक प्रकाश-लयो, ज्ञानकला भासी है । अणुव्रत भाव धरें महाव्रत अंगी करें श्रेणीधारा चढे केई अकृत निवासी है ॥ मोहको पसारो डारि

घातियाहु कर्म टारि, लोकालोकको निहारि भयो सुखरासी है। सर्वही विनाश कर्म, भयो महादेव पर्म, वंदै भव्य ताहि नित लोक अग्रवासी है॥ २॥

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीनलोक पूज्यपद येहि त्याग पायो है। यह तो अनूठी बात तुम ही बताय देहु, जानी हम अबहीं सुचित्त ललचायो है॥ तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनन्त सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है। यामें कहा लागत है, परसंग त्यागतही, जारि दीजे भ्रम शुद्ध आपही कहायो है॥ २॥

वीतराग देव सो तो बसत विदेहक्षेत्र, सिद्ध जो कहावै शिव लोकमध्य लहिये। आचारज उवझाय दुहीमें न कोऊ यहां, साधु जो बताये सो तो दाक्षिणमें कहिये॥ श्रावक पुनीत सोऊ विद्यमान यहां नाहिं, सम्यकके संत कोऊ जीव सरदहिये॥ शास्त्रकी सरधा तामें बुद्धि अति तुच्छ रही, पंचम समैमें कहो कैसे पंथ गहिये॥ ३॥

तूही वीतराग देव राग द्वेष टारि देख, तूही तो कहावै सिद्ध अष्ट कर्म नासतै। तूही तो आचारज है आचरै जु पंचाचार, तूही उवझाय जिनवाणीके प्रकाशतैं॥ परको ममत्व त्याग तूही है सो ऋषिराय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासते। सम्यक स्वभाव तेरो शास्त्र धुनि तेरी वाणी, तूही भैया ज्ञानी निज रूपके निवासतें॥४॥

मात्रिक सवैया.

आलस कहै उद्यम जिन ठानों, सोवहु सदन पिछोरी तान।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोइ आन॥
आवत जात मरे जिय केतक, एसेही भेद हिये पहिचान।
तातें इक अन्तगहो उरअन्तर, सीख यहै धरिये सुख मान॥ ५॥

उद्यम कहै अरे शठ आलस, तू सरवर क्यों करै हमारि।
हम मिथ्यात तजें गहैं सम्यक, जो निजरूप महा हितकारि॥
श्रावक धर्म्म इकादश भेदसों, श्री मुनिपंथ महाव्रत धारि।
चढ गुण थान विलोक ज्ञेय सब, त्यागहिं कर्म वरैं शिवनारि॥६॥

कवित्त मनहरन.

मिथ्याभाव नाश होय तबै ज्ञान भास होय, मिथ्याके मिलापसों अशुद्धता अनादिकी। मिथ्याके सँयोग सेती मोक्षको वियोग रहै मिथ्याके वियोग बात जानें मरजादिकी॥ मिथ्याकी मगनतासों संकट अनेक सहै, मिथ्याके मिटाये भव भाँवरि लै वादिकी। ऐसी मिथ्या रीतिकी प्रतीतिको निवारै संत करै निज प्रगट शक्ति तोर कर्मादिकी॥ ७॥

मोहके निवारें राग द्वेषहू निवारें जाहिं, राग द्वेष टारें मोह नेक हू न पाइये। कर्मकी उपाधिके निवारिवेको पेंच यहै, जडके उखारें वृक्ष कैसे ठहराइये॥ डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय जाय, कर्मनके वृक्षनको ऐसे के नसाइये। तबै होय चिदानन्द प्रगट प्रकाश रूप, विलसै अनन्त सुख सिद्धमें कहाइये॥ ८॥

जबै चिदानंद निज रूपको संभार देखे, कौन हम कौन कर्म कहांको मिलाप है। रागद्वेष भ्रमने अनादिके भ्रमाये हमें, तातेंहम भूल परे लाग्यो पुण्य पाप है॥ रागद्वेष भ्रम ये सुभाव तो हमारे नाहिं, हम तो अनंत ज्ञान, भानसो प्रताप है। जैसो शिव खेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, तिहूं काल शुद्ध रूप 'भैया' निज आप है॥ ९॥

जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनोंलोकमध्य, ज्ञान पुंज प्राण

जाके चेतना सुभाव हैं। असंख्यात परदेश पूरित प्रमान बन्यो, अपनें सहज माहिं आप ठहराव है॥ राग द्वेष मोह तो सुभाव में न याके कहूं, यह तो विभाव पर संगति मिलाव है। आतम सुभावसों विभावसों अतीत सदा, चिदानन्द चेतवेको ऐसे में उपाव है॥ १० ॥

राग द्वेष भ्रम भाव लग्यो है अनादिहीको, जाके परसाद परभावनि वहतु है। बंधत अनेक कर्म्म इनको निमित्त पाय, तिनहीके फल सब यह पै सहतु है॥ चहुंगति चौरासीमें जनम जराके दुख, मरन मिथ्यात भाव यहै तो लहतु है। याही क्रम काल तो अनन्त वीत गयो तहां, अजहुंलों चिदानंद चेतो न चहतु है॥ ११ ॥

मिथ्या भाव जालों तोलों भ्रमसों न नातो टूटै, मिथ्याभाव जौलों तौलों कर्म सों न छूटिये। मिथ्याभाव जोलों तौलों सम्यक न ज्ञान होय, मिथ्या भाव जौलों तोलों अरि नाहिं कूटिये॥ मिथ्या भाव जौलों तौलों मोक्षको अभाव रहै, मिथ्या भाव जौलों तौलों परसंग जूटिये। मिथ्याको विनाश होत प्रगटै प्रकाश जोत, सूधौ मोक्ष पंथ सूधे नेकु न अहूटिये॥ १२ ॥

छप्पय.

ऊरध मध अध लोक, तासुमें एक तिहूं पन।
किसिहि न कोउ सहाय, याहि पुनि नाहिं दुतिय जन॥
जो पूरव कृत कर्म भाव, निज आप बंध किय।
सो दुख सुख द्वयरूप, आय इहि थान उदय दिय॥
तिहि मध्य न कोऊ रख सकति. यथा कर्म विलसंत तिम।
सब जगत जीव जगमें फिरत ज्ञानवंत भाषंत इम॥ १३ ॥

दोहा.

भैया सुख सागर परखि, निरखि ज्योति निजचन्द ।
मिथ्या नाशन चतुर्दशि, पढत बढत आनन्द ॥ १४ ॥

इति मिथ्यातविध्वंसनचतुर्दशी ।

अथ जिनगुणमाला लिख्यते.

दोहा.

तीर्थंकर त्रिभुवन तिलक, तारक तरन जिनंद ॥
तास चरन वंदन करौं, मनधर परमानंद ॥ १ ॥
गुण छीयालिस संयुगत, दोष अठारह नाश ॥
ये लक्षण जा देवमें, नित प्रति वंदों तास ॥ २ ॥

चौपाई.

दश गुण जासु जनमतैं होय । प्रस्वेदादिक दोष न कोय ।
निर्मलता मलरहित शरीर । उज्वल रुधिर वरण जिम खीर ॥३॥
वज्र वृषभ नाराच प्रमान । सम सु चतुर संस्थान बखान ॥
शोभन रूप महा दुतिवन्त । परम सुगन्ध शरीर वसंत ॥ ४ ॥
सहस अठोत्तर लच्छन जास । बल अनंत वपु दीखै तास ॥
हितमित वचन सुधासे झरैं । तास चरन भवि वंदन करैं ॥५॥
दश गुण केवल होत प्रकाश । परम सुभिक्ष चहूं दिश भास ॥
द्वयसौ जोजन मान प्रमान । चलत गगनमें श्रीभगवान ॥ ६ ॥
वपुतै प्राणि घात नहिं होय । आहारादिक क्रिया न कोय ॥
विन उपसर्ग परम सुखकार । चहूं दिश आनन दीखहिं चार ॥७॥
सब विद्या स्वामी जग वीर । छाया वर्जित जासु शरीर ॥
नख अरु केश बढैं नहिं कहीं । नेत्र पलक पल लागै नहीं ॥ ८ ॥

चौदह गुण देवन कृत होय । सर्व मागधी भाषा सोय ॥
मैत्री भाव जीव सब धरैं । सर्वकाल तरु फूल न फरैं ॥ ९ ॥
दर्पणवत निर्मल है मही । समवशरण जिन आगम कही ॥
शुद्ध गंध दक्षिण चल पौन । सर्व जीव आनँद अनुमौन ॥ १० ॥
धूलिरु कंटक वर्जित भूमि । गंधोदक बरषत है झूमि ॥
पद्म उपरि नित चलत जिनेश । सर्व नाज उपजहिं चहुं देश ॥ ११ ॥
निर्मल होय अकाश विशेष । निर्मल दशा धरतु है भेष ॥
धर्म चक्र जिन आगें चलै । मंगल अष्ट पाप तम दलै ॥ १२ ॥
प्राति हार्य्य वसु आनँदकंद । वृक्ष अशोक हरै दुख द्वंद ॥
पुहुप वृष्टि शिव सुखदातार । दिव्य ध्वनि जिन जै जैकार ॥ १३ ॥
चौसठ चवर ढरहिं चहुंओर । सेवहिं इंद्र मेघ जिम मोर ॥
सिंहासन शोभन दुतिवंत । भामंडल छवि अधिक दिपंत ॥
वेदी माहिं अधिक दुति धरै । दुंदुभि जरा मरण दुख हरै ॥
तीन छत्र त्रिभुवन जयकार । समवशरणको यह अधिकार ॥ १५ ॥

दोहा.

ज्ञान अनंत मय आतमा, दर्शन जासु अनंत ॥
सुख अरु वीर्य अनंत बल, सो वंदों भगवंत ॥ १६ ॥
इन छयालीसन गुणसहित, वर्त्तमान जिनदेव ॥
दोष अठारह नाशतैं करहिं भविक नितसेव ॥ १७ ॥

चौपाई.

क्षुधा त्रिषा न भयाकुलजास । जनम न मरन जरादिक नाश ॥
इन्द्रीविषय विषाद न होय । विस्मय आठ मदहि नहिं कोय ॥ १८ ॥
रागरु दोष मोह नहि रंच । चिंता श्रम निद्रा नहिं पंच ॥
रोग विना पर स्वेद न दीस । इन दूषन विन है जगदीश ॥ १९ ॥

दोहा.

गुण अनन्त भगवन्तके, निहचै रूप बखान ॥
ये कहिये व्यवहारके, भविक, लेहु उर आन ॥ २० ॥
'भैया' निजपद निरखतैं, दुविधा रहै न कोय ॥
श्रीजिनगुणकी मालिका, पढैं परम सुख होय ॥ २१ ॥

इति श्रीजिनगुणमालिका.

अथ सिज्झाय लिख्यते.

कारखा छंद.

जहँ कर्मके वंश, सों अंश नहिं लसै, सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥१
मोह मिथ्यात्वमद, पान दूरहिं नशै, राग अरुद्वेषहू जास थानी ॥
नहिं क्रोध नहिमान थानभासैं कहूं, माय नहिं लोभ जहँ दूरदीखै चहूं
प्रकृति परद्रव्यकी सर्व मानी, भली सिद्ध समआतमा ब्रह्म ज्ञानी॥२
जामें ज्ञान अरु दर्श चारित गुणराजही, शकति अनंत सबै ध्रुवछाजही ॥ परम पद पेख निजराजधानी, सिद्ध समआत्मा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ३ ॥ अतीत अनागत वर्त्तमानहिं जिते, दरब गुण परजय सर्व भासहिं तिते ॥ शुद्ध नय सिद्ध जिम जानिप्रानी, सिद्ध सम आत्मा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ४ ॥

अथ पंचपरमेष्ठिनमस्कार ।

दोहा.

प्रातसमय श्रीपंच पद वंदन कीजे नित्त ॥
भाव जगति उर आनिकै, निश्चय कर निजचित्त ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा.

प्रातहिं उठि जिनवर प्रणमीजे । भावसहित श्रीसिद्ध नमीजे ॥
आचारज पद वंदन कीजै । श्री उवझाय चरण चितदीजै ॥ २ ॥

साधु तणा गुण मन आणीजै । षटद्रव्य भेद भला जानीजै ॥
श्रीजिनवचन अमृतरस पीजै । सब जीवनकी रक्षा कीजै ॥ ३ ॥
लग्यो अनादि मिथ्यात्व वमीजे । त्रिभुवन माही जिम न पसीजै ॥
पाचौं इन्द्री प्रबल दमीजै । निज आतम रस माहि रमीजै ॥ ४ ॥
परगुण त्याग दान नित कीजै । शुद्ध स्वभाव शील पालीजै ॥
अष्ट करम तज तप यह कीजै । शुद्धस्वभाव मोक्ष पामीजै ॥५॥

दोहा.

इहविधि श्रीजिन चरण नित, जो वंदत धर भाव ॥
ते पावहिं सुख शास्वते, 'भैया' सुगम उपाव ॥ ६ ॥

इति पंचपरमेष्ठि नमस्कार.

अथ गुणमंजरी लिख्यते.

दोहा.

परम पंच परमेष्ठिको, वंदौं सीस नवाय ॥
जस प्रसाद गुण मंजरी, कहूं कथन गुणगाय ॥ १ ॥
ज्ञान रूप तरु ऊगियो, सम्यकधरतीमाहिं ॥
दर्शन दृढ शाखासहित, चारित दल लहकाहिं ॥ २ ॥
लगी ताहि गुण मंजरी, जस स्वभाव चहुं ओर ॥
प्रगटी महिमा ज्ञानमें, फल है अनुक्रम जोर ॥ ३ ॥
जैसें वृक्ष रसालके, पहिले मंजरी होय ॥
तैसें ज्ञान तमालके, गुणमंजरिका जोय ॥ ४ ॥
दया सुवत्सल सुजनता, आतम निंदा रीति ॥
समता भक्ति विरागविधि, धर्म रागसों प्रीति ॥ ५ ॥
मनप्रभावना भाव अति, त्याग न ग्रहन विवेक ॥
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी अनेक ॥ ६ ॥

तिनके लच्छन गुण कहूं, जिन आगम परमान ॥
इक क्रम शिव फल लागि है, देख्यो श्री भगवान ॥ ७ ॥

चौपाई.

दया कही द्वय भेद प्रकाश । निजपरलच्छन कहूं विकाश ॥
प्रथम कहूं निज दया बखान । जिहमें सब आतम रस जान ॥८॥
शुद्ध स्वरूप विचारहिं चित्त । सिद्ध समान निहारहिं नित्त ॥
थिरता धर आतमपदमाहिं । विषयसुखनकी बांछा नाहिं ॥९॥
रहै सदा निजरसमें लीन । सो चेतन निजदया प्रवीन ॥
अब दूजो परदया विचार । जो जानै सगरो संसार ॥ १० ॥
छहों कायकी रक्षा होय । दयाशिरोमणि कहिये सोय ॥
पृथिवी अप तेऊ अरु बाय । वनस्पती त्रिस भेद कहाय ॥११
मन वच काय विराधै नाहि । सो परदया जिनागममाहिं ॥
अव्रतमें भावनितें टलै । यथाशक्ति कछु दर्वित पलै ॥ १२ ॥
ज्यों कषायकी मंदित ज्योत । त्यों त्यों दया अधिक तिहं होत ॥
त्रसकी रक्षा निश्चय करै । देशविरत थावर कछु टरै ॥ १३ ॥
सर्वदया छट्टे गुणथान । आगें ध्यान कह्यो भगवान ॥
और कहूं परदया बखान । ताके लक्षण लेहु पिछान ॥१४॥
कष्टित देख अन्य जियकोय । जाके हिरदै करुणा होय ॥
शक्ति समान करै उपकार । सो परदया कही संसार ॥ १५ ॥

दोहा.

कही दया द्वय भेदसों, थोरमें समुझाय ॥
याके भेद अपार है, जानै श्रीजिनराय ॥ १६ ॥
अब वत्सलता गुण कहूं, जो रुचिवंत सदीव ॥
लग्यो रहै जिनधर्ममें, सो सम दृष्टी जीव ॥ १७ ॥

चोपाई.

ऐसैं बच्छा चूंधै गाय। तैसैं जिनवृप थाहि सुहाय॥
लग्यो रहै निशदिन तिहं माहिं। और काजपर मनसा नाहिं १८
सुनै जिनागमके विरतंत। त्यौंत्यौं सुख तिहं होत महंत॥
जो देख्यो केवल भगवान। सो निहचै याकै परमान॥ १९॥
द्वादश अंग प्ररूपहि जोय। सो याके घट अविचल होय॥
रहै सदा जिनमतको ध्यान। सो वत्सलता गुण परमान॥ २०॥
अब तीजी सज्जनता कहूं। जाके भेद यथारथ लहूं॥
देखै जो जिनधर्मी जीव। ताकी संगति करै सदीव॥ २१॥
सब प्राणीपर सज्जन भाव। मित्र समान करै चित चाव॥
जहां सुनै जिनधर्मी कोय। तहं रोमांचित हुलसित होय॥२२॥
देखत ही मन लहै अनंद। सो सज्जनता है गुणवृंद॥
अब अपनी निंदा अधिकार। कहू जिनागमके अनुसार॥ २३॥
जब जिय करै विषयसुख भोग। निंदित ताहि रहै उपयोग॥
अघकी रीति करै जिय जहां। भ्रष्टित रहै रैन दिन तहां॥२४॥
देह कुटुंबादिकसे नेह। जब ह्वै तब निंदै निज देह॥
व्रत पचखान करै नहि रंच। तब कहै रे मूरख तिरजंच॥२५॥
जब कहू जियको हिंसा होय। तब धिक्कार करै निज सोय॥
जब परिणाम बहिर्मुख जाय। तब निज निंदा करै सुभाय॥२६
इहविधि निज निंदहि जे जीव। ते जिन धर्मी कहे सदीव॥
धर्म विषें उद्यम नहिं होय। तब निज निंदहिं धर्मी सोय॥ २७

दोहा.

आतमनिंदा पाठ इम। करत भविक निशदीस॥
अब समता लक्षण कहूं। जो भाषित जगदीश॥ २८॥

चौपाई.

समताभाव धरहि उरमाहिं । वैर भाव काहूसों नाहिं ॥
निज समान जाने सब हंस । क्रोधादिक तब करै विध्वंस ॥२९॥
उत्तम क्षमा धरहि उर आन । सुखदुख दुहुमें एकहि बान ॥
जो कोउ क्रोध करै इह आय । तबहू याके समता भाय ॥३०॥
उपजै क्रोध कषाय कदाच । तब तहँ रहै आपसों राच ॥
सो समतादिक लच्छन जान । थोरेमें कछु कह्यो बखान ॥ ३१ ॥
अब कहुं भगति भाव जो होय । सेवहि पंच पदहिं नित सोय ॥
देव गुरू जिन आगम सार । इनकी भक्ति रहै निरधार ॥३२॥
जिनप्रतिमा जिन सरखी जान । पूजै भाव भगति उर आन ॥
सांधर्मी जिय देखै कोय । ताकी भगति करै पुनि सोय ३३
जामहिं गुण देखै अधिकाय । ताकी भगति करहि मन लाय ॥
भक्ति भावतैं नाहिं अघाय । समदृष्टीको यहै स्वभाय ॥३४॥
अब कहुं गुण वैराग बखान । उदासीन सबसों तिहँ जान ॥
जोपै रहै गृहस्थावास । तोहू मन तिह रहै उदास ॥३५॥
जानै कबहूं चारित लेउँ । परिग्रह सबै त्यागकर देउँ ॥
क्षणभंगुर देखहि संसार । तातैं राग तजै निरधार ॥ ३६॥
निजशरीर विपलेषण करै । अशुचि देख ममता परिहरै ॥
यह जडमय चेतन सरवंग । कैसै राग करूं इहि संग ॥ ३७।
मन लाग्यो आतम रस माहिं । तातैं वैरवासना नाहिं ॥
इम वैराग्य धरहिं जे संत । ते समदृष्टि कहै सिद्धंत ॥३८॥
अब कहुं धर्मरागकी बात । समदृष्टि जिय सबै सुहात ॥
पंच परम परमेष्ठी जान । तिनमें राग धरहिं उर आन ॥३९॥

(१) आदृत. (२) सहधर्मी (३-४) सम्यग्दृष्टि.

जिन आगम जो कह्यो सिधंत । तिनपै राग धरत हैं संत ॥
यों देखहि जिनधर्म उद्योत । त्यों तिहिं राग महा उर होत ४०
जहां सुनै जिनधर्मी कोय । तिहिं मिलिवेकी इच्छा होय ॥
धर्म राग धर्मी जोग । सम्यक लच्छन कहिये सोय ४१

दोहा.

कही आठ गुणमंजरी, सम्यक लक्षण जान ॥
पंच भेद पुनि और है, तेहू कहुं वखान ॥ ४२ ॥
मन प्रभावना भाव धर, हेय उपादेय वत ॥
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी वृतंत ॥ ४३ ॥

चौपाई.

चित प्रभावना भावहिं धरै । किहि विधि जैनधर्म विस्तरै ॥
संघ चलावहि खरचै दाम । प्रगट करै जिन शासननाम ४४
जिनमंदिरकी रचना करै । तामें बिंब अनोपम धरै ॥
करै प्रतिष्ठा विविध प्रकार । सो जिनधर्मी चित्त उदार ।.४५॥
साधू साध्वी श्रावक वर्ग । इनके दूर करहिं उपसर्ग ॥
पोषै संघ चतुर्विधी जान । सो जिनधर्मी कहै बखान ॥४६॥
इह विधि करै उद्योत अनेक । जाके हिरदै परम विवेक ॥
जिनशासनकी महिमा होय । नितप्रति काज करत है सोय ॥४७
जब कोउ जीव महाव्रत धरै । ताके तहां महोत्सव करै ॥
खरचहि द्रव्य देय बहु दान । सो प्रभावना अंग बखान ॥४८॥
अब कहुं हेय उपादेय भेद । जाके लखे मिटै सब खेद ॥
प्रथमहिं हेय कहतहूं सोय । जामे त्याग कर्मको होय । ४९॥
पुद्गल त्याग योग्य सब तोहि । इनकी संगति मगन न होहि ॥
ऐसें जो वरतै परिणाम । हेय कहत है ताको नाम ।। ५०॥

अब कहुं उपादेयकी बात । जामें ग्रहण अर्थ विख्यात ॥
निज स्वरूप जो आतमराम । चिदानंद है ताको नाम ॥ ५१ ॥
ज्ञान दरश चारित भंडार । परमधरम धन धारन हार ॥
निराकार निरभय निररूप । सो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप ॥५२॥
ताकी महिमा जानहिं संत । जाकी सकति अपार अनंत ॥
ताहि उपादेय जानहिं जोय ।सम्यकदृष्टी कहिये सोय ॥ ५३ ॥
निज स्वरूप जो ग्रहण करेय । परसत्ता सब त्यागे देय ॥
ऐसे भाव धरहि जो कोय । हेय उपादेय कहिये सोय ॥ ५४ ॥
अब धीरज गुण कहूं बखान । जिनके ते समदृष्टी जान ॥
धर्मविषै जो धीरज धरै । कष्टदेख सरधा नहि टरै ॥ ५५ ॥
सहै उपसर्ग अनेक प्रकार । सबहू धीरज ह्वै निरधार ॥
मिथ्यामत जो देखै कोय । चमत्कार तामें बहु होय ॥ ५६ ॥
तबहू ताहि लखहि अज्ञान । सो धीरजधर सम्यकवान ॥
अब कहुं हरष गुणहिं समुझाय । समदृष्टी यह सहज सुभाय ॥५७॥
निज स्वरूप निरखहिं जो कोय । ताके हर्ष महा उर होय ॥
सुख अनंतको पायो ईस । तिहँ निरखै हरषै निसदीस ॥ ५८ ॥
छहों द्रव्यके गुण परजाय । जाने जिन आगम सुपसाय[1] ॥
निज निरखै सु विनाशी नाहिं । यातैं हर्ष महा उर माहिं ॥ ५९ ॥
तीर्थंकर देवनके देव । ताकी प्रभुताके सब भेव ॥
अनॅत चतुष्टय आदि विचार । हर्षै ते निज माहिं निहार ॥६०॥
जन्म जरादिक दुख बहु जान । तिहतै भिन्न अपनपो मान ॥
सिद्धसमान विचारहि चित्त । तातैं हर्ष महा उर नित्त ॥ ६१ ॥
अब गुण कहूं प्रवीन बखान । जिनके ते समदृष्टी मान ॥
स्वपरविवेकी परम सुजान । प्रगट्यो बोध महा परधान ॥ ६२ ॥

---

१ सुप्रशाद.

जानन लाग्यो सब विरतंत । जैसो कछु देख्यो भगवंत ॥
जिन आगमके वचन प्रमान । तामहिं बुद्धि अहै परधान ॥६३॥
धर्म महागुण जाके होय । तातैं निपुण न दूजो कोय ॥
जाके हृदय भयो परकाश । ताकी कुमति गई सब नाश ॥ ६४ ॥
चौदह विद्यामें जो आदि । ब्रह्मज्ञान सो कह्यो मरजाद ॥
तातैं जो परवीन प्रधान । सो समदृष्टीविन नहिं आन ॥ ६५ ॥
मिथ्याती जिय भ्रममें रहै । सो प्रवीनता कैसें गहै ॥
तातैं कथा यहै परमान । है प्रवीन जिय सम्यकवान ॥ ६६ ॥
इहि विधि मंजरी लगी अनेक । ज्ञानवत धर देख विवेक ॥
जैसें द्रुम शोभै सहकार तैसें ज्ञान गुणनके भार ॥ ६७ ॥
यातैं प्रथम मंजरिका कही । इहि द्रुम शिवफल लागहि सही ॥
जाके घट समकित परकाश । ताके ये गुन होंहि निवास ॥ ६८ ॥
सम्यग्दर्श लहै जो जीव । सो शिवरूपी कह्यो सदीव ॥
तातैं सम्यक ज्ञान प्रमान । जातें शिवफल होय निदान ॥ ६९ ॥

दोहा

कही ज्ञानगुण मंजरी, जिनमतके अनुसार ॥
जो समुझहिं ओ सरदहै, ते पावहिं भवपार ॥ ७० ॥
यामें निज आतम कथा, आतमगुण विस्तार ॥
तातैं याहि निहारिये, लहिये आतम सार ॥ ७१ ॥
जो गुण सिद्ध महंतके, ते गुण निजमहिं जान ॥
भैया निश्चय निरखतें, फेर रंच जिनमान ॥ ७२ ॥
सत्रहसो चालीसके, उत्तम माघ हिमंत ॥
आदि पक्ष दशमी सुदिन, मंगल कह्यो सिध्दंत ॥ ७३ ॥

इति गुणमंजरिका.

अथ लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथन लिख्यते ।

चौपाई.

प्रणमूं परमदेवके पाय । मन वच भावसहित शिर नाय ॥
लोक क्षेत्रकी गिनती कहूं । राजू भेद जहांतै लहूं ॥ १ ॥
घनाकार सब कह्यो बखान । त्रयशत अरु तेतालिस मान ॥
ताके भेद कहूं समुझाय । श्री जिन आगमके जु पसाय[1] ॥२॥
सिद्ध शिलातक गिनती करी । ऊपरिकी हद इह संग धरी ॥
अहमिंदर नवग्रीव विमान । तिहॅ ऊपरके सबही जान ॥ ३ ॥
राजू ग्यारह घन आकार । देख्यो जिनवर ज्ञानमझार ॥
ताके तरहिं सुरग वसु जान । द्विक चतुकी संख्या उर आन ॥४
ऊपरितें तरको द्दग देहु । गनती भेद समझ कर लेहु ॥
साढे अठ रज्जू द्विक एक । घनाकार सब लहहु विशेक ॥५॥
दूजो द्विक साढे दश होय । तीजो साढे बारह सोय ॥
चौथो साढे चउदह कह्यो । द्विक चतु भेद जिनागम लह्यो ॥६॥
द्वै द्विक और कहूं विस्तार । ते राजू तेतीस निहार ॥
साढे शोरह इक इक जान । इम तेतीस दुहूं द्विक मान ॥७॥
सनत्कुमार महेन्द्र सुदीस । इन दुहुके साढे सैंतीस ॥
अब सुधर्म ईशान विमान । तिर्यक् लोक याहि महिजान ॥८॥
मेरु चूलिकातें गन लही । राजू साढे उनइस कही ॥
सब गिनती ऊपरकी दीस । राजू इक सो सैतालीस ॥ ९ ॥
अब नीचें कहुं क्रमसें गुनो । जाके भेद जथारथ सुणो ॥
मेरू तलवासें गण लेह । सात नरकको वरणन जेह ॥१०॥

---

(१) प्रसादसे

पहिली रतनप्रभा ते जान । दशराजू तिह कही बखान ॥
दूजी शोलह राजू कही । तीजी नरक वीसद्वै लही ॥११॥
चौथी नरक अठाइस राजु । तिह निकस्यो जिय सारे काजु ॥
पंचमि नरक राजु चौंतीश । छट्टी चालिस कही जगदीश ॥१२
नरक सातवींकी मरजाद । कही छियालिस कथन अनाद ॥
लोक अन्त सबतैं जो तरें । सो सब नर्क सातवीं धरैं ॥१३॥
सात नरककी गिनती जान । शतइक और छ्यानवें मान ॥
सब राजू देखे जगदीस । भये तीनसै तैतालीस ॥ १४ ॥
घनाकार सब भुवनहिं जान । ऊंचो राजू चवदह मान ॥
सागर स्वयभुरमणहिं जोय । तिहंवानहि राजू इक होय ॥१५॥
पुरुषाकार कह्यो सब लोक । ताके परें सु और अलोक ॥
इहि मधि त्रसनाडी इक जान । ताके भेद कहूं उर आन ॥१६
चवदह राजू कही उतंग । राजू इक पोली सरवंग ॥
तामहिं त्रसथावरको थान । याके परैं सु थावर मान ॥१७
इहविधि कही जिनागम माख । ग्रंथ त्रिलोकसारकी साख ॥
धर्म ध्यानको जानहु भेद । चर्ण चतुर्थ लिखहु विन खेद॥१८॥
इतनो है यो लोकाकाश । छहों दरवको यामें वास ॥
चेतन ज्ञान दरश गुण धरै । और पंथ जडता अनुसरै ॥१९॥
रहै सदा इहि लोकमझार । तू 'भैया' निजरूप निहार ॥
सत्रहसै चालीसे सही । पौष सुदी पूनम रवि कही ॥२०॥

इति लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथनं ।

अथ मधुविन्दुककी चौपाई लिख्यते।

दोहा.

वंदों जिनवर जगत गुरु, वंदों सिद्ध महंत ॥
वंदों साधू पुरुष सब, वंदों शुद्ध सिद्धंत ॥ १ ॥
मधु विंदुककी चौपई, कहूं ग्रन्थ अनुसार ॥
दुख अरु सुखके उदधिको, लहिये पारावार ॥ २ ॥
काल अनादि गयो इहां, वसत यहां जगमाहिं ॥
दुख अरु सुखसों भिन्नता, जानी कबहू नाहिं ॥ ३ ॥
विषयसुखनको सुख लख्यो, तिहं दुख लह्यो अपार ॥
सो जानै जिन केवली, है अनंत विस्तार ॥ ४ ॥

चौपाई.

इक दिन भविजन मिले सुभाय । आवत देख्यो श्रीमुनिराय ॥
अट्ठाईश मूल गुण धरै । तास चरण भवि वंदन करै ॥ ५ ॥
विनती कराहि दूहूंकर जोर । हे प्रभु भवबधनतैं छोर ॥
तब मुनिराज धरमहित जान । जिन आगम कछु कहहिं बखान ॥६॥

दोहा.

भविक सुनहु उपदेश तुम, मन वच दृढकर काय ॥
ज्यों पावहु निज सम्पदा, संशय वेग विलाय ॥ ७ ॥
इक दृष्टांत विचारिकें, कहैं सुगुरु उपदेश ॥
सुनहु भविक थिरतासहित, तज अज्ञान कलेश ॥ ८ ॥

चौपाई.

एक पुरुष बन भूल्यो परयो । ढूंढत ढूंढत सब निशि फिरयो ॥
चहुं दिश अटवी झझाकार । हींडत कहुं नहिं पावै पार ॥ ९ ॥

महा भयानक सब वनराय । भटकत फिरै कछू न बसाय ॥
जित देखहि तित कानन जोर । पर्यो महा संकट तिहँ घोर॥१०
सोचत बाघ सिंह जिन खाय । जिन कहुं वैरी पकर न जाय ॥
इहि विधि दुखित महावन धाय। तिहं थानक गज निकस्यो आय॥११
ताकि दृष्टि पर्यो नर जहां । ता पकरन गज दौर्यो तहां ॥
यह भाग्यो आगेको जाय । पाछैं गज आवत है धाय ॥ १२ ॥
जो यह देखै दृष्टि निहार । यह तो रह्यो डगन द्वै चार ॥
अब मैं भागि कहां लों जाउँ । देख्यो कूप एक तिहँ ठाउं ॥१३॥
पर्यो कूप मधि यहै विचार । गज पकरै तो डारै मार ॥
कूप मध्य वड ऊग्यो एक । ताकी शाखा फली अनेक ॥ १४ ॥
तामहिं मधुमक्षिनको थान । छत्ता एक लग्यो पहचान ॥
वरकी जटा लटकि तहँ रही । कूप मध्य गिरते कर गही ॥१५॥
दोउकर पकर रह्यो तिहँ जोर । नीचें देखै दृष्टि मरोर ॥
कूप मध्य अजगर विकराल । मुह फारे बैठ्यो जिम काल ॥१६॥
वह निरखहि आवै मुख मांहि । तो फिर भाजि कहां लों जाहि॥
चार कौनमें नाग जु चार । बैठे तहां तेहु मुखफार ॥ १७ ॥
कब यह नर गिर है इह ठौर । गिरतैं याको कीजे कौर ॥
नीचें पंच सर्प लखि डर्यो । तब ऊपरको मस्तक कर्यो ॥१८॥
देखै वटकी जटै कहँ दोय । ऊंदर जुग काटत है सोय ॥
इक उज्वल इक श्याम शरीर । काटहि जटा नहीं तिहँ पीर॥१९
कूप कठ गज शुंड प्रकार । झकझोरै वरकी बहु डार ॥
पकर निशुंड चलावै ताहि । यह तो रह्यो दूर द्रुम साहि ॥२०॥

(१—२) मत ३ जटा. ४ दो चूहे.

बरकी शाखा हाली सबै । मधुकी बूंद गिरी इक तबै ॥
इह राख्यो तबही मुखफार । आवत ग्रहण करी निरधार ॥ २१ ॥
झकझोरत माखी उडि जेह । आय लगी सब याकी देह ॥
काटै तन पै वेदै नाहिं । मन लाग्यो मधु छत्ता माहिं ॥ २२ ॥
एक बूंद जब मुख महिं परै । तब दूजीपैं मनसा करै ॥
लगी दृष्टि छत्तासों जाय । दुख संकटसों नहिं अकुलाय ॥२३॥

सोरठा.

तब तिहँ थानक कोय, विद्याधर आकाशमें ॥
जाहिं पुरुष तिय दोय, बैठे निजहि विमानमें ॥ २४ ॥
तिय निरख्यों तिहँ बार, कोउ पुरुष संकट परचो ॥
हे पिय ! दुखहिं निवार, निराधार नर कूपमें ॥ २५ ॥
दुख अपार अति घोर, परचो पुरुष संकट सहै ॥
कछु न चलत है जोर, हे प्रभु याहि निवारिये ॥ २ . ॥
कहै विद्याधर वैन, सुनहु प्रिया तुम सत्य यह ॥
यह मानें इत चैन, निकसनको क्योंही नही ॥ २७ ॥

दोहा.

प्रिया कहै प्रियतम सुनो, किहँ सुख मान्यो चैन ।
यह अटवी यह कूप गज, अहि मखि मूसा एन ॥ २८ ॥
कहै विद्याधर प्रिये सुनो, मधु विंदव रस लीन ॥
यह सुख मान रच्यो यहां, दुख अंगीकृत कीन ॥ २९ ॥
ए सब दुखहिं विचारके, मधुविंदवके स्वाद ॥
[illegible]ग्यो मूढ संकट सहै, कहिवो सबही बाद ॥ ३० ॥
बहुर प्रिया कहै सुनह प्रिय, ऐसी कबहुं न होय ॥
एते संकट जो सहै, सो सुख मानै कोय ॥ ३१ ॥

तातैं याको काढिये, कहै तिया समुझाय ॥
विद्याधर कहै हठ तजहु, पंथ अकारथ जाय ॥ ३२ ॥
तीय कहै चलभो नहीं, इहि विन काढे आज ॥
स्वामि बडो उपकार है, कीजे उत्तम काज ॥ ३३ ॥
तिय हठविद्याधर तहां, उतरयो निजहिं विमान ॥
आय कह्यो तिहँ नर प्रतैं, निकसि निकसि अज्ञान॥ ३४ ॥
आवे तो हम बांह गहि, तोकों लेय निकासि ॥
निज विमान वैठायकैं, पहुंचावैं तो वास ॥ ३५ ॥

चौपाई.

ऐसे वचन सुनत निज कान । बोलै पुरुष सुनहु हितवान ॥
एक बूंद छत्तासो गिरै । सो अबके मेरे मुख गिरै ॥ ३६ ॥
ताको अबहीं चख सरवंग । तब मैं चलूं तुमारे संग ॥
जब वह बूंद दरी मुख माहिं । तब दूजीपर मन ललचाहिं ॥ ३७ ॥
अब यह जो आवेगी सही । तो चलहूं कछु धोको नही ॥
दूजी बूंद परी मुख जान । तब तीजीपर करी पिछान ॥ ३८ ॥
इह विधि बूंद स्वादके काज । लाग रह्यो नहिं कछू इलाज ॥
विद्याधर दै हाँक पुकार । निकसै नहीं चल्यो तब हार ॥ ३९ ॥
आय विमान भयो असवार । निज थानक पहुंच्यो तिहँवार ॥
तबही भवि मुनिके नमि पांय । कहा कही प्रभु कह समुझाय ॥ ४० ॥
हम नाहिं समुझे यह दृष्टांत । कहहु प्रगट प्रभु सब विरतांत ॥
को नर को गजको वनकूप । को अहि को वट जटा अनूप ॥ ४१ ॥
को ऊंदर को मधुकी बुंद । को माखी जो दे दुखदुंद ॥
कौन विद्याधर कहो समुझाय । जातैं सब संशय मिट जाय ॥ ४२ ॥

(१) हितेपी.

दोहा.

तब मुनिवर दृष्टांत विधि, कहै भविक समुझाय ॥
सावधान ह्वै सुनहु तुम, कहूं कथन गणगाय ॥ ४३ ॥

चौपाई.

यह संसार महा वन जान । तामहिं भवभ्रम कूप समान ॥
गज जिम काल फिरत निशदीस । तिहँ पकरन कहूं विस्वावीस
वटकी जटा लटकि जो रही । सो आवर्दा जिनवर कही ॥
तिहँ जर काटत मूंसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुमसोय ४५
मांखी चूंटत ताहि शरीर । सो बहुरोगादिककी पीर ॥
अजगर पर्यो कूपके बीच । सो निगोद सबतैं गतिनीच ॥४६॥
याकी कछु मरजादा नाहिं । काल अनादि रहै इह माहिं ॥
तातै भिन्न कही इहि ठौर । चहुं गति महितै भिन्न न और ॥४७॥
चहुं दिश चारहु महा भुजंग । सो गति चार कही सरवग ॥
मधुकी बूंद विषै सुख जान । जिहं सुख काजरह्यो हितमान ४८
ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव । इह विधि संकट सहै सदीव ॥
विद्याधर तहँ सुगुरु समान । दे उपदेश सुनावत कान ॥ ४९ ॥
आवहु तुमहिं निकाशहिं वीर । दूर करहिं दुख संकट भीर ॥
तबहू मूरख मानै नाहिं । मधुकी बूंदविषै ललचाहिं ॥ ५० ॥
इतनो दुख संकट सह रहै । सुगुरुवचन सुन तज्यो न चहै ॥
तैसे ज्ञानहीन जियवंत । ए दुख संकट सहै अनंत ॥ ५१ ॥
विषै सुखन मधुबिंदव काज । मानत नाहिं वचन जिनराज ॥
सहत महा दुख संकट घोर । निकस न चलत वधू शिव ओर ५२

जिहं थानक सुख सागर भरे । काल अनंतहु विलसहु खरे ॥
जन्मजरादिक दुख मिट जाय । प्रगटै परमधरम अधिकाय ॥५३॥
चहुरन कबहू संकट होय । सुख अनंत विलसहु ध्रुवमोय ॥
यह उपदेश कहे मुनिराज । भव्य जीव चेतहु निजकाज ॥५४॥

दोहा.

सुनके वचन मुनीन्द्रके, भवि चिंतै मन माहिं ॥
विषयसुखनमों मगनता, कबहूं कीजे नाहि ॥ ५५ ॥
विषयसुखनकी मगनसों, ये दुख होहिं अपार ॥
तातैं विषय विहडिये, मन वच क्रम निरधार ॥ ५६ ॥
यह विचार कर भविकजन, वंदत मुनिके पाय ॥
धन्य धन्य तारन तरन, जिन यह पंथ बताय ॥ ५७ ॥
एतो दुख संसारमें, एतो सुख सब जान ॥
इम लखि भैया चेतिये, सुगुरु वचन उरआन ॥ ५८ ॥
सत्रहसौ चालीसके, मारगसिर शित पक्ष ॥
तिथि द्वादशी सुहावनी, भोमवार परतक्ष ॥ ५९ ॥
मधुविंदुकी चौपई कही ग्रंथ अनुसार ॥
जे समुझै वा सरदहै, ते पावहिं भवपार ॥ ६० ॥

इति मधुविंदुकी चौपई.

अथ सिद्धचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा.

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध ॥
परम ब्रह्म महिमा कहूं, परम धरम गुण साध ॥ १ ॥

कवित्त.

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भव्यजीव! तुम आपमें निहारकैं। कर्मको न अश कोऊ भर्म को न वंश कोऊ, जाकी सुद्धताई मैं न और आप टारकै॥ जैसो शिव खेत बसै तैसो ब्रह्म इहां लसै, इहां उहां फेर नाहि देखिये विचारकै। जेई गुण सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्मपांहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहिं निश्चय निरधारकै॥ २॥ सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद ताहीको निहार निजरूप मान लीजिये। कर्मको कलंक अंग पंक ज्यों पखार हरयो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये॥ थिरताके सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सुधार भले पीजिये। ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान दीसै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये॥ ३॥ भाव कर्म नाम रागद्वेषको बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग मानिये। द्रव्यकर्म नाम अष्टकर्मको शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भलै जानिये। नो करम संज्ञातैं शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक प्रमानिये॥ अंतरालसमै जो अहार विना रहै जीव, नो करम तहां नाहि याहीतैं बखानिये॥४॥

सवैया.

लोपाहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो।
ज्ञानप्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो॥
चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्धसमान विचारो।
ज्ञान अनंत वहै भगवंत, वसै अरि पकतिसो तिन न्यारो॥५॥

छप्पय छंद.

त्रिविधि कर्मतें भिन्न, भिन्न पररूप परसंत ॥
विविधि जगतके चिह्न, लखै निज ज्ञान दरसतै ॥
वसै आपथल माहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि ।
प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सब छाजहि ॥
इह विधि अनेक गुणब्रह्ममहिं, चेतनता निर्मल लसै ॥
तस पद त्रिकाल वंदत भविक, शुद्ध स्वभावहि नित बसै ६
अष्टकर्मतें रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर ॥
चिदानंद भगवान, वसत तिहुं लोक शीसपर ॥
विलसत सुखजु अनंत, संत ताको नित ध्यावहि ॥
वेदहि ताहि समान, आयु घट माहिं लखावहि ॥
इमध्यान करहि निर्मल निरखि, गुणअनंत प्रगटहिं सरव ॥
तस पदत्रिकाल वदत भविक, शुद्ध सिद्ध आतम दरव ॥७॥
ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कषायें ।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें ॥
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचै निज मानत ।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत ॥
सो अविनाशी अविचल दरव, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम ॥
निर्मल विशुद्ध शास्वत सुथिर, चिदानंद चेतन धरम ॥८॥

कवित्त.

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत आन गहो जिनमत छोरकैं । धरम न ध्यान गहो धरमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव लहो, शकति सुफोरकैं ॥ परसों सनेहकरो, परम सनेह

करो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकैं। अष्टा दशदोष हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्ट गुण भाम करो, कहूं कर जोरकै ॥ ९ ॥

वर्णमै न ज्ञान नहि ज्ञान रस पंचनमें, फर्समें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं गंधमें। रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं ग्रंथनमें, शब्दमें न ज्ञा-न नहीं ज्ञान कर्म बंधमें ॥ इनतैं अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहां वसै ज्ञान शुद्ध चेतनाके खंधमें ॥ ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेव, ज्ञानवंत पावै ताहि मूढ धावै धंधमें ॥ १० ॥

वीतराग वैन सो तो ऐनसे विराजत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सूझै षट दर्व सर्व गुण परजाय भेद, देवगुरु ग्रंथ पंथ सत्य उर गहिये ॥ करमको नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो, ध्यानकी हुतास अरिपंकतिको दहिये। खोल दृग देखि रूप अ-द्धो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सब तोपैं रिद्ध कहिये ॥ ११

रागकी जु रीतसु तो बडी विपरीत कही, दोषकी जु बात सु तो महादुख दात है। इनहीकी संगतिसों कर्मबन्ध करै जीव इनही संगतिसों नरक निपात है ॥ इनहीकी संगतिसों वसिये निगोद बीच, जाके दुखदाहको न थाह कह्यो जात है। येही जगजाल के फिरावनको वडे भूप इनहीके त्यागे भव भ्रम न विलात है ॥ १२ ॥

मात्रिक कवित्त.

असी चार आसन मुनिवरके, तामें मुक्ति होनके दोय।
पद्मासन खड्गासन कहियें, इनविन मुक्ति होय नहिं कोय ॥
परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्मको थान भ्रष्टकर, शिवसंपति विलसत है सोय ॥ १३ ॥

दोहा.

जैसो शिवखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ १४ ॥

इति सिद्धचतुर्दशी.

अथ निर्वाणकांडभाषा लिख्यते ।

दोहा.

वीतराग वंदौ सदा, भावसहित शिरनाय ।
कहू कांड निर्वानकी, भाषा विविध बनाय ॥ १ ॥

चौपाई.

अष्टापद अदीश्वर स्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार । वंदों भावभगति उर धार ॥ २ ॥
चर्म तिर्थंकर चर्म शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥
शिखरसमेद जिनेश्वर वीस । भावसहित वंदो जगदीस ॥ ३ ॥
वरदत औ वर इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥
नगर तारवर मुनि उठै कोड । वंदों भावसहित करजोड ॥ ४ ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात । कोटि बहत्तर अरु सौ सात ॥
संबु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय । अनुरुद्ध आदि नमूं तसपाय ॥ ५ ॥
रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाड नरिंद आदि गुणधीर ॥
पंचकोड मुनि मुक्तिमझार । पावागिर वंदों निरधार ॥ ६ ॥
पांडव तीन द्रविड राजान । आठकोड मुनि मुकतीप्रमान ॥
श्रीशत्रुंजयगिरिके शीस । भावसहित वंदो निशदीस ॥ ७ ॥

---

(१) साढेतीन करोड

जो बलिभद्र मुकतिमें गये । आठ कोडि मुनि औरहिं भये ॥
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहुं काल॥८॥
राम हनू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥
कोड निन्याणव मुक्तिप्रमान । तुंगी गिर वंदों धर ध्यान ॥९॥
नंग अनंग कुमार सुजान । पंचकोड अरु अर्द्ध प्रवान ॥
मुक्ति गये शिहुनागिरशीस । ते वंदों त्रिभुवनपति ईश ॥१०॥
रावनके सुत आदि कुमार । मुक्ति भये रेवातट सार ॥
कोटि पंच अरु लाखपचास । ते वंदो धर परम हुलास ॥११॥
रेवानदी सिद्धवर कूट । पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ॥
द्वै चक्री दश काम कुमार । औठंकोडि वंदों भवपार ॥ १२ ॥
बडवानी बडनगर सुचंग । दक्षिण दिशि गिर चूल उतंग ॥
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते वंदों भवसागर तर्ण ॥ १३ ॥
सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पावागिरिवर शिखरमझार ॥
चलना नदीतीरके पास । मुक्ति गये वंदों नित तास॥१४॥
फलहोडी वडगाम अनूप । पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहां । मुक्ति गये वंदों नित तहां ॥१५॥
बाल महाबाल मुनि दोय । नाग कुमार मिले त्रय होय ॥
श्रीअष्टापद मुकति मझार । ते वंदों नित सुरत संभार ।१६॥
अचला पुरकी दिशा ईशान । तहां मेढगिरि नाम प्रधान ॥
साढे तीन कोटि मुनिराय । तिनके चरन नमूं चितलाय ॥ १७॥
वंशस्थल वनके ढिग होय । पश्चिम दिश कुंथलगिरि सोय ॥
कुल भूषण देश भूषण नाम । तिनके चरणनि करहुं प्रणाम १८

---

(१) साढेतीन करोड

जसरथ राजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसो लहे ॥
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान । वंदन करों जोर जुग पान ॥ १९
समवशरण श्रीपार्श्वजिनंद । रिशंदेह गिरि नयनानंद ॥
वरदत्ताहि पंच ऋषिराज । ते वंदों नित धरम जिहाज ॥ २० ॥
तीन लोकके तीरथ जहां । नित प्रति वंदन कीजे तहां ॥
मन वच काय सहित शिर नाय । वंदन करें भविक गुण गाय ॥ २१ ॥
संवत सत्रहसो इकताल । आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ॥
'भैया' वंदन करहि त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुण माल ॥ २२ ॥

इति निर्वाणकाडभाषा.

अथ एकादशगुणस्थानपर्यन्तपंथवर्णन लिख्यते ॥

दोहा.

कर्म कलंक खपायकें, भये सिद्ध भगवान ॥
नित प्रति वंदों भाव धर, जो प्रगटै निज ज्ञान ॥ १ ॥
कहों पंथ इह जीवके, फिर्हें मग आवै जाय ॥
गुण थानक दश एकलों, धरैं जनम मृत भाय ॥ २ ॥
भव्य राशितैं निकसिकैं, मुक्ति होनके काज ॥
चढहि गिरहि इम पंथमें, अंत होहिं महाराज ॥ ३ ॥

चौपाई.

प्रथम मिथ्यात नाम गुण थान । उभय भेद ताके परवान ॥
एक अनादि नाम मिथ्यात । दूजो सादि कह्यो विख्यात ॥ ४ ॥
प्रथम अनादि मिथ्याती जीव । पंथ तीनको धरै सदीव ॥
चौथे पंचम सप्तम जाय । गिरैतो फिर मिथ्यापुर आय ॥ ५ ॥
सादि मिथ्यात्व जीव जो धरै । पंथ चार ताके विस्तरै ॥

तीजे चौथे पंचम जाय। सप्तम पुरलों पहुंचे धाय ॥ ६ ॥
अब दूजो सासादन नाम। ताके एक गिरनको धाम ॥
मिथ्यापुरलों आवे सही। दूजी वाट न याकी कही ॥ ७ ॥
तीजो मिश्रनाम गुण थान। पंथ दोय याके परमान ॥
गिरै तो पहिले पुरके माहिं। चढै तो चौथे थानक जाहिं ॥ ८ ॥
चौथौ है अव्रतपुर थान। पंथ पंच भाखे भगवान ॥
गिरै तो तीजे दूजे जाय। मिथ्यापुरलों पहुंचे आय ॥ ९ ॥
चढै तो पंचम सप्तम सही। ऐसी महिमा याकी कही ॥
पंचम देशविरतपुर जान। पंथ पंच ताके उर आन ॥ १० ॥
गिरै तो चौथे तीजै जाय। अथवा दूजै पहिले भाय ॥
चढै तो सप्तम पुरके माहिं। इहि थानकू अधिके कछु नाहिं ॥ ११ ॥
अब षष्टम परमत्त बखान। ताके पंथ छहों पहिचान ॥
गिरै तौ पंचम चौ त्रिय जाय। दूजै पहिले धरै सुभाय ॥ १२ ॥
चढै तो सप्तम पुरलों आय। ऐसे भेद कहे जिनराय ॥
सप्तम अप्रमत्त पुर नाम। पंथ तीन ताके अभिराम ॥ १३ ॥
गिरै तो छठ्ठे पुरलों जाहिं। चढै तो अष्टम पुरके माहिं ॥
मरन करै चौथे पुर आय। ऐसे भेद कहे समुझाय ॥ १४ ॥
अष्टम नाम अपूरव करण। शिवलोचन मधि ताकी धरण ॥
गिरै तो सप्तम पुरहि अखंड। चढै तो नवमें पुर परचंड ॥ १५ ॥
मरन करै तो चौथै जाय। ऐसे कथन कह्यो मुनिराय ॥
नवमों नाम अनिव्रतकर्ण। पंथ तीन ताके विस्तर्ण ॥ १६ ॥
गिरै तो अष्टम पुरके संग। चढै तो दशमें होय अभंग ॥
मरन करै चौथे पुर बीच। तोहू भवथिति रहै नगीच ॥ १७ ॥
सूक्ष्म सांपराय दश कहै। पंथ तीन ताके इम लहै ॥

गिरै तौ नवमें पुरकी बाट । चढै इकादश उपशम घाट ॥१८॥
मरन करै चौथे पुर सही । ऐसी रीति जिनागम कही ॥
एकादश मोह उपशांत । पंथ दोय तिहं कहे सिद्धांत ॥ १९ ॥
गिरै तो दशमें पुर निरधार । मरन करै तो चोथै सार ॥
ऐसे भेद जिनागममाहिं । गोमठसार ग्रथकी छांहि ॥ २० ॥
भाषा करहि 'भविक' इह हेत । याके पढत अर्थ कह देत ॥
बाल गुपाल पढहिं जे जीव । 'भैया' ते सुखलहहिं सदीव ॥२१

इति एकादशगुणस्थानकथनम् ।

अथ कालाष्टक लिख्यते ।

दोहा

तिहुं पुरके पुरहूत सब, वंदत शीस नवाय ॥
तिह तीर्थंकर देवसों, बचत नाहि यमराय ॥ १ ॥
जिनकी भ्रूके फरकतें, कंपत सुरनरवृन्द ॥
तेहू काल छिनमें, लये, योधा सुर इन्द्र ॥ २ ॥
जाकी आज्ञामें रहै, छहों खंडके भूप ॥
ता चक्रीधरको ग्रसै, काल महा भयरूप ॥ ३ ॥
नारायण नरलोकमें, महा शूर बलवंत ॥
तीन खंड आज्ञा वहै. तिनैंहु काल ग्रसंत ॥ ४ ॥
औरहु भूप बलिष्ट जे, वसत याहि जगमाहिं ॥
तेहु कालकी चालसों, बचत रंच कहुं नाहिं ॥ ५ ॥
तातें काल महाबली, करत सबनपै जोर ॥
धन धन सिधपरमात्मा, जिहं कीनों इहि भोर ॥ ६ ॥

ऐसे काल बलिष्टको, जो जीतै सो देव ॥
कहत दास भगवंतको, कीजे ताकी सेव ॥ ७॥
काल वसत जगजालमें, नूतन करत पुरान ॥
'भैया' जिहँ जग त्यागियो, नमहुं ताहि धर ध्यान ॥८॥

इतिकालाष्टक.

अथ उपदेशपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, वंदो शीस नवाय ॥
कहुं उपदेशपचीसिका, श्रीगुरुके सुपसाय ॥ १ ॥

चौपाई.

वसत निगोद काल बहु गये । चेतन सावधान नहिं भये ॥
दिन दश निकस बहुर फिर परना । एते पर एता क्या करना ॥ २ ॥
अनंत जीवकी एकहि काया । उपजन मरन एकत्र कहाया ॥
स्वास उसास अठारह मरना । एते पर एता क्या करना ॥३॥
अक्षरभाग अनंतम कह्यो । चेतन ज्ञान इहांलों रह्यो ॥
कौन सकति कर तहां निकरना । एते पर एता क्या करना ॥४॥
पृथिवी अप तेऊ अरु वाय । वनस्पतीमें वसै सुभाय ॥
ऐसी गतिमें दुख बहु भरना । एते पर एता क्या करना ॥५॥
केतो काल इहां तोहि गयो । निकसि फेर विकलत्रय भयो ॥
ताका दुख कछु जाय न वरना । एते पर एता क्या करना ॥६॥
पशुपक्षीकी काया पाई । चेतन रहे तहां लपटाई ॥
विना विवेक कहो क्यों तरना । एते पर एता क्या करना ॥७॥
इम तिरजंच माहिं दुख सहे । सो दुख किनहूं जाहि न कहे ॥

पाप करमतैं इह गति परना । एते पर एता क्या करना ॥ ८ ॥
फिरहू परे नरकके माहीं । सो दुख कैसे वरनें जाहीं ॥
क्षेत्र गंधर्तें नाक जु सरना । एते पर एता क्या करना ॥९॥
अग्निसमान भूमि जहँ कही । कितहू शील महा बन रही ॥
सूरी सेज छिनक नहिं टरना । एते पर एता क्या करना ॥१०
परम अधर्मी देव कुमारा । छेदन भेदन करहिं अपारा ॥
तिनके वसतें नाहि उवरना । एते पर एता क्या करना ॥११॥
रंचक सुख जहँ जियको नाहीं । वसत याहि गति नाहि अघाहीं
देखत दुष्ट महा भय डरना । एते पर एता क्या करना ॥१२॥
पुण्ययोग भयो सुर अवतारा । फिरत फिरत इह जगतमझारा ॥
आवत काल देख थर हरना । एते पर एता क्या करना ॥१३॥
सुरमंदिर अरु सुखसंयोगा । निशदिन सुख संपतिके भोगा ॥
छिनइक माहिं तहांते टरना । एते पर एता क्या करना ॥१४।
बहु जन्मांतर पुण्य कमाया । तब कहुं लही मनुष परजाया ॥
तामें लग्यो जरा गद मरना । एते पर एता क्या करना ॥१५॥
धन जोवन सबही ठकुराई । कर्म योगतैं नौनिधि पाई ॥
सो स्वपनांतरकासा चरना । एते पर एता क्या करना ॥१६
निशदिन विषय भोग लपटाना। समुझै नहिं कौन गति जाना ॥
है छिन काल आयुको चरना । एते पर एता क्या करना ॥१७ ॥
इन विषयनकेतो दुख दीनों । तबहूं तू तेही रस भीनों ॥
नेक विवेकहृदै नहिं धरना । एते पर एता क्या करना ॥१८॥
परसंगति केतो दुख पावै । तबहू तोकों लाज न आवै ॥
वासन सग नीर ज्यों जरना । एते पर एता क्या करना ॥१९॥
देव धर्म गुरु ग्रंथ न जानें । स्वपरविवेक हृदै नहिं आनें ॥
क्यों होवै भवसागर तरना । एते पर एता क्या करना ॥२०

पांचों इन्द्री अति वटपारे । परम धर्म धन मूसन हारे ॥
खांहिं पियहि एतो दुख भरना । एते पर एता क्या करना ॥ २१
सिद्ध समान न जाने आपा । तातैं तोहि लगत है पापा ॥
खोल देख घट पटहिं उघरना । एते पर एता क्या करना ॥ २२ ॥
श्रीजिनवचन अमल रस वानी । पीवहिं क्यों नहिं मूढ अज्ञानी ॥
जातैं जन्म जरा मृत हरना । एते पर एता क्या करना ॥ २३ ॥
जो चेतै तो है यह दावो । नाही बैठे मंगल गावो ॥
फिर यह नरभव वृक्षन फरना । एते पर एता क्या करना ॥ २४ ॥
'भैया' विनवहि वारंवारा । चेतन चेत भलो अवतारा ॥
है दूलह शिव नारी वरना । एते पर एता क्या करना ॥ २५ ॥

दोहा.

ज्ञानमयी दर्शन नमयी, चारितमयी स्वभाय ॥
सो परमातम ध्याइये, यहै सु मोक्ष उपाय ॥ २६ ॥
सत्रहसो इकतालके, मार्गशिर शितपक्ष ॥
तिथि शंकर मन लीजिये, श्रीरविवार प्रतक्ष ॥ २७ ॥

इति उपदेशपचीसिका.

अथ नंदीश्वरद्वीपकी जयमाला ।

दोहा.

वंदों श्रीजिनदेवको, अरु वंदो जिन वैन ॥
जस प्रसाद इह जीवके, प्रगट होंय निज नैन ॥ १ ॥
श्रीनंदीश्वर द्वीपकी, महिमा अगम अपार ॥
कहूं तास जय मालिका, जिनमतके अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

एक अरब त्रेसठ कोडि । लख चौरासी तापरि जोडि ॥
एते योजन महा प्रमान । अष्टमद्वीप नंदीश्वर जान ॥ ३ ॥
तामहि चहुं दिशि शिखरि उतंग । तिनको मान कहुं सरवंग ॥
दिशि पूरव गिरि तेरह सही । ताकी उपमा जाय न कही ॥४॥
मध्य एक अंजनके रंग । शिखरि उतंग वन्यो सरवंग ॥
सहस चौरासी योजन मान । धूपरवत देख्यो भगवान ॥ ५ ॥
ताके चहुं दिशि परवत चार । उज्ज्वल वरन महा सुखकार ॥
चौसठि सहस उतंग जु होय । दधिमुख नाम कहावे सोय ॥६॥
इक इक दधि मुखपरवत तास । द्वै द्वै रतिकर अचल निवास ॥
इक इक अरुण वरन गिरि मान । सहज चवालिस ऊर्द्ध प्रमान । ७
इहविधि तेरह गिरिवर गने । ता परि चैत्य अकृत्रिम वने
इक इक गिरिपर इक प्रासाद । ताकी रचना वनी अनाद ॥८॥
इक जिनमंदरको विस्तार । सुनहु भविक परमागमसार ॥
गिरिको शिखर वरत तिहिरूप । रत्नमयी प्रासाद अनूप ॥ ९ ॥
इक चैत्यालय विंव प्रमान । इकसो आठ अनूपम ज्ञान ॥
रत्नमणी सुंदर आकार । धनुष पंचसो ऊर्ध्व उदार ॥ १० ॥
इम तेरह पूरव दिशि कहे । ताके भेद जिनागम लहे ॥
छप्पनसो सोरह विंव सवै । ताकी भावन भाऊं अवै ॥ ११ ॥
अनंत ज्ञान जो आतमराम । सो प्रगटहि इह मुद्रा धाम ॥
लोक अलीक विलोकन हार । ता परदेशनि यह आकार ॥ १२
अनंत काललों यही स्वरूप । सिद्धालय राजे चिद्रूप ॥

(१) मंदिर.

सुख अनंत प्रगटै इहि ध्यान । तातैं जिनप्रतिमा परधान ॥ १३
जिनप्रतिमा जिनवरणे कही । जिन सादृशमें अंतर नहीं ॥
सब सुरवृंद नंदीश्वर जाय । पूजहि तहां विविध धर भाय ॥१४
'भैया' नितप्रति शीस नवाय । वंदन करहि परम गुण गाय ॥
इह ध्यावत निज पावत सही । तौ जयमाल नंदीश्वर कही ॥१५

इति नंदीश्वरजयमाला.

अथ बारहभावना लिख्यते ।

चौपाई.

पंच परम पद वंदन करों । मन वच भाव सहित उर धरों ॥
बारह भावन पावन जान । भाऊं आतम गुण पहिचान ॥१॥
थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त । देहादिक अरु रूप समस्त ॥
थिर विन नेह कौनसों करों । अथिर देख ममता परिहरों ॥२
असरन तोहि सरन नहिं कोय । तीन लोकमहिं दृगधर जोय ॥
कोऊ न तेरो राखन हार । कर्मनवस चेतन निरधार ॥ ३ ॥
अरु संसार भावना एह । परद्रव्यनसों कीजे नेह ॥
तू चेतन वे जड सरवंग । तातै तजहु परायो संग । ॥ ४ ॥
एक जीव तू आप त्रिकाल । ऊरध मध्य भवन पाताल ॥
दूजो कोऊ न तेरो साथ । सदा अकेलो फिरहि अनाथ ॥५
भिन्न सदा पुद्गलतैं रहै । भर्मबुद्धितै जडता गहै ॥
वे रूपी पुद्गलके खंध । तू चिनमूरत सदा अबंध ॥ ६ ॥
अशुचि देख देहादिक अंग । कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥
अस्थी मांस रुधिर गद गेह । मलमूतन लखि तजहु सनेह ॥७॥

आस्रव परसों कीजे प्रीत । तातैं बंध बढहि विपरीत ॥
पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं । तू चेतन वे जड सब आंहि ॥ ८ ॥
संवर परको रोकन भाव । सुख होवेको यही उपाव ॥
आवे नहीं नये जहां कर्म । पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म ॥९॥
थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं । निर्जरभाव अधिक अधिकाहिं ॥
निर्मल होय चिदानंद आप । मिटै सहज परसंग मिलाप ॥१०॥
लोकमांहि तेरो कछु नाहिं । लोक आन तुम आन लखाहिं ॥
वह षट दर्शनको सब धाम । तू चिनमूरति आतम राम ॥११॥
दुर्लभ पर दर्वनिको भाव । सो तोहि दुर्लभ है सुनि राव ॥
जो तेरो है ज्ञान अनंत । सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२
धर्म सुआप स्वभावहि जान । आप स्वभाव धर्म सोई मान ॥
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय । तब परमातम पद लखि सोय ॥१३
येही बारह भावन सार । तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥
ह्वै वैराग महाव्रत लेंहिं । तब भवभ्रमन जलांजुलि देहिं ॥१४
'भैया' भावहु भाव अनूप । भावत होहु तुरित शिवभूप ॥
सुख अनंत विलसहु निशदीस । इम भाख्यो स्वामी जगदीस ॥१५

इति बारह भावना.

अथ कर्मबंधके दशभेद लिख्यते ।

दोहा.

श्री जिनचरणाम्बुजप्रतैं, वंदहुं शीस नवाय ॥
कहूं कर्मके बंधको, भेद भाव समुझाय ॥ १ ॥
एक प्रकृति दश विधि बंधे, भिन्नभिन्न तस नाम ॥

गुण लच्छन बरनन सुनें, जागहिं आतम राम ॥ २ ॥
बन्धसमुच्चय भेद ये, उत्कर्षण जु बढाय ॥
शंकरमन औरहि लसै, अपकर्षण घट जाय ॥ ३ ॥
लावै निकट उदीरणा, सत्ता उदय करंत ॥
उपसम और निधत्त लखि कर्म निकांचित अंत ॥ ४ ॥

चौपाई.

मिथ्या अव्रत योग कषाय । बंध होय चहुं परतैं आय ॥
थिति अनु भाग प्रकृति परदेश । ए बंधन विधि भेद विशेष ॥५॥
प्रथमहि बंध प्रकृति जो होय । समुचबंध कहावै सोय ॥
दूजो उत्कर्षण बध एह । थितहिं बढाय करै बहु जेह ॥६
तीजो संक्रमण जु कहाय । औरकी और प्रकृति हो जाय ॥
गतिबिन और करमपै कही । बंध उदय नाना विधि लही ॥७॥
चौथो अपकर्षण इम थाय । बंध घटै अथवा गल जाय ॥
पंचम करन उदीरण हेर । ल्यावै निकट उदयमें वेर ॥ ८ ॥
सत्ता अपनी लिये बसंत । षष्टम भेद यहै विरतंत ॥
सप्तम भेद उदय जे देय । थिति पूरी कर बंध खिरेय ॥ ९ ॥
अष्टम उपसम नाम कहाय । जहां उदीरन बल न बसाय ॥
नवमों भेद निधत्त जु सोय । उदीरन संक्रमणन होय ॥ १० ॥
दशमों बंध निकांचित जहां । थिति नहीं बढै घटै नहिं तहां ॥
उदीरण संक्रमणन और । जिम बंध्यो रस दै तिन ठौर ॥११
ए दश भेद जिनागम लहे । गोमठसार ग्रंथमें कहे ॥
समझै धारै जे उर माहिं । तिनके चित्त विकलता नाहिं ॥१२
गुण थानक पैं जहां जो होय । आगम देख विलोकहु सोय ॥
सब संशय जियके मिट जाय । निर्मल होय चिदातमराय ॥१३

बंध सकल पुद्गल परपच। चेतन माहिं न दीसै रंच ॥
लोक अलोक विलोकनवंत। 'भैया' यह पद प्रगट करंत ॥१४॥

दोहा.

ये दश भेद लखे लखहिं, चिदानंद भगवान ॥
जामें सुख सब सास्वते, वेदहु सिद्ध समान ॥ १५ ॥

इति कर्मबंधके दशभेदवर्णन।

अथ सप्तभंगीवाणी लिख्यते.

दोहा.

वंदों श्रीजिनदेवको, वंदों सिद्ध महंत ॥
वंदों केवल ज्ञान जो, लोक अलोक लखंत ॥ १ ॥
सप्तभगवाणी कहूं, जिनआगम अनुसार ॥
जाके समुझत समझिये, नीके भेद विचार ॥ २ ॥

चौपाई.

अस्ति नास्ति गुण लच्छनवंत। प्रथम दरब यह भेद धरंत ॥
ये गुण सिद्ध करनके काज। सप्त भंग भाखे मुनिराज ॥ ३ ॥
प्रथम द्रव्य अस्ति नय एह। नास्ति कहै दूजी नय जेह ॥
तीजी अस्तिनास्ति निहार। चौथी अवक्तव्य नय धार ॥४॥
पंचमि अस्तिअवक्तव्य कही। छट्टी नास्तिअक्तव्य लही ॥
सप्तमि अस्तिनास्तिअवक्तव्य। इनके भेद कहू कछु अव्य ॥ ५
अस्ति दरबको मूल स्वभाव। नास्ति परणम निपट निनाव ॥
अथवा और दरब सो नाहिं। ताहि उपेक्षा नाम कहाहिं ॥६॥
अस्तिनास्ति गुण एकहि माहिं। दुहुगुण द्रवलच्छन ठहिराहिं ॥
अस्तिनास्ति विन दर्व न होय। नय साधेतै भ्रम नहिं कोय ॥७

द्रव्यगुण वचननि कह्यो न जाय । वचन अगोचर वस्तु स्वभाय ॥
जो कहुं एक अस्तिता सही । तौ दूजो नय लागै नही ॥ ८ ॥
जो कहुं नास्तिक गुणदोउ माहिं । तौ अस्तिकता कैसै नाहिं ॥
अस्ति नास्ति दोउ एकहि वेर । कही न जाय वचनको फेर ॥ ९ ॥
दुहूको एक विचार न होय । इक आगें इक पीछें जोय ॥
कोउ गुण आगें पीछें नाहिं । दोउ गुण एक समयके माहिं ॥ १० ॥
तातैं वचन अगोचर दर्व । सातों नय भाखी ए सर्व ॥
नय समुझैतैं वस्तु प्रमान । नय समझे जिय सम्यकवान ॥ ११ ॥
नय नाहिं लखै मिथ्याती जीव । तातैं भ्रामक रहै सदीव ॥
'भैया' जे नय जानहिं भेद । तिनके मिटहि सकल भ्रमखेद ॥

इति सप्तभंगीवाणी.

अथ सुबुद्धिचौवीसी लिख्यते ।

दोहा.

चरनकमल जिनदेवके, बंदों शीस नवाय ॥
कहूं सुबुद्धिचौवीसिके, कछु कवित्त गुण गाय ॥ १ ॥

कवित्त.

निर्वाण सागर महासाधुसु विमलप्रभ, शुद्धप्रभ श्रीधर जिनेश्वर नमीजिये । सुदत्त अमलप्रभ उद्धर आङ्गिर सिन्धु सन्मति पुष्पांजलिके चर्णचित दीजिये ॥ शिवगण उत्साह ज्ञानेश्वर परमेश्वर, विमलेश्वर यथार्थ नाम नित लीजिये । यशोधर कृष्ण ज्ञान शुद्धमति सिरीभद्र, अतिक्रान्त शान्तपद नमस्कार कीजिये २

महापद्म सुरदेव सुप्रभ जु स्वयंप्रभ, सर्वायुध जयदेव

---

१ निर्मल है प्रभा जिनकी.

चित्तमें चितारिये । उदैदेव प्रभादेव श्रीउदंक प्रश्नकीर्त्ति, जयकीर्त्ति पूर्णबुद्धि हिरदै निहारिये ॥ निःकषाय विमलप्रभ विपुल निर्मल चित्र, गुप्त समाधिगुप्त नाम नित धारिये । स्वयंभू कंदर्प जयनाथ विमलसु देवपाल अनंतवीर्य चौवीसी आगम जुहारिये ॥ ३ ॥

पंच पर्म इष्ट सार महामंत्र नमस्कार, जपै जीव लहै पार सागर सौ तीरको । रिद्धको भरै भंडार सिद्धको सुपंथ सार, लब्धिको अनोपचार सार शुद्ध हीरको ॥ कष्टको करै निवार दुष्ट दूर होंहिं छार, पुष्ट पर्म ब्रह्मद्वार सुद्ध शुद्ध धीरको । पापको करै प्रहार अष्ट कर्म जैतवार, भव्यको यहै अधार ज्ञान बल वीरको ॥ ४

महा मंत्र यहै सार पंच पर्म नमस्कार, भौ जल उतारै पार भव्यको अधार है । विघ्नको विनाश करै, पापकर्म नाश करै । आतम प्रकाश करै पूरवको सार है ॥ दुख चकचूर करै, दुर्जनको दूर करै, सुख भरपूर करै परम उदार है । तिहूं लोक तारनको आतमा सुधारनको, ज्ञान विस्तारनको यहै नमस्कार है ॥५॥

जीव द्रव्य एक देख्यो दूसरो अजीव द्रव्य, गुण परजाय लिये सबै विद्यमान है । देख्यो ज्ञान माघि जिनवर श्री वृषभ नाथ, ताके भेद कहते अनेकही विनान है ॥ देवनके इन्द्र जिते तिनके समूह मिले, वंदै नित्य भाव धर सदा ये विधान है । ताको सदा हमहू प्रणाम शीस नाय करैं, जाके गुणधारे मोक्ष मारग निदान है ॥ ६ ॥

अनङ्गशेखर (३२ वर्ण. लघु गुरुके क्रमसे)

नमामि पंच नामको सुध्याय आप धामको, निवार मोह कामको सुरामकी रटा लई । कुराग दोष टारकें कषायको निवारकें,

स्वरूप शुद्ध धारिके निहारकें सुधामई॥ अनंत ज्ञान भानसौं कि चेतना निधानसौं, कि सिद्धकी समानसौं सुधार ठीक यों दई। सु- बुद्धि ऐसै आयके अबंधको दिखायके, चटाक चित्त लायकें झटाक झूंठ रव्वे गई ॥ ७ ॥

प्रकृत्ति आदि सातकी जहां तै ताहि घातकी, तौ चिंता कौन बातकी मिथ्यात्वकी गढी ढई। लखी सुजात गातकी शरीर सात धातकी, सुयामें काहु भांतिकी न चेतना कहूं भई॥ अंधेरी मेट रातकी सुजानी बात प्रातकी, प्रवानी जीव जातिकी सुआप चे तना मई। सुबुद्धि ऐसैं आयकें अबंधको दिखायकें, चटाक चित्त लायकैं झटाक झूंठ रव्वै गई ॥ ८ ॥

कटाक कर्म तोरके छटाक गांठि छोरके, पटाक पाप मोरके तटाक दै मृषा गई। चटाक चिह्न जानिके, झटाक हीय आनके नटाकि नृत्य भानके खटाकि नै खरी ठई॥ घटाके घोर फारिके, तटाक बंध टारके अटाके राम धारकें रटाक रामकी जई। ग- टाक शुद्ध पानको हटाकि आन आनको, घटाकि आप थानको सटाक श्यौबधू लई ॥ ९ ॥

मनहरण. (३१ वर्ण)

केऊ फिरैं कानफटा, कैऊ शीस धरैं जटा, केऊ लिये भस्म वटा भूले भटकत हैं। केऊ तज जाहिं अटा, केऊ घेरें चेरी चटा, केऊ पढै पट केऊ धूम गटकत है॥ केऊ तन किये लटा, केऊ महा दीसैं कटा केऊ, तरतटा केऊ रसा लटकत है। भ्रम भावतैं न हटा हिये काम नाही घटा, विषै सुख रटा साथ हाथ पटकत है॥१०

छप्पय.

दुविधि परिग्रह त्याग, त्याग पुनि प्रकृति पंच दश।

गहहिं महा व्रत भार, लहहिं निज सार शुद्ध रस ॥
धरहिं सुध्यान, प्रधान ज्ञान अम्रत रस चक्खहिं ।
सहहिं परीषह जोर, व्रत्त निज नीके रक्खहिं ॥
पुनि चढहि श्रेणि गुण थान पथ, केवल पद प्रापति करहिं ।
सत चरण कमल वंदन करत, पाप पुंज पंकति हरहिं ॥११॥

कवित्त (मनहरण)

भरमकी रीति भानी परमसों प्रीति ठानी, धरमकी बात जानी ध्यावत घरी घरी । जिनकी बखानी बानी सोई उर नीके आनी, निहचै ठहरानी दृढ ह्वैकें खरी खरी ॥ निज निधि पहिचानी तब भयौ ब्रह्म ज्ञानी, शिव लोककी निशानी आपमें धरी धरी । भौ थिति बिलानी अरि सत्ता जु हठानी, तब भयो शुद्ध प्रानी जिन वैसी जे करी करी ॥ १२ ॥

तीनसै तेताल राजु लोकके प्रमान कह्यो, घनाकार गनतीको ऐसो उर आनिये । ऊंचो राजू चवदह देख्यो जिन राज जूने, तामें राजू एक पोलो पवन प्रवानिये ॥ तामें है निगोद राशि भरी घृतघट जैसें, उभै भेद ताके नित इतर सु जानिये । तामैं सों निकसि व्यवहार राशि चढै जीव, केई होहिं सिद्ध केई जगमें बखानिये ॥ १३ ॥

छप्पय.

जो जानहिं सो जीव, जीव विन और न जानें ।
जो मानहिं सो जीव, जीव विन और न मानें ॥
जो देखहि सो जीव, जीव विन और न देखै ।
जो जीवहि सो जीव जीव गुण यहै विसेखै ॥

महिमा निधान अनुभूत युत, गुण अनंत निर्मल लसै ।
सो जीव द्रव्य पेखंत भवि, सिद्ध खेत सहजहिं वसै॥१४॥

कवित्त.

अचेतनकी देहरी न कीजे तासों नेहरी, ओगुनकी गेहरी परम दुख भरी है । याहीके सनेहरी न आवें कर्म छेहरी सु, पावें दुःख तेहरी जे याकी प्रीति करी है ॥ अनादि लगी अेहरी जु देखतही खेहरी तू, यामें कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है । काम गजकेहरी सुराग द्वेषके हरी तू, तामें दृग देहरी जो मिथ्यामति हरी है ॥ १५ ॥

सवैया

ज्ञान प्रकाश भयो जिनदेवको, इंद्रसु आय मिले जु तहांई ।
रूपसुवर्ण महाद्युति रत्नके, कोट रचे त्रै अनादिकी नाई ॥
वीस हजार जु पैडी विराजत, तापै चढ्यो तिरलोक गुसांई ।
देखके लोक कहै अवनीपर, सिंधु चढ्यो असमानके तांई ॥१६॥
नीव धरै शिवमंदिरकी, उरमें कितनी उकतैं उपजावै ।
ज्ञानप्रकाश करै अति निर्मल, ऊरधकी मति यों चित लावै ॥
इन्द्रिन जीतकें प्रीति करै, परमेश्वरसों मन चाह लगावै ।
देखै निहार विचार यहै, करमें करनी महाराज कहावै ॥ १७॥
तोहि इहां रहिबो कहु केतक, पंथमे प्रीति किये सुख स्वै है ।
पोषत जाहिं पियारसु जानकें, सो तौ नियारीये होतन छ्वै है ॥
तू इम जानत है तनही मम, सो भ्रम दूर करो दुख द्वैहै ॥
देह सनेह करै मत हंस, गई कर जाहिं निवाहन ह्वै है ॥ १८॥

कवित्त.

मृग मीन सुजनसों अकारन वैर करै, ऐसे जगमाहिं जीव

विधना बनाये है । काननमें तृन खांहि दूर जल पीन जांहि, बसै बनमाहि ताहि मारनको धाये हैं ॥ जल माहिं मीन रहै काहूसों न कछू कहैं, ताको जाय पापी जीव नाहक सताये हैं । सज्जन सन्तोष धरै काहूसों न वैर करै, ताको देख दुष्ट जीव क्रोध उपजाये हैं ॥ १९ ॥

अहिक्षितिपार्श्वनाथकी स्तुति कवित्त.

आनंदको कंद किधों पूनमको चंद किधों, देखिये दिनंद ऐसो नंद अश्वसेनको । करमको हरै फंद भ्रमको करै निकंद, चूरै दुख द्वंद सुख पूरै महा चैनको ॥ सेवत सुरिंद गुनगावत नरिंद भैया, ध्यावत मुनिंद तेहू पावैं सुख ऐनको । ऐसो जिन चंद करै छिनमें सुछद सुतौ, ऐक्षितको इंद पार्श्व पूजों प्रभु जैनको ॥२०॥

कोऊ कहै सूरसोमदेव हैं प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचंद्र राखै आवागौनसों । कोऊ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया यहै, कोऊ कहै महादेव उपज्यो न जोनसों ॥ कोऊ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लागि रहे है भवानीजीके भौनसों । वही उपख्यान साचो देखिये जहांन बीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों ॥ २१ ॥

वीतराग नामसेती काम सब होंहि नीके, वीतराग नामसेती धामधन भरिये । वीतराग नामसेती विघन विलाय जांय, वीत

(१) यह कवित्त आगें सुपंथ कुपंथ पचीसीमें भी आया है इसका कारण ऐसा मालूम होता है कि इस सुबुद्धि चौवीसीके आदिमें भूतभविष्यत दो चौवीसीके नमस्कारके दो कवित्त हैं इनके बीचमें वर्त्तमान चौवीसीको नमस्कार करनेका कवित्त भी भैयाजीने अवश्य बनाया होगा परन्तु लेखकोंकी भूलसे कदाचित छूट जानेसे किसी एक महात्माने यह २१ वा कवित्त रखकर २४ की संख्या पूरी की होगी. अन्यथा दोजगह एकही कवित्तका होना असंभव है ।

राग नामसेती भवसिंधु तरिये ॥ वीतराग नामसेती परम प-वित्र हूजे, वीतराग नामसेती शिववधू वरिये । वीतराग नामसम हितू नाहिं दूजो कोऊ, वीतराग नाम नित हिरदैमें धरिये ॥२२॥

श्रीराणापुरमदिरका वर्णन-

देख जिनमुद्रा निजरूपको स्वरूप गहै, रागद्वैषमोहको बहाय डारै पलमें । लोकालोकव्यापी ब्रह्म कर्मसों अबंध वेद, सिद्धको स्वभाव सीख ध्यावे शुद्ध थलमें ॥ ऐसे वीतरागजूके बिंब हैं विराजमान, भव्यजीव लेहे ज्ञान चेतनके दलमें । मांझनी ओ मंडपकी रचना अनूप बनी, राणापुर रत्न सम देख्यो पुण्य फलमें ॥ २३ ॥

सुबुधि प्रकाशमें सु आतम विलासमें सु, थिरता अभ्यासमें सुज्ञानको निवास है । ऊरधकी रीतिमें जिनेशकी प्रतीतिमें सु, कर्म-नकी जीतमें अनेक सुख भास है ॥ चिदानंद ध्यावतही निज पद पावतही, द्रव्यके लखावतही देख्यो सब पास है । वीतराग वानी कहै सदा ब्रह्म ऐसें भास, सुखमें सदा निवास पूरन प्रकाश है ॥ २४ ॥

दोहा.

यह सुबुद्धि चौवीसिका, रची भगवतीदास ॥
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिववास ॥ २५ ॥

इति श्रीसुबुद्धि चौवीसी.

अथ अकृत्रिमचैत्यालयकी जयमाला ।

चौपाई.

प्रणमहुं परम देवके पाय । मन वच भाव सहित शिरनाय ॥

अकृत्रिम जिनमंदिर जहां। नितप्रति वंदन कीजे तहां ॥ १ ॥
प्रथम पताल लोकविस्तार। दश जातिनके देव कुमार ॥
तिनके भवन भवन प्रति जोय। एक एक जिनमंदिर होय ॥ २ ॥
असुर कुमारनके परमान। चौसठ लाख चैत्य भगवान ॥
नाग कुमारनके इम भाख। जिनमंदिर चौरासी लाख ॥ ३ ॥
हेम कुमारनके परतक्ष। जिनमंदिर है वहतर लक्ष ॥
विदुत कुमारनके भवनाल। लक्ष छिहत्तर नमूं त्रिकाल ॥ ४ ॥
सुपर्ण कुमारनके सब जान। लक्ष बहत्तर चैत्य प्रमान ॥
अगनि कुमारनके प्रासाद। लक्ष छिहत्तर बने अनाद ॥ ५ ॥
बात कुमार भवन जिनगेह। लक्ष छिहत्तर वंदहुं तेह ॥
उदधि कुमार अनोपमधाम। लक्ष छिहत्तर करूं प्रणाम ॥ ६ ॥
दीप कुमार देवके नांव। लक्ष छिहत्तर नमुं तिँह ठांव।
लक्ष छ्यानवें दिक्क कुमार। जिनमंदिर सो है जैकार ॥ ७ ॥
ये दश भवन कोटि जहँ सात। लक्ष बहत्तर कहे विख्यात ॥
तिन जिनमंदिरको त्रैकाल। वंदन करूं भवन पाताल ॥ ८ ॥
मध्य लोक जिन चैत्य प्रमान। तिनप्रति वंदों मनधर ध्यान ॥
पंचमेरु अस्सी जिन भौन। तिनकी महिमा वरने कौन ॥ ९ ॥
वीस वहुर गजदंत निहार। तहां नमूं जिन चैत्य चितार ॥
तीस कुलाचल पर्वत शीस। जिन मंदिर वंदों निशदीस ॥१०॥
विजयारध पर्वतपर वहे। जिन मंदिर सौशत्तर लहे ॥
सुरद्रुमन दश चैत्य प्रमान। वंदन करों जोर जुगपान ॥ ११ ॥
श्रीवक्षार गिरहिं उर धरों। चैत्य अशी नित वंदन करों ॥
मनुषोत्तर परवत चहुं ओर। नमहुं चार चैत्य करजोर ॥ १२ ॥

और कहूं जिनमंदिर थान । इक्ष्वाकारहिं चार प्रमान ॥
कुंडलगिरिकी महिमा सार । चैत्य जु चार नमूं निरधार ॥१३॥
रुचिकनाम गिरिमहा बखान । चैत्य जु चार नमूं उर आन ॥
नंदीश्वर बावन गिरराव । बावन चैत्य नमहुं धरभाव ॥१४॥
मध्यलोक भविके मन भावन । चैत्य चारसौ और अठावन ॥
तिन जिन मंदिरको निशदीस। वंदन करों नाय निज शीस॥१५॥
व्यंतर जाति असंखित देव । चैत्य असख्य नमहुं इह भेव ॥
ज्योतिष संख्यातैं अधिकाय । चैत्य असंख्य नमूं चितलाय ॥१६॥
अब सुरलोक कहूं परकाश । जाके नमत जाहिं अघनाश ॥
प्रथम स्वर्ग सौधर्म विमान । लाख बतीस नमूं तिहं थान ॥१७॥
दूजो उत्तर श्रेणि इशान । लक्ष्य अठाइस चैत्य निधान ॥
तीजो सनत कुमार कहाय । बारह लाख नमूं धर भाय ॥१८॥
चौथो स्वर्ग महेन्द्र सुठामि । लाख आठ जिन चैत्य नमामि ॥
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोय । लाख च्यार जिन मंदिर होय ॥१९॥
लांतव और कहूं कापिष्ट । सहस पचास नमूं उत किष्ट ॥
शुक्ररु महा शुक्र अभिराम । चालिस सहॅसनि करुं प्रणाम ॥२०
सतार सहस्रार सुर लोक । षट सहस्र चरनन द्यों धोक ॥
आनत प्राण आरण अच्युत्त । चार स्वर्गसे सात संयुत्त ॥२१॥
प्रथमहि ग्रैव चैत्य जिन देव । इकसो ग्यारह कीजे सेव ॥
मध्यग्रैव एकसो सात । ताकी महिमा जग विख्यात ॥ २२ ॥
उपरि ग्रैव निन्वै अरु एक । ताहि नमूं धर परम विवेक ॥
नव नवउत्तर नव प्रासाद । ताहि नमूं तजिके परमाद ॥ २३ ॥
सबके ऊपर पंच विमान । तहँ जिनचैत्य नमूं धर ध्यान ॥
सब सुरलोकनकी मरजाद । कही कथन जिन वचन अनाद ॥२४॥

लख चौरासी मंदिर दीस । सहस सत्याणव अरु तेईस ॥
तीन लोक जिन भवन निहार । तिनकी ठीक कहूं उरधार ॥२५॥
आठ कोड अरु छप्पन लाख । सहस सत्याणव ऊपर भाख ॥
चहुंसे इक्यासी जिन भौन । ताहि नमूं करिके चिन्तौन॥२६॥
धनुष पंचसो विंबप्रमान । इकसौ आठ चैत्य प्रति जान ॥
नव अरब्ब अरु कोटि पचीस । त्रेपन लाख अधिक पुनिदीस २७
सहस सताईस नवसे मान । अरु अडतालीस बिंब प्रमान ॥
एती जिन प्रतिमा गन लीजे । तिनको नमस्कार नित कीजे ॥ २८
जिनप्रतिमा जिनवरके भेश । रंचक फेर न कह्यो जिनेश ॥
जो जिनप्रतिमा सो जिनदेव । यहै विचार करै भवि सेव ॥ २९
अनंत चतुष्टय आदि अपार । गुण प्रगटै इहि रूप मझार ॥
तातैं भविजन शीस नवाय । वंदन करहिं योग त्रयलाय ॥३०॥
अकृत्रिम अरु कृत्रिम दोय । जिन प्रतिमा वंदो नित सोय ॥
वारंवार शीस निज नाय । वंदन करहुं जिनेश्वर पाय ॥ ३१ ॥
सत्रहसै पैंतालिस सार । भादों सुदि चउदश गुरुवार ॥
रचना कही जिनागम पाय । जैजैजै त्रिभुवनपतिराय ॥ ३२ ॥

दोहा.

दक्षलीन गुनको निरख, मूरख मीठे वैन ॥
'भैया' जिनवाणी सुने, होत सवनको चैन ॥ ३३ ॥

इति श्रीअकृत्रिम चैत्यालयोंकी जयमाला.

अथ चवदहगुणस्थानवर्त्तिजीवसंख्यावर्णन लिख्यते.

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, वंदों दोउ करजोर ॥
कहूं जीव गुणथानके, अष्टकर्म दलभोर ॥ १ ॥

जिहं चलबो जिहं पंथको, सो ढूंढै बहु साथ ॥
तैसें पंथिक मोक्षके, ढूंढै लेहिं जिननाथ ॥ २ ॥

चौपाई.

चौदह गुण थानक परमान । जियकी संख्या कहौं बखान ॥
इहि मगचलै मुकत सो होय । रहै अर्द्ध पुद्गललों कोय ॥ ३ ॥
प्रथम मिथ्यात्व नाम गुणथान । जीव अनंतानंत प्रमान ॥
तिनके पंच भेद विस्तार । बरनों जिन आगम अनुसार ॥ ४ ॥
एक पक्ष जो गहिकैं रहै । दूजी नय नाहीं सरदहैं ॥
वो मिथ्याती मूरख जीव । ज्ञानहीन ते कहै सदीव ॥ ५ ॥
जिन आगमके शब्द उथाप । थापै निजमति वचन अलाप ॥
सुजस हेत गुरुतर मनधरै । सो विपरीति भवदुख भरै ॥ ६ ॥
देव कुदेव न जाने भेव । सुगुरु कुगुरुकी एकहि सेव ॥
नमैं भगतिसों विना विवेक । विनय मिथ्याती जीव अनेक ॥७॥
भांति भांतिके विकलप गहै । जीव तत्त्व नाहीं सरदहै ॥
शून्य हिये डोलै हैरान । सो मिथ्याती संशयवान ॥ ८ ॥
गहल रूप वरतै परिणाम । दुखित महान न पावै धाम ॥
जाको सुरति होय नहिं रंच । ज्ञानहीन मिथ्याती पंच ॥ ९ ॥

दोहा.

इनहि पंच मिथ्यात्व वश, जीव बसै जगमाहिं ॥
इनहिं त्याग ऊपर चढै, ते शिवपाथिक कहाहिं ॥ १० ॥
सासादन गुन थानसों, अरु अयोग परजंत ॥
उत्कृष्टी संख्या कहूं, भाखी श्रीभगवन्त ॥ ११ ॥

चौपाई.

सासादन गुणथानक नाम । बावन कोटि जीव तिहँ ठाम ॥

एक अरब अरु कोटि जु चार । मिश्रनाम तीजै उरधार ॥१२॥
अव्रत है चौथो गुणवंत । सात अरब जिय तहां वसंत ॥
पंचम देशविरतपुर कहे । तेरह कोटि जीव जहं लहे ॥ १३ ॥
पंच कोटि अरु त्राणवलाख । सहस अठ्याणवें ऊपरि भाख ॥
द्वयसो छह जिय छठ्ठेथान । परमादी मुनि कहे बखान ॥ १४ ॥
अप्रमत्त सप्तम परतक्ष । कोटि दोय अरु छ्यानव लक्ष ॥
सहस निन्याणव इकसो तीन । एते मुनि संयम परवीन ॥१५॥
उपसम श्रेणि चढै गुणवान । अष्टम नवम दशम गुण थान ।
द्वै द्वै सो निन्याणव कहे । अठ सत्ताणव सब सरदहे ॥ १६ ॥
अष्टम क्षपक पंथ जिय कोय । शतक पंच अठ्ठाणव होय ॥
नवमें गुण थानक जिय जवै । शतक पंच अठ्ठाणव सवैं ॥१७॥
दशमें गुण थानक मुनिराय । शतक पंच अठ्ठाणव थाय ॥
एकादश श्रेणी उपशंत । द्वैसी अरु निन्याणव तंत ॥१८॥
द्वादशमों गुण क्षीण कषाय । पंच अठाणव सब मुनिराय ॥
अब तेरहमें केवल ज्ञान । तिनकी संख्या कहूं बखान ॥१९
लाख आठ केवलि जिन सुनो । सहस अठाणव ऊपर गुनो ॥
शतक पंच अरु ऊपर दोय । एते श्री केवलि जिन होय ॥२०
अब चौदम अयोग गुण थान । पंच अठनाण सब निर्वान ॥
तेरह गुण थानक जिय लहूं । सबकी संख्या एकहि कहूं ॥२१॥
आठ अरब सतहत्तर कोड । लाख निन्याणव ऊपर जोड ॥
सहस निन्याणव नव सौ जान । अरु सत्याणव सब परमान ॥२२
जब लों जिय इह थानक माहिं । तब लों जिय जग वासि कहाहिं ॥
इनहि उलंघि मुकतिमें जांहि । काल अनंतहि तहां रहांहिं ॥२३
गुण अनंत चिनमहि तिहं थान । इहि भाख्यो श्री भगवान ॥

भैया सिद्ध समान निहार। निजघट मांहि वहै पद धार ॥२४॥
संवत सत्रह सैंतालीस। मारगसिर दशमी शुभ दीस॥
मंगल करन महा सुखधाम। सब सिद्धनप्रति करूं प्रणाम ॥२५॥
इति श्रीशिवपंथ पचीसिका।

अथ पन्द्रह पात्रकी चौपाई लिख्यते.

दोहा.

नमहुं देव अरहंतको, नमहुं सिद्ध शिवराय ॥
नमहुं साधुके चरनको, योग त्रिविधिके लाय ॥ १ ॥
पात्र कुपात्र अपात्रके, पंद्रह भेद विचार ॥
ताकी कछु रचना कहूं, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥
तीन पात्र उत्तम महा, मध्यम तीन बखान ॥
तीन पात्र पुनि जघन है, ते लीजे पहिचान ॥ ३ ॥
तीन कुपात्र प्रसिद्ध हैं, अरु अपात्र पुनि तीन ॥
ये सब पन्द्रह भेद हैं, जानहु ज्ञान प्रवीन ॥ ४ ॥

चौपाई.

उत्तम माहिं महा अरु श्रेष्ठ। तीर्थंकर कहिये उत्कृष्ट ॥
मुनि मुद्रामें लेहिं अहार। वह दातार लहै भव पार ॥५॥
उत्तम माहिं मध्यके अंग। श्रीगणधर बरने सरबंग ॥
चार ज्ञान संयुक्त प्रधान। द्वादशांगके करहिं बखान ॥६॥
उत्तम माहि जघन्य जु होय। सामान्यहि मुनि वरने सोय ॥
दर्वित भावित शुद्ध अनूप। परम दयाल दिगम्बर रूप ॥७॥
मध्यम पात्र अणुव्रत धार। तिनके तीन भेद विस्तार ॥
दर्वित भावित गुण संयुक्त। रहै पाप किरियासों मुक्त ॥८॥

उत्तम ऐलक श्रावक पास । एक लंगोटी परिग्रह जास ॥
मठ मडपमें करहि निवास । एकादशम प्रतिज्ञा भास ॥९॥
दूजो श्रावक क्षुल्लक नाम । कुछ अधिको परिग्रह जिहि ठाम ॥
पीछी और कमंडल धरै । मध्यम पात्र यही गुण वरै ॥१०॥
अरु दश प्रतिमा धारी जेह । लघु पात्रनमें वरने तेह ॥
इह विधि यह पंचम गुण थान । मध्यम पात्र भेद परवान ॥११॥
अब लघु पात्र कहूं समुझाय । उत्तम मध्यम जघन कहाय ॥
उत्तम क्षायिक समकितवंत । जिनके भावनको नहि अंत ॥१२॥
मध्यम पात्रसु उपसम धार । जिनकी महिमा अगम अपार ॥
वेदक समकित जाके होय । लघुपात्रनमें कहिये सोय ॥१३॥
तीन कुपात्र मिथ्याती जीव । द्रव्यलिंगजो धरहिं सदीव ॥
ज्ञान विना करनी बहु करै । भ्रमि भ्रमि भवसागरमें परै ॥१४
मुनिकी सम मुद्रा निरधार । सहै परीसह बहु परकार ॥
जीव स्वरूप न जाने भेव । द्रव्य लिंगी मुनि उत्तम एव ॥१५
मध्यम पात्र सु श्रावक भेष । दार्वित किरिया करै विशेष ॥
अन्तर शून्य न आतम ज्ञान । मानत है निजको गुणवान ॥१६
जघन्य कुपात्र कहूं विख्यात । जाके उर वरतै मिथ्यात ॥
समकितकीसी ऊपर रीति । अंतर सत्य नही परतीति ॥१७॥
कहूं अपात्र दुहूं विधि भ्रष्ट । दार्वित भावित क्रिया अनिष्ट ॥
परिग्रहवंत कहावै साधु । मिथ्यामत माखै अपराध ॥१८॥
श्रावक आप कहै जगमाहिं । श्रावकके गुण एकहु नाहिं ॥
भक्ष्याभक्ष्य न जाने भेद । मध्य अपात्र करै बहु खेद ॥१९॥
जघन अपात्र यहै विरतंत । कहै आपको समकितवंत ॥
निहचै अरु नाहीं व्यवहार । दर्वित भावित दुहुं विधि छार ॥२०

दर्वित गुण समकितके जेह । ग्रंथनमें बरने तेह ॥
तिहँ माफिक नाही जिहँ चाल । ते मिथ्याती जीव त्रिकाल ॥२१॥
भावित समकित जीव सुभाय । सो निहचै जानै मुनिराय ॥
कै जानै जो वेदै जी । ऐसैं गणधर कहै सदीव ॥ २२ ॥

दोहा.

इहविधि पन्द्रह पात्रके, गुण निरखै गुणवंत ॥
यथा अवस्थित जानके, धारहिं हिरदै संत ॥ २३ ॥
निज स्वभाव रसलीन जे, ते पहुँचे शिव ओर ।
मिथ्याती भटकत फिरै, विनवें दास किशोर ॥ २४ ॥

इति पन्द्रह पात्रकी चौपाई.

अथ ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी लिख्यते.

दोहा.

असिआउसा जु पंचपद, वंदों शीस नवाय ॥
कछु ब्रह्मा अरु ब्रह्मकी, कहूं कथा गुणगाय ॥ १ ॥
ब्रह्मा ब्रह्मा सब कहै, ब्रह्मा और न कोय ॥
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, यह जिय ब्रह्मा होय ॥ २ ॥
ब्रह्माके मुखचार है, याहूके मुख चार ॥
आँख नाक रसना श्रवण, देखहु हिये विचार ॥ ३ ॥
आँख रूपको देखकर, ग्रहण करै निरधार ॥
रागीद्वेषी आतमा, सबको स्वादनहार ॥ ४ ॥
नाक सुवास कुवासको, जानत है सब भेद ॥
राचै विरचै आतमा, यों मुखबोले वेद ॥ ५ ॥
रसना षटरस भुंजती, परी रहै मुख मांहि ॥
रीझै खीजै आतमा, मुख्य यातैं ठहराहिं ॥ ६ ॥

श्रवण शब्दके ग्रहणको, इष्ट अनिष्ट निवास ॥
मुख तो सोही प्रगट है, सुखदुख चाखै तास ॥ ७ ॥
येही चारों मुख बने, चहुं मुख लेय अहार ॥
तातैं ब्रह्मा देव यह, यही सृष्टि करतार ॥ ८ ॥
हृदय कमलपर बैठिकें, करत विविधि परिणाम ॥
कर्त्ता नाहीं कर्मको, ब्रह्मा आतम राम ॥ ९ ॥
चार वेद ब्रह्मा रचे इनहू तजे कषाय ॥
शुद्ध अवस्था ये भये, यहै त्रिन शुद्धि कहाय ॥ १० ॥
नाना रूप रचें नये ब्रह्मा विदित कहान ॥
नाम कर्मजिय संगलै, करत अनेक विनान ॥ ११ ॥
ब्रह्मा सोई ब्रह्म है, यामें फेर न रंच ॥
रचना सब याकी करी, तातैं कह्यो विरंचै ॥ १२ ॥
जेते लक्षण ब्रह्मके, ते ते ब्रह्मा माहि ॥
ब्रह्मा ब्रह्म न अंतरो, यो निश्चय ठहराहि ॥ १३ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह बात ॥
'भैया' थोरे कथनमें, कही कथा विख्यात ॥ १४ ॥

इति ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी.

अथ अनित्य पचीसिका लिख्यते ।

कवित्त.

नर लोकनके ईश नाग लोकनके ईश, सुरलोकहूके ईश जाको ध्यान ध्यावहीं । नाथ नाय शीस जाहि वंदत मुनीश नित, अतिश चोंतीस औ अनंत गुण गावहीं ॥ कौन करै जाकी

(१) ब्रह्म (२) जीव (३) ब्रह्मा ।

रीस कर्म अरि डारै पीस, लोकालोक जाहि दीस पंथको बताव ही। ताके चर्ण निश दीश धरै भविनाथ शीस, ऐसे जगदीश पुण्यवंत जीव पावही ॥ १ ॥

दोहा.

परचो कालके गालमें, मूरख करै गुमान ॥
देहैं छिनमें दाव जो, निकस जांहिगे प्रान ॥ २ ॥

कवित्त.

मिथ्यामत नामवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपापर भामवेको भानसी बखानी है। छहों द्रव्य जानवेको बंधविधि भानवेको, आपापर ठानवेको परम प्रमानी है ॥ अनुभो बतायवेको जीवके जतायवेको काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है। जहां तहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विस्तारवेको यहै जिनवानी है ॥ ३ ॥

आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम ॥
लक्ष कोटि जो धर चलै, एहै कौनै काम ॥ ४ ॥

कवित्त.

पंच वर्ण वसनसो पंच वर्ण धूलि शाल, मान थंभ सत्य वैन देखे मान नाश है। दयाको निवास सोही वेदीको प्रकाश लसै, रूपेको जु कोट सु तौ नो करम भास है ॥ द्रव्य कर्म नाम हेम कोट मध्य राजत है, रतनको कोट भाव कर्मको विलास है। ताके मध्य चेतन सु आप जगदीस लसै, समोसर्न ज्ञानवान देखै निजपास है ॥ ५ ॥

लागो है जम जीवको, बोलत ऐसें गाजि ॥
आज कालमें लेत हूं, कहां जाहुगे भाजि ॥ ६ ॥

देखहुरे दच्छ एक बात परतच्छ नयी, अछनकी संगति विचच्छन भुलानो है। वस्तु जो अमच्छ ताहि भच्छत है रैन दिन पोषवेको पच्छ कर मच्छ ज्यों लुभानो है ॥ विनाशीक लच्छ ताहि चच्छुमों विलोकै थिर, वहे जाय गच्छ तव फिरै ज्यों दिवानो है। स्वच्छ निज अच्छको विलच्छकै न देखै पास, मोह जच्छ लागे वच्छ ऐसो भरमानो है ॥ ७ ॥

जगहिं चलाचल देखिये, कोउ सांझ कोउ भोर ॥
लाद लाद कृत कमको, ना जानों किहि ओर ॥ ८ ॥

नरदेह पाये कहा पंडित कहाये कहा, तीरथके न्हाये कहा तीर तो न जैहै रे। लच्छिके कमाये कहा अच्छके अघाये कहा, छत्रके धराये कहा छीनता न ऐहै रे॥ केशके मुंडाये कहा भेषके बनाये कहा, जोवनके आये कहा, जराहू न खैहै रे। भ्रमको विलास कहा दुर्जनमें वास कहा, आतम प्रकाश विन पीछें पछितैहै रे ॥ ९ ॥

दुःखित सब संसार है, सुखी लसै नहिं कोय ॥
एक सुखित जिन धर्म है, जिहं घट परगट होय ॥१०॥

नरदेह पाये कहो कहा सिद्धि भई तोहि, विषै सुख सेयें सब सुकृत गमायो है। पंच इन्द्रि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर पोष राखै, आय गई जरा तब जोर विललायो है ॥ क्रोध मान माया लोभ चारों चित रोक बैठ, नरक निगोदको संदेसो वेग आयो है। खाय चल्यो गांठको कमाई कोडी एक नाहिं, तोसो मूढ दूसरो न ढूंढ्यो कहूं पायो है ॥ ११ ॥

जाके परिग्रह बहुत है, सो बहु दुखके माहिं ॥
विन परिग्रहके त्यागतैं, परसों छूटै नाहिं ॥ १२ ॥

थानी ह्वैके मानी तुम थिरता विशेष इहां, चलवेकी चिंता कछू है कि तोहि नाहिने। जोरत हो लच्छ वहु पाप कर रैन दिन, सो तो परतच्छ पांय चलयो उथाहिने। घरीकी खवर नाहिं सामो सौ वरष कीजै, कौन परवीनता विचार देखौ काहिने। आतमके काज विना रज सम राज सुख, सुनो महाराज कर कान किन? दाहिने ॥ १३ ॥

शयन करत है रयनको, कोटिध्वज अरु रंक ॥
सुपनेमें दोऊ एकसे, वरतें सदा निशंक ॥ १४ ॥

मात्रिक कवित्त.

नटपुर नाव नगर इक सुंदर, तामें नृत्य होंहिं चहुं ओर ।
नायक मोह नचावत सवको, ल्यावत स्वांग नये नित जोर ॥
उछरत गिरत फिरत फिरकी दै, करत नृत्य नानाविधि घोर ।
इहि विधि जगत जीव सव नाचत, राचत नाहिं तहां सु किशोर १५

कर्मनके वस जीव है, जहँ खैंचे तहँ जाय ॥
ज्यों हि नचावे त्यों नचे, देख्यो त्रिभुवनराय ॥ १६ ॥

मात्रिक कवित्त.

इंद्र हरे जिहँ चन्द्र हरे, सुरवृन्द्र हरे असुरादिक जोय ।
ईश हरे अवनीश हरे, चक्रीश हरे वलि केशव दोय ॥
शेष हरे पुर देश हरे सव, मेस हरे थितिकी गत खोय ।
दास कहै शिवरास विना, इहि काल वलीसों वली नहिं कोय॥१७

एक धर्म जिनदेवको, वसै जासु उर माहिं ॥
ताकी सरवर जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥ १८ ॥

कवित्त.

पूरवही पुण्य कहुं किये हैं अनेक विधि, ताके फल उदै आज

नर देही पाई है । इहां आय विषै रस लाग्यो अति नीको तोहि, ताके संग केलि करै यहै निधि पाई है ॥ आगें अब कहा गति है है चिदानन्द राय चलबेकी थिति सांझ भोर माहि आई है । साथ कौन सबल न सत्तू कछु लेत मूढ, आगें कहा तोहि सुख सेज ले बिछाई है ॥ १९ ॥

द्वै द्वै लोचन सब धरैं, मणि नहिं मोल कराहिं ॥
सम्यक्‌दृष्टी जौंहरी, विरले इहि जगमाहिं ॥ २० ॥

कवित्त.

वर्ष सौ पचास माहिं एते सब मरजाहिं, जे ते तेरी दृष्टिविषै देखतु है बावरे । इनमेंको कोऊ नाहिं बचबेको काल पाँहिं, राजा रंक क्षत्री और शाह उमराव रे ॥ जमहीकी जमा मांहि घरी पल चले जाहिं, घटै तेरी आव कछु नाहिं को उपावरे । आज काल्हि ताहूको समेट काल गाल माहिं, चाबि जैहै चेत देख पीछें नाहिं दावरे ॥ २१ ॥

जो बानी सर्वज्ञकी, तामें फेर न सार ॥
कल्पित जो काहू कही, तामें दोष अपार ॥ २२ ॥

जाके होय क्रोध ताके बोध को न लेश कहूं, जाके उर मान ताके गुरु को न ज्ञान है । जाके मुख माया बसै ताके पाप केई लशै, लोभके धरैया ताको आरतको ध्यान है ॥ चारों ये कषाय सु तौ दुर्गति ले जाय 'भैया,' इहां न बसाय कछु जोर बल प्रान है । आतम अधार एक सम्यक प्रकार लशै, याहीतै उधार निज थान दरम्यान है ॥ २३ ॥

आप निकट निज दृगनितैं, विकट चर्म दृग दोय ॥
जाके दृग जैमें खुलै, तैसो देखै सोय ॥ २४ ॥

और भव्य प्रानी जो तैं जाति निज जानी तो तू, लखि जिन-वानी जामें मोक्षकी निसानी है। काहू ले कुबुद्धि सानी यामें विपरीत आनी, ताहि जो पिछानी तो तू भयो ब्रह्म ज्ञानी है। जाके नांव और ठानी द्वादशांगकै बखानी, बपुरे अज्ञानी ताकी बुद्धि भरमानी है। ठौर ठौर कानी जामै रहै नाहिं सत्य पानी, कूरनके मनमानी कलिकी कहानी है ॥ २५ ॥

दोहा.

यह अनित्यपच्चीसिके, दोहा कवित निहार ॥
भैया चेतहु आपको, जिनवानी उर धार ॥ २६ ॥

इति अनित्यपचीसिका.

अथ अष्टकर्मकी चौपाई लिख्यते।

दोहा.

नमो देव सर्वज्ञको, वीतराग जस नाम ॥
मन वच शीस नवाइकें, करों त्रिविधिपरणाम ॥ १ ॥

चौपाई.

एक जीव गुण धरै अनंत। ताको कछु कहिये विरतंत ॥
सब गुण कर्म अछादित रहैं। कैसें भिन्न भिन्न तिहँ कहै ॥ २ ॥
तामें आठ मुख्य गुन कहे। तापैं आठ कर्म लगि रहे ॥
तिन कर्मनकी अकथ कहान। निहचै तो जाने भगवान ॥ ३ ॥
कछु व्यवहार जिनागम साख। वर्णन करों यथारथ भाख ॥
ज्ञानावरन कर्म जब जाय। तब निज ज्ञान प्रगट सब थाय ॥४
ताके पंच भेद विस्तार। तथा अनंतानंत अपार ॥
जैसें कर्म घटहि जिहँ थान। तैसो तहाँ प्रगट है ज्ञान ॥ ५ ॥

जैसो ज्ञान प्रगट है जहाँ । तैसो कछु जानै जिय तहाँ ॥
दूजो दर्शआवरण और । गये जीव देखहिं सब ठौर ॥ ६ ॥
ताकी नौ प्रकृती सब कही । तामें शक्ति सबहि दबि रही ॥
जैसो घटै आवरन जोय । तैसो तहँ देखै जिय सोय ॥ ७ ॥
निराबाध गुण तीजो अहै । ताहि वेदनी ढाँकि रहै ॥
साता और असाता नाम । तामहि गर्भित चेतन राम ॥ ८ ॥
जैसी द्वै प्रकृती घट जाय । तैसी तहँ निर्मलता थाय ॥
जबहि वेदनी सब खिर जाय । तब पंचमि गति पहुंचै आय ॥९
चौथो महा मोह परधान । सब कर्मनमें जो बलवान ॥
समकित अरु चारित गुणसार । ताहि ढकै नाना परकार ॥ १० ॥
जहँ जिम घटहि मोहकी चाल । तहँ तिम प्रगट होय गुणमाल ॥
ज्यों ज्यों घटै मोह जियपास । त्यों त्यों होय सत्य गुणवास ११
ताकी बीस आठ विधि कही । यथा योग्य थानक सरदही ॥
जगमें जंतु बसै चिरकाल । सो सब मोह अछादित बाल ॥ १२
मोह गये सब जानै मर्म । मोह गये प्रगटै निजधर्म ॥
मोह गये केवलिपद होय । मोह गये चिर रहै न कोय ॥ १३ ॥
पंचम आयुकर्म जिन कहै । अवगाहन गुण रोके रहै ॥
जब वे प्रकृति आवरण जाहिं । तब अवगाहन थिर ठहराहिं १४
ताकी चार प्रकृति जगनाम । जाके गये लहै शिवधाम ॥
नाम कर्म षष्ठम निरतंत । करहि जीवको मूरतिवंत ॥ १५ ॥
अमूरतीक गुण जीव अनूप । तापै लगी प्रकृति जडरूप ॥
पुद्गल लगै कहावें जीव । एकेंद्रयादिक पंच सदीव ॥ १६ ॥
उदय योग नाना परकार । चेतन बसै शरीरमझार ॥
जैसे वनमें करहि निवास । तैसो नाम लहै जिय तास ॥ १७ ॥

तनकी संगति कष्ट अपार । सहै जीव संकट बहु बार ॥
जामन मरन अनंता करै । ताके दुख कहु को उच्चरै ॥ १८॥
प्रकृति त्राणवें ताकी कही । जगत मूल येही बनि रही ॥
जब ये प्रकृति सबहि खिरजाहिं । तबहिं अरूपी हंस कहाहिं ॥१९॥
सप्तम गोत करम जिय जान । ऊंचनीच जिय यही बखान ॥
गुण जु अगुरु लघु ढांके रहै । तातैं ऊंचनीच सब कहै ॥२०॥
जब ये दोउ आवरन जांहिं । तब पहुंचै पंचमिगतिमाहिं ॥
अष्टम अन्तराय अरि नाम । बल अनंत ढांकै अभिराम ॥२१॥
शकति अनंती जीव सुभाय । जाके उदै न परगट थाय ॥
ज्यों ज्यों घटहि आवरण कही । त्यों त्यों प्रगट होय गुण सही २२
पांच जातिके विकट पहार । याकी ओट सबै सुख सार ॥
इन विन गये न पावै मूल । इन विन गये रह्यो जिय भूल २३
ये सबही सुखके दरबान । येही सबके आगेवान ॥
जब ये अंतराय मिट जाहिं । तब चेतन सब सुखके माहिं॥२४॥

दोहा.

येही आठों कर्ममल, इनमें गर्भित हंस ॥
इनकी शकति विनाशकै, प्रगट करहि निज वंस ॥ २५ ॥
इहिविधि जीव अनन्त सब, वसत यही जगमाहिं ॥
इनहिं त्याग निर्मल भये, ते शिवरूप कहाहिं ॥ २६ ॥
'भैया' महिमा ब्रह्मकी, ऐसे बनी अनाद ॥
यथा शक्ति कछु वरणयी, जिन आगम परसाद ॥ २७ ॥

इति अष्टकर्मकी चौपाई.

अथ सुपंथकुपंथपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, राजत श्री जिनराय ॥
तास चरन वंदन करहुं, मन वच शीस नवाय ॥ १ ॥
कहूं सुपंथ कुपंथ के, कवित पचीस वखान ॥
जाके समुझत समझिये, पंथ कुपंथ निदान ॥ २ ॥

कवित्त.

तेरो नाम कल्पवृच्छ इच्छाको न राखै उर, तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है । तेरो नाम चिन्तामन चिन्ताको न राखै पास, तेरो नाम पारस सो दारिद डरत है॥ तेरो नाम अम्रत पियेतैं जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुःखको दरत है। तेरो नाम वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है ॥३॥

सुन जिनवानी जिहँ प्रानी तज्यो राग द्वेष, तेई धन्य धन्य जिन आगममें गाये है । अमृतसमानी यह जिहं नाहिं उर आनी, तेई मूढ प्रानी भवभांवरि भ्रमाये है ॥ याही जिनवानीको सवाद सुखचाखो जिन, तेही महाराज भये करम नसाये हैं । तातैं दृग खोल 'भैया' लेहु जिनवानी लखि, सुखके समूह सब याहीमें वताये हैं ॥ ४ ॥

अपने स्वरूपको न जानै आप चिदानंद, वहै भ्रम भूलि वहै मिथ्या नाम पावै है । देव गुरु ग्रन्थ पंथ सांचको न जाने भेद, जहां तहां झूठे देव मान शीस नावै है ॥ चेतन अचेतन है हिंसा करै ठौर ठौर, वापुरे विचारे जीव नाहक सतावै है । जलके न थलके

न पौन अग्नि फलके न, त्रसनि विराधि मूढ मिथ्याती कहावै है ॥ ५ ॥

केई भये शाह केई पातशाह पहुमिपै, केई भये मीर केई बडे ही फकीर है। केई भये राव केई रंक भये विललात, केई भये काय र औ केई भये धीर हैं॥ केई भये इन्द्र केई चन्द्र छविवंत लसै, केई भये पौन अरु केई भये नीर है। एक चिदानंद केई स्वांगमें कलोल करै, धन्य तेही जीव जे भये तमासगीर हैं ॥ ६ ॥

सवैया.

परमान सबै विधि जानव है, अरु मानत है मत जे छह रे।
किरिया कर कर्मनि जोरत है, नहिं छोरत है भ्रमजे पहरे ॥
उपदेश करै व्रत नेम धरै, परभावनको उर नाहिं हरे ।
निज आतमको अनुभौ न करै, ते परे भवसागरमें गहरे ॥ ७ ॥

सवैया मात्रिक.

दुर्भर पेट भरनके कारन, देखत हो नर क्यों विललाय ।
झूंठ सांच बोलत याके हित, पाप करत नहिं नेक डराय ॥
भक्ष्य अभक्ष्य कछू न विचारत, दिन अरु रात मिलै सो खाय।
उत्तम नरभव पाय अकारथ, खोवत बादि जनम सब आय ॥ ८

कवित्त

करता सबनके करमको कुलाल जिम, जाके उपजाये जीव जगतमें जे भये। सुर तिरजंच नर नारकी सकल जंतु, रच्यो ब्रह्मांड सब रूपके नये नये॥ तासों वैर करवेको प्रगटे कहांसों आय, ऐसे महा बली जिहँ खातिरमें ना लये। ढूंढै चहुं ओर नहिं पावै कहूं ताको ठोर, ब्रह्माजूकी सृष्टिको चुराय चोर लै गये॥९

चौपरके खेलसे तमासो एक नयो दीसै, जगतकी रीति सब

याहीमें वनाई है । चारों गति चारों दाव फिरवो दशा त्रिभाव, कर्मवर्ती जीव सार मिल विछुराई है ॥ तीनो योग पांसे परै ताके तैसे दाव परे, शुभ ओ अशुभ कर्म हार जीत गाई है । फिरवो न रह्यो जब कर्म खप जांहिं सब, पंचमि गति पावै ये 'भैया' प्रभुताई है ॥ १० ॥

देहके पवित्र किये आतमा पवित्र होय, ऐसे मूढ भूल रहे मिथ्याके भरममें । कुलके आचारको विचारै सोई जानै धर्म, कंद मूल खाये पुण्य पापके करममें ॥ मूंडके मुंडाये गति देहके द-गाये गति, रातनके खाये गति मानत धरममें । शस्त्रके धरैया देव शास्त्रको न जानै भेव, ऐसे हैं अनेव अरु मानत परम मैं॥११

नदीके निहारतही आतमा निहारयो जाय, जो पै कोउ ज्ञान वंत देखै दृष्टि धरकें । एक नीर नयो आय एक आगें चल्यो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकें ॥ ताहूमें कलोल कई भांतिकी तरंग उठै, विनसै पुनि ताहूमें अनेकधा उछरिकें । तैसें इह आतममें कई परिणाम होय,ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकें१२

जगतके जीवन जीवावै जगदीश कोउ, वाकी इच्छा आवै तब मार डारियतु है । वाहीके हुकुम सेती काज सब करै जीव, विना वाके हुकम न तृण डारियतु है ॥ करता सबनके करमनको वही आप, भोगता दुहूमें कौन जो विचारियतु है । करता सो भोगता कि करै और भुंजै और,याको कछु उत्तर न सूधो धारियतु है ॥ १३ ॥

जोलों यह जीवके मिथ्यात्व दृष्टि लगि रही, तौलों सांच झूंठ सूझै झूंठ सूझै सांच है। राग द्वेष विना देव ताहि कहै रागी देव, जीवको न जाने भेव, मानै तत्त्व पांच है ॥ वस्तुके स्वभावको

न जान्यो यह सांचो धर्म, किरियाको धर्म मानै मदिराकी मांच है । सत्यारथ वानी सरवज्ञने पिछानी 'भैया,' ताहि न पिछानी तोलों नाचे कर्म नाच है ॥ १४ ॥

कोऊ कहै सूर सोम देव हैं प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचन्द्र राखैं आवागौनसों । कोउ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया अहै, कोउ कहै महादेव उपज्यो न जौनसों ॥ कोउ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लगि रहे हैं भवानी जू के भौनसों । वही उपाख्यान सांचो देखिये जहांन बीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों ॥ १५ ॥

सवैया इकतुकिया.

निश द्यौस यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रके पांय कबै परसों ।
जिन देवके देखनकी रटनाजु, कहों किम जाहुं विना परसों ॥
कबधों शिवलोकमें जाय वसों, सुख संधि लहों सजिकें परसों ।
कब जोग मिलै इम इच्छित है भवि, आज कै कालिह किधों परसों १६

कवित्त

जाके कुल धर्म मांहि सरवज्ञ देव नाहिं, पूछत ते कौन पांहि हिर दैकी बातको । संशै उर पूरि रहै ज्ञान गुण दूर रहै, महातम भूरि रहै लखै सार गातको ॥ मिथ्याकी लहरि आवै सांच कौ न पंथ पावै, जहां तहां भूलि धावै करै जीव घातको । झूठो ही पुरान मानै झूठे देव देव ठानै, जैसें जन्म अन्ध नर देखै ना प्रभातको ॥१७॥

राजाके परजा सब बेटा बेटीकी समान, यह तो प्रत्यक्ष बात लोकमें कहान है । आप जगदीस अवतार धर्यो धरनी पै, कुंजनिमें केल करी जाको नाम कान्ह है ॥ परमेश्वर करै पर वधू सों

अनाचार, कहते न आवै लाज ऐसो ही पुरान है। अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो, जगतके डोविवेको ऐसो परधान है ॥ १८ ॥

स्त्रीरूपवर्णन—मात्रिक कवित्त.

बडी नीत लघु नीत करत है, वाय सरत बदबोय भरी।
फोडा बहुत फुनगणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी॥
शोणित हाड मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नारि निरखिकर केशव [1] 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी १९

सवैया (मत्तगयन्द)

जो जगको सब देखत है-तुम, ताहि विलोकिकें काहे न देखो।
जो जगको सब जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो है लेखो॥
जो जगमें थिर ह्वै सुखमानत, सो सुख देवत कौन विशेखो॥
है घटमें प्रगटै तबही, जबही तुम आप निहारके पेखो॥ २०॥

कुपथ वर्णनकवित्त.

सोई तो कुपंथ जहां द्रव्यको न जाने भेद, सोईतो कुपंथ जहां लागि रहे परसे। सोई तो कुपंथ जहां हिंसामें वखाने धर्म, सोई तो कुपंथ जहां कहे मोक्ष घरमें॥ सोई तो कुपंथ जो कुशीली पशु देव कहै, सोई तो कुपंथ जो कुलिंगी पूजे डरसें। सोई तो कुपथ जो सुपंथ पंथ जानै नाहिं, विना पंथ पाये मूढ कैसें मोक्ष दरसे॥ २१॥

(१) दतकथामें प्रसिद्ध कि केशवदासजी कवि जो किसी स्त्रीपर मोहित थे इन्होंनें उसके प्रसन्नार्थ 'रसिकप्रिया' नामका ग्रंथ वनाया वह ग्रंथ समालोचनार्थ 'भैया' भगोतीदासजीके पास भेजा तो उसकी समालोचनामे यह कवित्त रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकरके वापिस भेज दिया था. (२) गौ आदिक कुशीली पशुओंको देव मानते हैं.

झूठो पंथ सोई जहां झूठे देव देव कहै, झूठे पंथ सोई जहां झूठे गुरु मानिये। झूठो पंथ सोई जहां ग्रंथ सब झूंठे बचें, झूठो पंथ सोई जहां भ्रमको वखानिये॥ झूठो पंथ सोई जहां दयाको न जाने भेद, झूंठो पंथ सोई जहां हिंसाको प्रमानिये। झूठे पंथ चले तब कैसें मोक्ष पावें अरु विना मोक्षपाये 'भैया' सुखी कैसें जानिये॥ २२॥

सुपन्थवर्णन सवैया.

पंथ वहै सरवज्ञ जहां प्रभु, जीव अजीवके भेद बतैये।
पंथ वहै जु निग्रन्थ महामुनि, देखत रूप महासुख पैये॥
पंथ वहै जहँ ग्रंथ विरोध न, आदि ओ अंतलों एक लखैये।
पंथ वहै जहाँ जीवदयावृष, कर्म खपाइकैं सिद्धमें जैये॥ २३॥
पंथ वहै जहँ साधु चलै, सब चेतनकी चरचा चित लैये।
पंथ वहै जहँ आप विराजत, लोक अलोकके ईश जु गैये॥
पंथ वहै परमान चिदानंद, जाके चलै भव भूल न ऐये।
पंथ वहै जहँ मोक्षको मारग, सूधे चले शिवलोकमें जैये॥ २४॥

कवित्त.

केवलीके ज्ञानमें प्रमाण आन सब भासै, लोक ओ अलोकन की जेती कछु बात है। अतीत काल भई है अनागतमें होयगी; वर्तमान समैकी विदित यों विख्यात है॥ चेतन अचेतनके भाव विद्यमान सबै, एक ही समैमें जो अनंत होत जात है। ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेष वनी, ताको धनी यहै हंस कैसें विललात है॥ २५॥

छयानवें हजार नार छिनकमें दीनी छार, अरे मन ता निहार

काहे तू डरत है । छहों खंडकी विभूति छाडत न वेर कीन्हीं, च
चतुरंगनसों नेह न धरत है ॥ नौ निधान आदि जे चउदह र
त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है । ऐसी विभो त्याग
विलंब जिन कीन्हों नाहिं, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों कर
त है ॥ २६ ॥

दोहा.

यहै सुपंथ कुपंथके, कवित पचीस प्रसिद्ध ॥
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध ॥ २७ ॥

इति सुपंथकुपथपचीसिका.

अथ मोहभ्रमाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

परम पूज्य सर्वज्ञ है, तारन तरन त्रिकाल ॥
तासु चरन वंदन करों, छांडि सु आल जंजाल ॥ १ ॥
एक मोहकी मगनसों, भ्रमत सवहि संसार ॥
देखै अरु समझै नहीं, ऐसो गहल गँवार ॥ २ ॥

कवित्त.

मोहके भरमसों करम सब करै जीव, मोहकी गहलमें जगत सव गाइये । मोह धरै देह परनेह परसों जु करै, भरमकी भूलमें धरम कहां पाइये ॥ चरमकी दृष्टिसों परम कहूं पेखियत, मोहहीकी भूल यह भरम भ्रमाइये । चेतन अचेतनकी जाति दोऊ भिन्न भिन्न, मोह एकमेक लखै 'भैया' यों वताइये ॥ ३ ॥

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों एक रूप, कहै परमेश्वरके अंशके वनाये हैं । विरंचि औ शंकरने आपुसमें युद्ध कीनो, खरशी-

र छेदन ग्रथनिमें गाये हैं ॥ विष्णु आप आय अवतार लीनों जलमाहिं, जल कहो काहे पैं हो काहु न बताये है। सृष्टि रची पीछेकर पहिले पौन पानी होंहिं, इतनोहू ज्ञान नाहिं ऐसे भरमाये है ॥ ४ ॥

कान्ह करी कुंजनमें केलि परनारिनसों, ऐसे व्यभिचारिनको ईश कैसें कहिये । महादेव नागे होय नाचै सो प्रसिद्ध बात, तऊ न लजात कहै ईश अंश लहिये ॥ ब्रह्माने तिलोत्तमाको देख मुख चार कीन्हे, इतनों विचार नाहीं इन्हैं ऐसी चहिये । कहत है ईश जगदीश ए बनाये आप, इनहीके चरण त्रिकाल गहि रहिये ॥ ५ ॥

अर्जुनको तीनों लोक मुखमें दिखाये जिन, प्रद्युमन हरे सुधि कहूं न लहत हैं। शंकर जु शीस काट ढूंढत गणेशहू को, तीन लोक मैं न कहूं गज ले गहत हैं। ब्रह्मा जू की सृष्टिको चुराय जब गये चोर, तीन लोक करे तापै ढूंढत रहत हैं। रामचंद्र सीता सुधि पूछै पशुपक्षीनपैं, ताको लोक जगतके ईश्वर कहत है ॥ ६ ॥

मच्छको स्वरूप धर गये जो पताल माहिं, चारों वेद चोर पास आन यहां धरे हैं। कच्छ ह्वै अठासी लक्ष योजनकी देह धरी, छोटेसे समुद्रमें मथान पीठ करे हैं ॥ पृथ्वीको पताल तैं लै आये आप सूअर ह्वै, सिंहको स्वरूप धार हिर्णाकुश हरे हैं । परमेश्व पर्मगुरु अविनाशी जोतरूप, ताहि कहैं पशु देह आय अवतरे हैं ॥ ७ ॥

राम औ परशुराम आपुसमें युद्ध कीनों, दोऊ अवतारी अंश ईश्वरके लरे हैं । कृष्ण अवतार माहिं तीन लोक राखत है, द्वा·

काहे तू डरत है । छहों खंडकी विभूति छाडत न बेर कीन्ही, चमू चतुरंगनसों नेह न धरत है ॥ नौ निधान आदि जे चउदह रतन त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है । ऐसी विभो त्यागत विलंब जिन कीन्हों नाहिं, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों करत है ॥ २६ ॥

दोहा.

यहै सुपंथ कुपंथके, कवित पचीस प्रसिद्ध ॥
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध ॥ २७ ॥

इति सुपथकुपंथपचीसिका.

अथ मोहभ्रमाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

परम पूज्य सर्वज्ञ है, तारन तरन त्रिकाल ॥
तासु चरन वंदन करों, छांडि सु आल जंजाल ॥ १ ॥
एक मोहकी मगनसों, भ्रमत सवहि संसार ॥
देखै अरु समझै नहीं, ऐसो गहल गंवार ॥ २ ॥

कवित्त.

मोहके भरमसों करम सब करै जीव, मोहकी गहलमें जगत सब गाइये । मोह धरै देह परनेह परसों जु करै, भरमकी भूलमें धरम कहां पाइये ॥ चरमकी दृष्टिसों परम कहूं पेखियत, मोहहीकी भूल यह भरम भ्रमाइये । चेतन अचेतनकी जाति दोऊ भिन्न भिन्न, मोह एकमेक लखै 'भैया' यों बताइये ॥ ३ ॥

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों एक रूप, कहै परमेश्वरके अंशके बनाये हैं । विरंचि औ शंकरने आपुसमें युद्ध कीनो, खरशी-

ए छेदन ग्रथनिमें गाये हैं ॥ विष्णु आप आय अवतार लीनों जलमाहिं, जल कहो काहे पै हो काहु न बताये है। सृष्टि रची पीछेंकर पहिले पौन पानी होंहिं, इतनोहू ज्ञान नाहिं ऐसे भरमाये है ॥ ४ ॥

कान्ह करी कुंजनमें केलि परनारिनसों, ऐसे व्यभिचारिन को ईश कैसें कहिये। महादेव नागे होय नाचै सो प्रसिद्ध बात, तऊ न लजात कहै ईश अंश लहिये ॥ ब्रह्माने तिलोत्तमाको देख मुख चार कीन्हे, इतनों विचार नाहीं इन्है ऐसी चाहिये। कहत है ईश जगदीश ए बनाये आप, इनहीके चरण त्रिकाल गहि रहिये ॥ ५ ॥

अर्जुनको तीनों लोक मुखमें दिखाये जिन, प्रद्युमन हरे सुधि कहूं न लहत हैं। शंकर जु शीस काट ढूंढत गणेशहू को, तीन लोकमें न कहूं गज ले गहत हैं। ब्रह्मा जू की सृष्टिको चुराय जब गये चोर, तीन लोक करे तापै ढूंढत रहत है। रामचंद्र सीता सुधि पूछै पशुपक्षीनपैं, ताको लोक जगतके ईश्वर कहत है ॥ ६ ॥

मच्छको स्वरूप धर गये जो पताल माहिं, चारों वेद चोर पास आन यहां धरे हैं। कच्छ ह्वै अठासी लक्ष योजनकी देह धरी, छोटेसे समुद्रमें मथान पीठ करे हैं॥ पृथ्वीको पताल तैं लै आये आप सूअर ह्वै, सिंहको स्वरूप धार हिर्णाकुश हरे हैं। परमेश पर्मगुरु अविनाशी जोतरूप, ताहि कहैं पशु देह आय अवतरे है ॥ ७ ॥

राम औ परशुराम आपुसमें युद्ध कीनों, दोऊ अवतारी अंश ईश्वरके लरे है। कृष्ण अवतार माहिं तीन लोक राखत हैं, द्वा·

रका न रावसके जादों सब जेर हैं ॥ बौद्ध है विचारे मूढ मांस भक्षी कीने सब पापपिंड मर मर नर्क माहि परे हैं । बावन है जाच्यो बलि ईश्वर ह्वै लीन्हों छलि, अजहूं पातालद्वारपाल भये खरे हैं ॥ ८ ॥

मात्रिक कवित्त.

पचम गुण थानक जो श्रावक, उतकृष्टी प्रतिमा धर होय ।
सचित त्याग ताको जिन बोलत, एक सु पट परिग्रहमें जोय ।
साधु चतुर्दश परिग्रह राखहिं, पचखानन महिं एक न दोय ।
तीर्थंकर लहि उडद बाकुले, कहत लाज नहिं आवै लोय ॥९॥

कवित्त.

बापुरे विचारे मिथ्यादृष्टि जीव कहा जानै, कौन जीव कौन कर्म कैसें के मिलाप है । सदा काल कर्मनसों एकमेक होय रहे. भिन्नता न भासी कौन कर्म कौन आप है ॥ यह तो सर्वज्ञ देव देख्यो भिन्न भिन्न रूप, चिदानंद ज्ञान मयी कर्म जड व्याप है । तिह भाति मोह हीन जानै सरधानवान, जैसो सर्वज्ञ देखो तैं सोही प्रताप है ॥ १० ॥

दोहा.

मोहभ्रमाष्टक कवितके दोष न लीज्यो मित्त ॥
'भैया' हृदय विवेकधर, कीज्यो निर्मल चित्त ॥ ११ ॥

इति मोहभ्रमाष्टक ।

अथ आश्चर्यचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा

नमों पदारथ सार को, निज अनुभूति प्रकाश ॥
सर्व द्रव्य व्यापी प्रभू, केवल ज्ञान प्रकाश ॥ १ ॥

कवित्त.

देहधारी भगवान करै नाहीं खान पान, रहै कोटि पूरबलों जगमें प्रसिधि है। बोलत अमोल बोल जीभ होठ हालै नाहिं, देखै अरु जानै सब इन्द्री न अवधि है। डोलत फिरत रहै डग न भरत कहै, परसंग त्यागी संग देखो केती रिधि है। ऐसी अचरज बात [1]मिथ्या उर कैसें मात, जानै सांची दृष्टिधारी जाके ज्ञाननिधि है ॥ २ ॥

देखत जिनंदजूको देखत स्वरूप निज, देखत है लोकालोक ज्ञान उपजायके। बोलत है बोल ऐसे बोलत न कोउ ऐसें, तीन लोक कथनको देत है बतायके॥ छहों काय राखिवेकी सत्य वैन भाखिवेकी, पर द्रव्य नाखिवेकी कहै समुझायके। करम नसायवेकी आप निधि पायवेकी, सुखसों अघायवेकी रिद्धि दै लखायके ॥ ३ ॥

बहिर्लापिका—छप्पय.

कहा सरसुतिके कंथ? कहो छिन भंगुर को है?।
काननको कहा नाम? बहुतसों कहियत जो है? ॥
भूपतिके संग कहा? साधु राजै किहं थानक?।
लच्छिय विरथी कहां? कहा रेसम सम वानक? ॥
श्रेयांस राय कीन्हों कहा? सो कीजे भविजन ददा।
सब अर्थ अंत यह तंत सुन, वीतराग सेवहु सदा ॥४॥

भावार्थ—सुन वीतराग सेव हो सदा-इसके तीसरे और दूसरे अक्षरसे बीन, चौथे और दूसरेसे तन, पांचवें दूसरेसे रान छठवें दूसरेसे गन, सातवें

(१) मिथ्यातीके.

दूसरेसे सेन, आठवें दूसरेसे चन, नवमें दूसरेसे हो न, दशवें दूसरेसे सन, और ग्यारहवें दूसरेसे दान, बनकर सब प्रश्नोंके उत्तर निकलते हैं।

अन्तर्लापिका- छप्पय ।

कहो धर्म कब करै ? सदा चितमें क्या धरिये ? ।
प्रभु प्रति कीजे कहा ? दानको कहा उचरिये ? ॥
आस्रव सों किम जीत ? पच पदको कहा गहिये ? ॥
गुरु शिक्षा किम रहै ? इन्द्र जिनको कहा कहिये ॥
सब प्रश्न वेद उत्तर कहत, निज स्वरूप मनमें धरो ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, सदा दया पूजा करो ॥५॥

भावार्थ—सदा दया पूजा करो-इस पदके चार शब्दोंमें तो पहिले चार प्रश्नोंका उत्तर मिलता है. जैसे धर्म कब करै ? सदा, चित्तमें सदा क्या रक्खे ? दया आदि, और अन्तके चार प्रश्नोंका उत्तर इन्हीं चार शब्दोंको उलटे पढनेसे [रोक, जापु, याद, दास] से निकलता है.

अन्तर्लापिका छप्पय ।

मन्दिर बनवावो ? मूर्ति, लाव—? सैना सिंगारहु ? ।
अम्बु आन ? वासर प्रमाण,? पहुंची नग धारहु ?॥
मिश्री मंगवा ? कुमुद, लाव ? सरसी तन पिक्खहु ? ।
तौल लेहु ? दत लच्छि, देहु ? मुनि मुद्रा सिक्खहु ? ॥
सब अर्थ भेद भैया कहत, दिव्य दृष्टि देखहु खरी ।
आकृत्रिम प्रतिमा निरखतसु, करि न घरी न भरी घरी ॥

भावार्थ-प्रथम द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर 'करी न' इस शब्दके तीन अर्थ करने से निकलते है (१ कडी नहीं है २ बनवाई नहीं, ३ हाथी नहीं) दूसरे पादके चौथे पांचवें छटवें प्रश्नके उत्तर 'घरी न' इस शब्दके

तीन अर्थ (१ घडा नहीं, घडी (वाच) नहीं, ३ चनी नहीं.) इस प्रकार करनेसे निकलते हैं तृतीय पादके तीन प्रश्नोंका उत्तर भरी न के तीन अर्थ (१ भरी नहीं गई २ भरी नहीं, ३ जलसे भरी नहीं) से निकलता है. और चतुर्थ पादके प्रश्नोंका उत्तर 'धरी न' के तीन अर्थ (१ पंसेरी नहीं, २ रक्खी नहीं है ३ धारण नहीं की, निकालनेसे मिलता है ॥ ६ ॥

प्रश्न. दोहा.

पूछत है जन जैनको, चिदानंदसों बात ॥
आये हो किस देशतैं, कहो कहां को जात ॥ ७ ॥

देश तो प्रसिद्ध है निगोद नाम सिंधुमहा, तीनसे तेताल राजु जाको परमान है। तहांके वसैया हम चेतनके वसवारे, वसत अनादिकाल बीत्यो विन ज्ञान है ॥ तहांतै निकस कोऊ कर्म शुभ जोग पाय, आये हम इहां सुने पुरुष प्रधान है। ताके पॉय परवेको महाव्रत धरवेको, शिष्य सग करवेको चलिवो निदान है ॥ ८ ॥

एक दिन एक ठौर मिले ज्ञान चारितसों, पूछी निज बात कहां रावरो निवास है। बोले ज्ञान सत्यरूप चिदानंद नाम भूप, असंख्यात परदेश ताके पुरवास है ॥ एक एक देशमें अनंत गुण ग्राम वसै, तहांके वसैया हम चरणोंके दास हैं। तूहू चल मेरे संग दोऊं मिलि लूटै सुख, मेरे ऑख तेरे पांय मिलो योग खास है ॥ ९ ॥

लाल वस्त्र पहिरेसों देह तो न लाल होय, लाल देह भये हंस लाल तौ न मानिये। वस्त्रके पुराने भये देह न पुरानी होय, देहके पुराने जीव जीरन न जानिये ॥ वसनके नाश भये देहको

न नाश होय, देहके न नाश हंम नाश न वखानिये। देह पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी, दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भैया' उर आनिये ॥ १० ॥

मात्रिक कवित्त.

ग्यारह अंग पढै नव पूरव, मिथ्या वल जिय करहिं वखान।
दे उपदेश भव्य समुझावत, ते पावत पदवी निर्वान ॥
अपने उरमें मोह गहलता, नहिं उपजै सत्यारथ ज्ञान।
ऐसे दरबश्रुतके पाठी, फिरहिं जगत भाखैं भगवान ॥ ११ ॥

प्रश्न कवित्त. (अर्द्धाली)

दर्शन भ्रष्ट भ्रष्ट सोई चेतन, दर्शन भ्रष्ट मुक्त नहिं होय।
चारित भ्रष्ट तरे भवसागर, यह अचरज पूछत शिशु कोय ॥१

उत्तर चौपाई.

तेरह विधि चारित जो धरै। तिहं विन तजे न भवदधि तरै
जव ये भाव करहिं उर नाश। तव जिय लहै मोक्षपद वास॥१

कवित्त.

मांस हाड लोहू सानि पूतरी वनाई काहु, चामसों लपेट तामें रोम केश लाये हैं। तामैं मलमूत भर कृमि केई कोटि घर, रोग संचै कर कर लोकमें ले आये हैं॥ वोलै वह खाउं खाउं खाये विना गिर जाऊं, आगेको न धरों पाउं ताही पै लुभाये हैं ऐसे भ्रम मोहने अनादिके भ्रमाये जीव, देखै परतक्ष तोउ चक्षु मानो छाये हैं ॥ १४ ॥

यह आश्चर्य चतुर्दशी, पढत अचंभो होय ॥
भैया लोचन ज्ञानके, खुलत लखै सव कोय ॥ १५ ॥

इति आश्चर्यचतुर्दशी.

अथ रागादिनिर्णयाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनंद ॥
तासु चरन वंदन करों, मन धर परमानंद ॥ १ ॥

मात्रिक कवित्त.

रागद्वेष मोहकी परणति, है अनादि नहिं मूल स्वभाव ।
चेतन शुभ्र फटिक मणि जैसें, रागादिक ज्यों रंग लगाव ॥
वाही रंग सकल जग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव ।
समदृष्टी सो लखै दुहू दल, यथायोग्य वरतै कर न्याव ॥ २ ॥

दोहा.

जो रागादिक जीवके, ह्वै कहुं मूल स्वभाव ॥
तो होते शिव लोकमें, देख चतुर कर न्याव ॥ ३ ॥
सबहि कर्मतैं भिन्न है, जीव जगतके माहिं ॥
निश्चय नयसों देखिये, फरक रंच कहुं नाहिं ॥ ४ ॥
रागादिकसों भिन्न जब, जीव भयो जिहं काल ॥
तब तिहं पायो मुकति पद, तोरि कर्मके जाल ॥ ५ ॥
ये हि कर्मके मूल हैं, राग द्वेष परिणाम ॥
इनहीसें सब होते है, कर्म बन्धके काम ॥ ६ ॥

चान्द्रायण छन्द. (२५ मात्रा)

रागी बांधै करक मरमकी भरनसों ।
वैरागी निर्वंध स्वरूपाचरनसों ॥
यहै बंध अरु मोक्ष कही समुझायके ।
देखो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहं दोष ।
तिनको निमित पाय परमाणू, बंध होय वसु भेदहिं सोय ॥
तिनतैं होय देह अरु इन्द्रिय, तहां विषै रस भुंजत लोय ।
तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिंह संसारचक्र फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा.

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरेमें समुझाय ॥
'भैया' सम्यक नैनतैं, लीज्यो सबहि लखाय ॥ ९ ॥

इति रागादिकनिर्णयाष्टक ।

अथ पुण्यपापजगमूलपचीसिका लिख्यते.

दोहा.

परमातम परतक्ष है, सिद्ध सकल अरहंत ॥
नितप्रति वंदों भावधर, कहूं जगत विरतंत ॥ १ ॥

कवित्त

स्वामी श्रीमंधरजीके पाय पर ध्यान धर, वीनती करत भवि दोऊ कर जोरकें । तुम जगदीश जग ईश तिहुं लोकनके, भक्त जन संग किन लेहु अघ तोरकें ॥ देव सरवज्ञ सब जीवोंकी करत रक्षा, जीवनकी जाति हम कहै मद छोरकें । सेव इहिविधि करैं नाम हिरदैमें धरैं, जपैं जिनदेव जिनदेव बल फोरकें ॥ २ ॥

आगे मद माते गज पीछें फोज रही सज, देखें अरि जाय भज बसै घन वनमें । ऐसे बल जाके संग रूप तो बन्यो अनंग, चमू चतुरंग लखि कहै धन धनमैं ॥ पुण्य जब खिस जाय परयो परयो विललाय, पेट हू न भरयो जाय पाप उदै तनमें । ऐसी

ऐसी भांतिकी अवस्था कई धरै जीव, जगतके वासी देखे हांसी आवे मनमें ॥ ३ ॥

चामके शरीर माहिं वसत लजात नाहिं, देखत अशुचि तोउ लीन होय तनमें । नारि बनी काहे की विचार कछु करै नाहिं, रीझि रीझि मोह रहै चामके वदनमें ॥ लछमीके काज महाराज पद छांड देत, डोलत है रंक जैसें लोभकी लगनमें । तनकसी आयुपै उपाय कई कोटि करै जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें ॥ ४ ॥

छप्पय.

पुण्य उदय जब होय, जीव नर देही पावै ।
पुण्य उदय जब होय, तबहिं घर लछमी आवै ॥
पुण्य उदय जब होय, सबै जिय हुकुम चलावै ।
पुण्य उदय जब होय, तवै शिर छत्र धरावै ॥
जब पुण्य उदय खिस जाय अरु, पाप उदय आवै निकट ।
तब परै नरकमें जीव यह, सहै घोर संकट विकट ॥ ५ ॥

पाप उदय परतच्छ, इच्छ नहिं पूजै मनकी ।
पाप उदय परतच्छ, विथा बहु बाढै तनकी ॥
पाप उदय परतच्छ, लच्छ घरमें नहिं आवै ।
पाप उदय परतच्छ, जीव बहु संकट पावै ॥
जब पाप उदय मिट जाय अरु, पुण्य उदय आवै प्रबल ।
तब वही जीव सुख भोगवै, उथल पथल इम जगत थल ॥ ६ ॥

कवित्त.

पापके कियेसों हंस मलिन निकृष्ट होय, यह तौ न बूझै कोई पाप ही करत हैं। जल थल जीवमयी कहै वेद स्मृति माहिं पाँय तल जीव वसै छूयेतैं मरत है ॥ छोटे वडे देहधारी सबमें विराजै विष्णु, ताके तौ विनासे पाप कैसे न भरत हैं। इतनों विचार नाहिं पाप किये मुक्ति जाँय, ताहींतैं अज्ञानी जीव नर्क· में परत हैं ॥ ७ ॥

नागरिन संग केई सागरन केलि करी, राग रंग नाटक सों तोऊ न अघाये हो ॥ नर देह पाय तुम आयु पल्य तीन पाई, तहांहू विषै किलोल नानाभाँति गाये हो ॥ जहां गये तहां तुम विषैसों विनोद कीन्हों, ताहांतैं नरकमें अनेक दुख पाये हो। अजहू सम्हारि विषै डार क्यों न चिदानंद, जाके संग दुःख होय ताहीसों लुभाये हो ॥ ८ ॥

जहां तोहि चलवो है साथ तू तहां को ढूंढि, इहां कहां लो· गनसों रह्यो तू लुभाय रे। संग तेरे कौन चलै देख तू विचार हिये, पुत्र कै कलत्र धन धान्य यह काय रे ॥ जाके काज पाप कर भरत है पिंड निज, ह्वै है को सहाय तेरे नर्क जब जाय रे। तहां तौं अकेलो तूही पाप पुण्य साथी दोय, तामें भलो होय सोई कीजे हंसराय रे ॥ ९ ॥

तौलों तेरे ज्ञान नैन खुले नाहिं चिदानंद, तौलों तुम मोह वश सूरदास ह्वै रहे। हरके पराये प्रान पोषत हो देह निज, कहो यह कौन धर्म कौन पंथ लै रहै ॥ पापके कियेसों कछु पुण्य

(१) देवांगनाओंके २ अंधे.

नाही है है तोहि, एतो हू विचार नाही ऐसे ज्ञान ख्वै रहे। नर्कमें परैगो कौन ? संकट सहैगो कौन, अजहूं सम्हारो क्यों न कौन नींद स्वै रहे ॥ १० ॥

सरवज्ञ देवजूकी सेव करैं सब इन्द्र, तिनहूके कवला अहार नाहीं लीजिये। मुनि होंय लब्धिधारी ते चलें अकाश माहिं, केवलीको भूमचारी ऐसे क्यों कहीजिये ॥ जाके देखे वैरभाव जाहिं सब जीवनके, ताके आगें साधु जरें कैसें के पतीजिये। ऐसो मिथ्यावन्तने बनाय कहूं तन्त लिखो, संत ह्वै सचेत यों विवेक हिये कीजिये ॥ ११ ॥

पंचमें जो गुण थान भाव जो विशुद्ध होंय, चढै जिय सातवें प्रसिद्ध यह बात है। छट्टो गुण थानक जा तियको न होय कहूं, नगन न रहि सकै लज्जावंत गात है ॥ मनपर्जय ज्ञान हू, मनै किये। सरवज्ञ, ध्यानहूको योग नाहीं चढि कैसें जात है। तासों कहै तीर्थंकर पद पाय मुक्ति भई, ऐसे मिथ्यावादिनसों कैसेंके वसात है ॥ १२ ॥

सोवत अनादि काल वीत्यो तोहि चिदानंद, अजहूं सम्हार किन मोह नींद खोयकें। सोयो तू निगोद माहि ज्ञान नैन मूंद आप, सोयो पंच थावरमें शक्तिको समोयके ॥ विकलत्रै देह पाय तहां तूही सोय रह्यो, सोयो न प्रमान धर वाही रूप होयके ॥ पंच इन्द्री विषै माहिं मग्न होय सोय रह्यो, खोयो तैं अनंतो काल याही भांति सोय कैं ॥ १३ ॥

---

(१) संकोचकें.

चांद्रायण, छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें बनि रह्यो ।
इनहीके परसाद, सुखी दुखिया कह्यो ॥
दोउ जगतके मूल, विनाशी जानिये ।
इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥
मोह मगन संसार, विषय सुखमें रहै ।
करै न आप सम्हार, परिग्रह संग्रहै ॥
जाने यह थिर वास, नाश नहिं होयगो ।
पाके मानुष जन्म, अकारथ खोयगो ॥ १५ ॥
देवधर्म परतीति, परीक्षा सांच की ।
सीखै नाहिं सुदृष्टि, रतन अरु कांचकी ॥
जन्म अकारथ जाय, सुनो मन बावरे ।
पीछें फिर पछताय, बहुर नहिं दावरे ॥ १६ ॥
पुण्य पाप परतक्ष, दोउ जगमूल है ॥
इनहीसें संसार, भरमकी भूल है ॥
केवल शुद्ध स्वभाव, लखै नहिं हंसको ।
ताही तै द्रुम होय, करमके वंशको ॥ १७ ॥
शुद्ध निरंजन देव, सदा निज पास है ।
ताको अनुभव करो, यही अरदास है ॥
कबहू भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें ।
केवल ज्ञान प्रकाश, लहोगे आपमें ॥ १८ ॥

---

१ न जाने सब प्रतियोंमे इसको 'अरिल्ल', क्यों लिखा है. अरिल्ल १६ मात्राका होता हैं और इसमें २१ मात्रा हैं। इसे 'तिलोकी' भी कहते हैं।

पुण्य पाप विन जीव, न कोई पाइये ।
औरनकी कहा चली, जिनेश्वर गाइये ॥
येही जगके मूल, कहे समुझायके ।
जो इनसेती भिन्न, बसै शिव जायके ॥ १९ ॥

कवित्त

कर्मनके हाथ ये बिकाये जग जीव सबैं, कर्म जोई करै सोई इनके प्रमान है । वैक्रिय शरीर पाय देव आप मान रहे, देवनकी रीति करै सुनै गीत गान है ॥ औदारिक देहु पाय नर नारी रूप भये, कीन्हीं वह रीति मानों पिये मद पान है । नरकमें गये तहां नारकी कहाये आप ऐसो चिदानंद भैया देख्यो ज्ञानवान है ॥ २० ॥

दोहा.

राम श्याम कित होत है, सो गति लहै न गूढ ॥
धोय चामकी देहको, शुचि मानत है मूढ ॥ २१ ॥
कहा चर्मकी देहमें, परम परे हो आन ॥
देखो धर्म संभारिकें, छांड भरमकी बान ॥ २२ ॥
करम करत हैं भरमतैं, धरम तुह्मारे नाहिं ॥
परम परीक्षा कीजिये, शरम कहा इहि माहिं ॥ २३ ॥
कर्न भरनतें होयगो, परन नरकके माहिं ॥
ज्ञान चरनके धरन विन तरन तुह्मारो नाहिं ॥ २४ ॥
सरन सदा ढूंढत रहै, मरन बचावहि कोय ॥
डरन प्रान निकसे पुरे, हरन कहांसों होय ॥ २५ ॥

---

(१) इन्द्रिय.

जीव कौन पुद्गल कहा, को गुण को परजाय ॥
जो इतनो समुझै नहीं, सो मूरख शिरराय ॥ २६ ॥
पुण्य पाप वश जीव सब, वसत जगतमें जान ॥
' भैया ' इनतैं भिन्न जो, ते सब सिद्ध समान ॥ २७ ॥

इति पुण्यपापजगमूलपचीसीका.

अथ बावीस परीसहनके कवित्त लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, प्रणमों जिनवर-वानि ॥
कहों परीसह साधुकी, विंशति दोय वखानि ॥ १ ॥

कवित्त.

धूप सीत क्षुधाजीत तृषा डंस भयभीत, भूमिसैन वधबंध सहै सावधान है । पंथत्रास तृणफांस दुरगंध रोगभास, नगनकी लाज रति जीते ज्ञानवान है ॥ तीय मानअपमान थिर कुवच नवान, अजाची अज्ञान प्रज्ञा सहित सुजान है । अदर्शन अलाभ ये परीसह है बीस द्वै, इन्है जीतै सोई साधु भाखै भगवान है॥२॥

१. ग्रीष्मपरीसह

ग्रीषमकी ऋतुमाहिं जलथल सूख जांहिं, परतप्रचंड धूप आगिसी बरत है । दावाकीसी ज्वाल माल बहत बयार अति, लागत लपट कोउ धीर न धरत है ॥ धरती तपत मानों तवासी तपाय राखी, बडवा अनल सम शैल जो जरत है । ताके शृंग शिलापर जोर जुग पांव धर, करत तपस्या मुनि करम हरत है ॥ ३ ॥

२. शीतपरीसह.

शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय

हरे वृक्ष झाढे है। महा कारी निशा माहिं घोर घन गरजाहिं, चपलाहू चमकाहिं तहां दग गाढे हैं॥ पौनकी झकोर चलै पाथर है तेहू हिलै, ओरानके ढेर लगे तामें ध्यान बाढे है। कहां लौं बखान कहों हेमाचलकी समान, तहां मुनिराय पांध जोर दृढ ठाढे है॥ ४ ॥

जोग देके जोगीश्वर जंगलमें ठाढे भये, वेदनीके उदैतै परीसहैं सहत है। कारी घन घटा लागै भारी भयानक अति, गाज विज्जु देखे धीर कोऊ न गहत है॥ मेहकी भरन परै सूसरसी धार मानो, पौनकी झकोर किधों तीर से बहत हैं। ऐसी ऋतु पावसमें पावत अनेक दुःख, तऊ तहां सुख वेद आनंद लहत है॥ ५ ॥

३. क्षुधापरीसह.

जगतके जीव जिहं जेर जीतराखे अरु, जाके जोर आगें सब जोरावर हारे है। मारत मरारे नहिं छोरे राजारंक कहूं, आंखिन अंधेरी ज्वर सब दे पछारे है। दावाकीसी ज्वाला जो जराय डारै छाती छवि, देवनको लागै पशुपंछी को विचारे हैं। ऐसी क्षुधा जोर भैया कहित कहां लौं और, ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारे है॥ ६ ॥

४. तृषापरीसह.

धूपकी धखनि परै आगसो शरीर जरै, उपचार कौन करै हहै द्वार आनके। पानीकी पियास जेती कहै को बखान तेती, तीनों जोग थिरसेती सहै कष्ट जानके॥ एक छिन चाह नाहिं

पानीके परीसे मांहि, प्रान किन नाश जाहिं रहै सुख मानके। ऐसी प्यास मुनि सहै तब जाय सुख लहै, भैया इहिभांति कहै वंदिये पिछानके ॥ ७ ॥

५. डंस मस्कादिपरीसह.

सिंह सांप ससा स्याल सूअर ओ स्वान भालु बाघ वीछी बानर सु बाजने सताये है। चीता चील्ह चरख चिरैया चूहा चेंटी चैंटा, गज गोह गाय जो गिलहरी बताये हैं॥ मृग मोर मांकरी सु मच्छर ओ मांखी मिल, भौरा भौंरी देख कै खजूरा खरे धाये हैं। ऐसे डंस मसकादि जीव हैं अनेक दुष्ट, तिनकी परीसे जीते साधुजू कहाये हैं ॥ ८ ॥

६. शय्यापरीसह.

शुद्ध भूमि देख रहै दिनसेती योग गहै, आसन सु एक लहै धरै यह टेक है। कैसो किन कष्ट परै ध्यानसेती नाहिं टरै, देहको समत्व हरै हिरैं विवेक है॥ तीनों योग थिरसेती सहत परीसे जेती, कहै को बखान तेती होंय जे अनेक हैं। ऐसे निशि शैन करै अचल सु अंग धरै, भव्य ताके पांय परै धन्य मुनि एक है ॥९॥

७. वधबंदपरीसह.

कोऊ बांधो कोऊ मारो कोऊ किन गहडारो, सबनके संकट सुबोधतैं सहतु है। कोऊ शिर आग धरो कोऊ पील प्रान हरो, कोऊ काट टूक करो द्वेष न गहतु है॥ कोऊ जल मांहिं बोरो कोऊ लेके अंग तोरो, कोऊ कह चोर मोरो दूख दे दहतु हैं। ऐसे वधबंधके परीसहको जीतै साधु, 'भैया' ताहि बार बार वंदना कहतु हैं ॥ १० ॥

८. चर्यापरीसह—छप्पय ।

जब मुनि करहिं विहार, पंथ पग धरहिं परक्खत ।
ऊंठ हाथ परवान, दृष्टि जुग भूमि परक्खत ॥
चलत ईरज्या समिति, पंच इन्द्रिय बश कीनें ।
दशहुं दिशा मन रोक, एक करुणारस भीनें ॥
इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद संकट त्रिकट ।
तिहं सहहिं भाव थिर राखके, तब धावें भव उदधितट ॥ ११ ॥

९ तृणफांसपरीसह— छप्पय ।

परत आंखि महं कछुक, काढि नहीं डारत तिनको ।
चुभत फांस तन मांहि, सार गहिं करते जिनको ॥
लागत चोट प्रचंड, खेद नहिं कहूं जनावत ।
बाणादिक बहु शस्त्र, कहत कहुं पार न आवत ॥
इम सहत सकल दुख देह दमि, रागादिक नहिं धरत मन ।
भैया त्रिकाल वंदत चरन, धन्य धन्य जग साधु धन ॥ १२ ॥

१०. ग्लानिपरीसह—छप्पय.

लगत देहमें मैल, धोय नहिं तिनको झारत ।
देहादिकतैं भिन्न, शुद्ध निज रूप विचारत ॥
जल थल सब जिय जन, संत है काहि सताऊं ।
सबही मोहि समान, देत दुख मैं दुख पाऊं ॥
इम जान महत दुरगंध दुख, तब गिलान विजयी भवत ।
'भैया' त्रिकाल तिहं साधु के, इन्द्रादिक चरनन नमत ॥ १३ ॥

---

(१) साढे तीन हाथ ।

११. रोगपरीसह–छप्पय.

वात पित्त कफ कुष्ट, स्वास अरु खांस खेण गनि।
शीत ताप शिरवाय, पेट पीडा जु शूल भनि॥
अतीसार अधशीस, अरश जो होय जलंधर।
एकांतर अरु रुधिर, वहुत फोडा जु भगंदर॥
इम रोग अनेक शरीरमहिं, कहत पार नहिं पाइये।
मुनिराज सबन जीते रहै, औषधि मात्र न भाइये॥ १४॥

दोहा.

ये एकादश वेदिनी, कर्म परीसह जान।
मोहसहित बलवान हैं, मोह गये बलहान॥ १५॥

१२. नग्नपरीसह—कवित्त.

नगनके रहिवेको महा कष्ट सहवेको, कर्मवन दहवेको वडे महाराज है। देह नेह तोरवेको लोक लाज छोरवेको, पर्म प्रीति जोरवेको जाको जोर काज हैं॥ धर्म थिर राखवेको परभाव नाखवेको, सुधारस चाखवेकौं ध्यानकी समाज है। अंबरके त्यागेसों दिगम्बर कहाये साधु, छहों कायके आराध यातैं शिरताज हैं१६

१३ रतिअरतिपरीसह – कवित्त.

आंखनिकी रति मान दीपक पतंग परै, नासिकाकी रतिमान भ्रमर भुलाने है। काननकी रतिमृग खोवत है प्राण निज, फरसकी रति गज भये जो दिवाने है॥ रसनाकी रति सब जगत सहत दुख, जानत हैं यह सुख ऐसें भरमाने हैं। इन्द्रिनकी रति मान गति सब खोटी करै, ताहि मुनिराज जीत आप सुख माने हैं॥ १७॥

छप्पय.

प्रकृति विरोध अहार, मिले मुनि जो दुख पावै।
सोहि अरति परिणाम, तहाँ समता रस आवै॥
औरहु परसंयोग, होत दुख उपजै तनमें।
तहां अरति परनाम, त्याग थिरता धरै मनमें॥
इम सहत साधु दुख पुंज बहु, तबहु क्षमा नहिं उर टरत।,
'भैया' त्रिकाल मुनिराज सो अरतिजीत शिवपद वरत॥ १८॥

१४. स्त्रीपरीसह— कवित्त.

नारिके निहारत विचार सब भूलि जांय, नारीके निहारे परिणाम फिरे जात है। नारिके निहारत अज्ञान भाव आय झुकै, नारिके निहारत ही शील गुणघात हैं॥ नारिके निहारत न सूरवीर धीर धरै, लोहनके मार जे अडिग ठहरात है। ऐसी नारि नागनिके नैनको निमेष जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत विख्यात हैं॥ १९॥

१५- मानअपमान परीसह कवित्त.

जहां होय मान तहां मानत महान सुख, अपमान होय तहाँ मृत्युके समान है। मानके गुमान आप महाराज मान रहे, होत अपमान मूढ हरै दशों प्रान हैं। मानहीकी लाज जग सहत अनेक दुख, अपमान होत धरै नरक निदान है॥ ऐसे मान अपमान दोऊ दुष्ट भाव तज, गनत समान मुनि रहै सावधान है॥ २०॥

१६. थिरपरीसह—छप्पय.

जब थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ धरई।
जब थिर होहिं मुनिंद, अंग एको नहिं टरई॥

जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहिं केते ।
जब थिर होहिं मुनिंद, भावसों सहैं जु तेते ॥
इम सहत कष्ट मुनिराज अति, रागदोष नहिं धरत मन ।
उतकृष्ट होहिं इक वेर जो, सब उनईस परीस भन ॥ २१ ॥

१७. कुवचनपरीसह - छप्पय.

कुवचन बान समान, लगै तिहिं मार गिरावहिं ।
कुवचन अगनि समान, पैठि गुन पुंज जलावहिं ॥
कुवचन वज्र विशाल, भाव गिरि ढाहैं पलमें ।
कुवचन विषकी झाल, मोह दुख दे बहु कलमें ॥
कुवचन महान दुख पुंज यह, लगे बचै नहिं जगत जन ।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत लहै निज अखय धन ॥२२॥

१८. अजाचीपरीसह घनाक्षरी (३२ वर्ग)

अजाची धरत व्रत जाचना करत नाहिं, इन्द्री उमंग हरत महा संतोष करकें । रागादि टरत भाव क्रोधादिबंध गरत, वरत स्वभाव शुद्ध मनोविकार हरकें ॥ मरनसों डरत न करत तपस्या जोर, दरत अनेक कष्ट क्षमा खड्ग धरकें । दया भंडार भरत वरत सु साधु ऐसें, 'भैया' प्रमाण करत त्रिकाल पांय परकें ॥ २३ ॥

१९. अज्ञानपरीसह—छप्पय ।

सम्यक ज्ञान प्रमान, होहिं मुनि कोय तुच्छ मति ।
सुनहिं जिनेश्वर बैन, याद नहिं रहैं हृदय अति ॥
ज्ञानावरण प्रसाद, बुद्धि नहिं प्रगटे जाकी ।
पूरब मन थिति बंध, इहाँ कछु चलत न ताकी ॥

इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानके, होहिं परीसह प्रबलजिय ।
तिहं जीत प्रीति निजरूपसों, लहत शुद्ध अनुभूत हिय ॥ २४ ॥

२०. प्रज्ञापरीसह-छप्पय ।

प्रज्ञा वल नहिं होय, तहां विद्या नहिं आवै ।
प्रज्ञा बल नहिं होय, तहां नहिं पढै पढावै ॥
प्रज्ञा बल न होय, तहां चर्चा नहिं सूझै ।
प्रज्ञा प्रबल न होय, तहां कछु अर्थ न बूझै ॥
इम बुद्धि विशेष न होय जित, तित अनेक परिसह सहत ।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहं, जीत शुद्ध अनुभौ लहत ॥ २५॥

२१. अदर्शनपरीसह-छप्पय ।

समय प्रकृति मिथ्यात, जासु उरतैं नहिं टरई ।
सो जिय है गुनवंत, तथा वेदक पद धरई ॥
दर्शन निर्मल नाहिं, मोहकी प्रकृति लखावै ।
वहै अदर्शन कष्ट, कहत कैसें वन आवै ॥
परिणाम खेद बहुविधि करत, तौ हू निर्मल होय नहिं ।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहं, जीत रहे निज आप महिं ॥२६

२२. अलाभपरीसह-कवित्त.

अंतराय कर्मके उदैतैं जो अलाभ होय, ताके भेद दोय कहे निश्चै व्यवहार है । निश्चै तो स्वरूपमें न थिरता विशेष रहै, वह अंतराय जो रहै न एक सार है ॥ व्यवहार अंतराय मिलै न अहार योग, और हू अनेक भेद अकथ अपार है । ऐसें तौ अलाभ की परीसहको जीत साधु, भये हैं अतीत 'भैया' वंदै निरधार है ॥ २७ ॥

बाईसपरीसहविजयी मुनिराजकी स्तुति

कुंडलिया.

महा परीसह बीस द्वय, तिहं जीतनको धीर ।
धन्य साधु संसार में बडे सूरवर वीर ॥
बडे सूरवर वीर, धीर भवकी जिहं टारी ।
कर्म शत्रुको जीत, भये शिवके अधिकारी ॥
धारी निजनिधि संच, पंच पदकोजिहं लहा ।
भैया करहि प्रणाम, परीसह विजयी सु महा ॥ २८ ॥

छप्पय

सत्रहसे उनचास मास, फागुण सुख कारी ।
सुदि वारस गुरुवार, सार मुनि कथा सवांरी ॥
विकट परीसह जीत, होत जे शिवपदगामी ।
ते त्रिभुवनके नाथ, प्रगट जग अंतरजामी ॥
तिह चरन नमत हिरदै हरखि, कहत गुननकी माल यह ।
कवि भैया द्वैकर जोरके, वंदन करहिं त्रिकाल लह ॥ २९ ॥
हृदयराम उपदेशतै, भये कवित्त ये सार ।
मुनिके गुण जे मरदहै, ते पावहिं भव पार ॥ ३० ॥

इति वाईस परीसह कवित्तबंध.

अथ मुनिके छियालीसदोषवर्जितआहारवि-
धिवर्णन लिख्यते.

दोहा.

अरहंत सिद्ध चितारचित, आचारज उवझाय ।
साधुसहित वंदन करों, मनवच शीस नवाय ॥ १ ॥

दोष छियालिस टारकें, मुनि जो लेहिं अहार ॥
नाम कथन ताके कहूं, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

अस्थि चर्म सूखे अरु हरे । दृष्टि देख भोजन परिहरे ॥
उखली खोटै चक्की चलै । शिलापिसति देखत टलै ॥ ३ ॥
गोबर थापै माटी छुवै । कोरे वस्त्र भींट जो हुवै ॥
चूल्हो जरतो नयन निहार । ता घर मुनि नहिं लेहि अहार ॥४॥
शिरहिं नहाती दीखै कोय । सीस कंघही कारती होय ॥
कच्चे पानी परसै अंग । ता घरतें मुनि फिरहिं अभंग ॥ ५ ॥
करवो खांडो दीसै कहीं । छन्नो फाटो ह्वै जो तहीं ॥
देत बुहारी दृष्टिहि परै । ता घर मुनि आयेतें फिरै ॥ ६ ॥
अन्नादिक सूकनको धरै । मिथ्याती भेटै तिहं घरै ॥
ओंटै कोय कपास निहार । ता घर मुनि फिर जाहिं विचार ॥७॥
भींटै पाक स्वान मंजार । रोमकंबल परसन परिहार ॥
अग्निदाह जो दृष्टिहि परै । रोवत सुनै अहार न करै ॥ ८ ॥
प्रतिमा भंग सुनै जे कान । शास्त्र जरै इम सुनै सुजान ॥
प्रतिमा हरी भयो भयजोर । ता घर आये फिरहिं किशोर ॥ ९ ॥
विनधोये पट पहिरे होय । पडिगाहै श्रावक जो कोय ॥
ता कर लेय अहार न साध । अशुचिदोष लागै अपराध ॥१०॥
कर्कश वचन सुनहिं विकराल । विनयहीन जो हो अदयाल ॥
लागै चोट ललाटहिं पेख । फिराहिं साधु छर्दित नर देख ॥११
विकलत्रय आवै तिहं ठौर । नख केशादि अपावन और ॥
पानी बूंद परै आकास । ता घर मुनि फिर जाहिं विमास ॥१२॥

खाज सहित रोगी नर देख । पीव ब्रहत पीडित पुनि पेख ॥
लोहू दृष्टि परै जो कहीं । तो मुनि असन लेनके नहीं ॥ १३ ॥
मांसादिक मल दृष्टिहि परै । कंद रु मूल मृतक परिहरै ॥
फल अरु बीज होंय तिहं ठौर । तो मुनिलेहि न एको कौर ॥१४
विना बीज ऊगो जो डार । ता निरखत नहिं लेय अहार ॥
ऐसे दोष छियालिस हीन । तजहिं ताहि संयमि परवीन ॥१५॥
उत्तम कुल श्रावकको जान । द्वारापेखन शुद्ध प्रमान ॥
विनयवंत प्राशुक कर नीर । बोलै तिष्ठ स्वामि जगवीर ॥ १६ ॥
ताघर दृष्टि विलोकहिं साध । यहां न कोउ लागै अपराध ॥
तब तिहं मंदिरमें अनुसरै प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥१७
श्रावक जो प्राशुक आहार । कीन्हों दोष छियालिस टार ॥
निजहित पोषनको परवार । ता महितें कछु भिन्न निकार ॥१८
द्वै करजोर मुनीश्वर लेहिं । श्रावक निजकरसों तिहं देहिं ॥
पुनि कर फेर नीरको धरै । प्राशुकजल तिहं करमें करै ॥ १९ ॥
लेय अहार नीर तिहं ठौर । जिनकल्पी उत्तम शिरमौर ॥
थिवरकल्पिकी हू यह चाल । दोऊं मुनिवर दीनदयाल ॥२०॥
दोऊं वनवासी निर्ग्रन्थ । दोऊं चलहिं जिनेश्वर पंथ ॥
दोऊं जपतप किरिया करै । दोऊं अनुभव हिरदै धरैं ॥ २१ ॥
जिनकल्पी एकाकी रहै । थिवरकल्पि शिष्यशाखा गहै ॥
अट्ठाईस मूलगुण सार । आपसाधु पालहिं निरधार ॥२२।
षष्टम अरु सप्तम गुण थान । दोऊं रहैं परम परधान ॥
पूरव कोटि वरष वसु घाट । उतकृष्टै वरतै यह बाट ॥ २३ ॥
केवलज्ञान दोऊ उपजाय । पंचमि गतिमें पहुंचें जाय ॥
सुख अनंत विलसैं तिहं ठौर । तातैं कहैं जगत शिरमौर ॥२४॥

संवत सत्रहसै पंचास । जेठशुदी पंचमि परकाश ॥
भैया वंदत मनहुल्लास । जयजय मुकतिपंथ सुखवास ॥ २५ ॥
इति छियालीसदोषरहित आहारशुद्धि चौपई.

अथ जिनधर्मपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान ॥
वंदत हों तिनके चरन, नाय शीस धर ध्यान ॥ १ ॥

छप्पय.

धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमें दया उभयविधि ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमहिं लखै आपनिधि ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, पंथशिवको दरसावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जहाँ केवल पद पावै ॥
पुनि धन्य धन्य जिनधर्म यह, सुख अनंत जहाँ पाइये ।
'भैया' त्रिकाल निजघटविषै, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइये ॥ २ ॥
जैनधर्मको मर्म, दृष्टि समकिततैं सूझै ।
जैनधर्मको मर्म, मूढ कैसें कर बूझै ॥
जैनधर्मको मर्म, जीव शिवगामी पावै ।
जैनधर्मको मर्म, नाथ त्रिभुवन को गावै ॥
यह जैनधर्म जगमें प्रगट, दया दुहूं जग पेखिये ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, जैनधर्म निज लेखिये ॥ ३ ॥
जैनधर्म जयवंत, अंत जाको नहिं कबहू ।
जैनधर्म जयवंत, संत प्राणी हैं अबहू ॥
जैनधर्म जयवंत, जंत सबको सुखकारी ॥
जैनधर्म जयवंत, तंत सबको अधिकारी ॥

सत जैनधर्म जयवंत जग, प्रगट परम पद पेखिये ।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतें, सुख अनंत सब लेखिये ॥४॥

कल्पवृक्ष जिनधर्म, इच्छ सब पूरै मनकी ।
चिंतामन जिनधर्म, चिंत सब टारै जनकी ॥
पारस सो जिनधर्म, करै लोहादिक कंचन ।
काम धेनु जिनधर्म, कामना रहती रंच न ॥
जिनधर्म परमपद एक लख, अनंत जहां पाइये ।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतें, मुक्तिनाथ तोहि गाइये ॥ ५ ॥

उदित तेजपरताप, होत दिनदिन जयकारी ।
तम अज्ञान विनाश, आश निज पर अधिकारी ॥
सबको शीतल करै, उष्ण क्रोधादिक टारै ।
सदा अमिय वरषंत, शांत रस अति विस्तारै ॥
'भैया' चकोर अंबुज भविक, सब प्राणिनको सुख करै ।
सो जैनधर्म जग चंद सम, सेवत दुख संकट टरै ॥ ६ ॥

जैनधर्म विन ! जीत ह्वै है नहिं तेरी ।
जैनधर्म विन जीव ! रीत किन करै घनेरी ॥
जैनधर्म विन जीव ! ज्ञान चारित कहुं नाहीं ।
जैनधर्म विन जीव ! प्रकृति पर जाह न गाही ॥
इहि जैनधर्म विन जीव ! तुहै, दया उभय सूझै न दग ।
'भैया' निहार निज घट विषै, जैनधर्म सोई मोक्षमग ॥ ७॥

जैनधर्म विन जीव ! तोहि शिवपंथ न सूझै ।
जैनधर्म विन जीव ! आप परको नहिं बूझै ॥
जैनधर्म विन जीव ! मर्म निजको नहिं पावै ।
जैनधर्म विन जीव ! कर्मगति दृष्टि न आवै ॥

इहि जैनधर्म विन जीव तुहै, केवलपद कितहू नहीं ।
अजहूं संभारि चिरकाल भयो चिदानंद! चेतौ कहीं ॥ ८ ॥
जैनधर्मको जीव, आप परको सब जानै ।
जैनधर्मको जीव, बंध अरु मोक्ष प्रमानै ॥
जैनधर्मको जीव, स्यादवादी परत्यागी ।
जैनधर्मको जीव, होय निश्चय वैरागी ॥
इहि जैनधर्मको जीव जग, अजरामरपदवी लहै ।
'भैया' अनत सुख भोगवै, आचारज इहविधि कहै ॥ ९ ॥

कवित्त.

पापनके कूट जे अटूट भरे घट माहिं, होते चिरकालनके सबै निघटत है । लगे जो मिथ्यातभाव भूलिके सुभावनिज, तिनहूके पटल प्रभात ज्यों फटत है ॥ अपनी सुदृष्टि होत प्रगटै प्रकाश ज्योत, तिहूं लोकमें उद्योत सत्य प्रगटत है । ऐसो जिनधर्मके प्रसादतें प्रकाश होय, अज हूं संभार भैया काहेको रटत है॥१०

छप्पय.

जो अरहंत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिज्जे ।
आचारज पुन जीव, जीव उपझाय गणिज्जे ॥
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पद राजै ।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्ध विराजै ॥
सबजीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूप मय ।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय ॥ ११ ॥

सवैया.

जो जिनदेवकी सेव करै जग, ताजिवदेवसो आप निहारै ।
जो शिवलोक बसै परमातम, तासम आतम शुद्ध विचारै ॥

आपमें आप लखै अपनो पद, पाप रु पुण्य दुहूं निरवारै ।
सो जिनदेवको सेवक है जिय, जो इहि भांति क्रिया करतारै ॥१२

कवित्त.

एक जीवद्रव्यमें अनंत गुण विद्यमान, एक एक गुणमें अनंत शक्ति देखिये । ज्ञानको निहारिये तो पार याको कहुं नाहिं, लोक औ अलोक सब याहीमें विशेखिये ॥ दर्शनकी ओर जो विलोकिये तो वहै जोर, छहों द्रव्य भिन्न भिन्न विद्यमान पेखिये । चारितसों थिरता अनंत काल थिररूप, ऐसे ही अनंत गुण भैया सब लेखिये १३

छप्पय.

राग दोष अरु मोहि, नाहिं निजमाहिं निरक्खत ।
दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्ध आतम रस चक्खत ॥
परद्रव्यनसों भिन्न, चिह्न चेतनपद मंडित ।
वेदत सिद्ध समान, शुद्ध निज रूप अखंडित ॥
सुख अनंत जिहि पदवसत, सो निहचै सम्यक महत ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, श्रीजिनंद इहि विधि कहत १४

व्यवहार सम्यक लक्षण छप्पय.

छहों द्रव्य नव तत्त्व, भेद जाके सब जानै ।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानै ॥
संयम सहित सुसाधु, होय निरग्रंथ, निरागी ।
मति अविरोधी ग्रन्थ, ताहि मानै परत्यागी ॥
वरकेवल भाषित धर्मधर, गुण थानक बूझै मरम ।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिन धरम ॥१५॥

व्यवहार निश्चयनय वर्णन—मात्रिक कवित्त.

जाके निहचै प्रगट भये गुण, सम्यक दर्शन आदि अपार ।

ताके हिरदै गई विकलता, प्रगट रही करनी व्यवहार ॥
जहं व्यवहार होय तहं निहचै, होय न होय उभय परकार ।
जहं व्यवहार प्रगट नहिं दीखै, तहां न निश्चय गुण निरधार॥१६

कवित्त.

आंख देखै रूप जहां दौड तूही लागै तहां, सुनै जहां कान तहां तूही सुनै बात है । जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै, नाक सूंघै बास तहां तू ही विरमात है ॥ फर्सकी जु आठ जाति तहां कहो कौन भांति, जहां तहां तेरो नांव प्रगट विख्यात है । याही देह देवलमें केवलि स्वरूपदेव, ताकी कर सेव मन कहां दौडे जात है ॥ १७ ॥

जासों कहै घर तामै डर तौ कईक तोहि, सघन विसार हंस विषैरस लाग्यो है । गिरवेको डर अरु डर आगि पानीहूको, वस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है ॥ पेट भरवेको डर रोग शोक महाडर, लोकनिकी लाज डर राजडर पाग्यो है । डर जमराजहूको डारि तूं निशंक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज तोहि दाग्यो है ॥ १८ ॥

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करै सेव, ऐसो है अन्नेव ताको कैसें पाप खपनो? । राग रोग क्रीडा संग विषैकी उठै तरंग, ताहि में अभंग रैन दिना करै जपनो ॥ आरति औ रौद्र ध्यान दोऊ किये आगेवान, एतेपैं चहै कल्यान दैके दृष्टि ढपनो । अरे मिथ्याचारी तै विगारी मति गति दोऊ, हाथ लै कुल्हारी पांय मारत है अपनो ॥ १९ ॥

छप्पय.

जन्म जरा अरु मरन, पाप संताप विनासै ।
रोग शोक दुख हरै, सर्व चिंता भय नासै ॥

ऋद्धि सिद्धि अनुसरै, विविध विद्या परकासै ।
निजनिधि लहै प्रकाश, ज्ञान प्रभुता गुण भासै ॥
अरु कर्म शत्रु सब जीतके, केवलि पद महिमा धरै ।
सो जैनधर्म जयवंत जग, जास हृदय ध्रुव संचरै ॥ २०॥

जैनधर्म परसाद, जीव मिथ्यामति खंडै ।
जैनधर्म परसाद, प्रकृति उर सात विहंडै ॥
जैनधर्म परसाद, द्रव्यपटको पहिचानै ।
जैनधर्म परसाद, आप परको ध्रुव ठानै ॥
जैनधर्म परसाद लहि, निजस्वरूप अनुभव करै ।
'भैया' अनंत सुख भोगवै, जैन धर्म जो मन धरै ॥२१॥

जैनधर्म परसाद, जीव सब कर्म खपावै ।
जैनधर्म परसाद, जीव पंचमि गति पावै ॥
जैनधर्म परसाद, बहुरि भवमें नहिं आवै ।
जैनधर्म परसाद, आप परब्रह्म कहावै ॥
श्री जैनधर्म परसादतैं, सुख अनंत विलसंत ध्रुव ।
सो जैनधर्म जयवंत जग, भैया जिहं घट प्रगट हुव ॥ २२ ॥

कवित्त.

सुन मेरे मीत तू निचिंत ह्वैके कहा बैठो, तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं । छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी , डारत अंधेरी भैया किये जात भोर हैं ॥ जागवो, तो जाग अब कहत पुकारें तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं । फोरके शकति निज चोरको मरोर बांधि, तोसे बलवान आगे चोर ह्वैके को रहैं ॥ २३ ॥

छप्पय.

चहुं गतिमें नर वड़े, वड़े तिनमें समदृष्टी ।
समदृष्टीतैं वडे, साधुपदवी उतकृष्टी ॥
साधुनतैं पुन वड़े, नाथ उवझाय कहावैं ।
उवझायनतैं वड़े, पंच आचार बतावें ॥
तिन आचार्यनतै जिन वडे, वीतराग तारन तरन ।
तिन कह्यो जैनवृष जगतमें, भैया तस वंदत चरन ॥ २४ ॥

दोहा.

जैनधर्म सब धर्म पें, शोभत मुकुर समान ॥
जाके सेवत भव्यजन, पावत पद निर्वान ॥ २५ ॥
ज्यों दीपक संयोगतै, वत्ती करै उदोत ॥
त्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत ॥ २६ ॥
श्री जिनधर्म उदोत है, तिहूं लोक परसिद्ध ॥
'भैया' जे सेवहिं सदा, ते पावहिं निजरिद्ध ॥ २७ ॥
सत्रहसै पंचासके, उत्तम भादव मास ॥
सुदि पूनम रचना कही, जैजिनधर्मप्रकाश ॥ २८ ॥

इति जिनधर्मपचीसिका

अथ अनादिबत्तीसिका लिख्यते ।

दोहा.

अष्टकर्म-अरि जीतकें, भये निरंजन देव ॥
मन वच शीस नवायके, कीजे ताकी सेव ॥ १ ॥
छहों सु द्रव्य अनादिके, जगत माहि जयवंत ॥
को किस ही कर्त्ता नहीं, यों भाखै भगवंत ॥ २ ॥

अपने गुण परजायमें, वरतै सब निरधार ॥
को काहू मेटै नहीं, यह अनादि विस्तार ॥ ३ ॥
द्रव्य एक आकाश है, गुण जाको अवकास ॥
परमाणी पूरन भर्यो, अंत न वरण्यो जास ॥ ४ ॥
दूजो पुद्गल द्रव्य है, वर्ण गन्ध रस फांस ॥
छाया आकृति तेज द्युति ये सब जास विलास ॥ ५ ॥
तीजो धर्म सुद्रव्य है, चलत सहायी होय ॥
पुद्गल अरु पुन जीवको, शुद्ध स्वभावी जोय ॥ ६ ॥
चौथो द्रव्य अधर्म है, जब थिर तबहिं सहाय ॥
देय जीव पुद्गलनको, लोक हद्दलों भाय ॥ ७ ॥
पंचम काल प्रसिद्ध है, वर्त्तन जासु स्वभाय ॥
समय महूरत जाहि जो, सो कहिये परजाय ॥ ८ ॥
षष्टम चेतन द्रव्य है, दर्शन ज्ञान स्वभाय ॥
परणामी परयोगसों, शुद्ध अशुद्ध कहाय ॥ ९ ॥
है अनादि ब्रह्मण्ड यह, छहों द्रव्यको वास ॥
लोकहद्द इनतें भई, आगें एक अकास ॥ १० ॥
सूर चंद निशदिन फिरै, तारागण बहु संग ॥
यही अनादि स्वभाव है, छिन्न इक होय न भंग ॥ ११ ॥
कहा ज्ञान है नाज पै, ऋतुविन उपजै नाहिं ॥
सबहि अनादि स्वभाव है, समुझ देख मनमाहिं ॥ १२ ॥
बोवत है जिहँ बीजको, उपजत ताको वृक्ष ॥
ताहीको रस बढत है, यहै बात परतक्ष ॥ १३ ॥
को बोवत वन वृक्षको, को सींचत नित जाय ॥
फलफूलनिकर लहलहे, यहै अनादि स्वभाय ॥ १४ ॥

बनस्पती फूलै फलै, ऋतु वसंतके होत ॥
को सिखवत है वृक्षको, इहि दिन करो उदोत ॥ १५ ॥
वर्षत है जल धरनिपर, उपजत सब बनराय ॥
अपने अपने रस बढैं, यहै अनादि स्वभाय ॥ १६ ॥
जो पहिले कहो वृक्ष है, तौ न बनै यह बात ॥
विना बीज उपजै नहीं, यह तो प्रगट विख्यात ॥ १७ ॥
जो पहिले कहो बीज है, बीज भयो किहं ठौर ॥
यहै बात नहिं संभवै, है अनादि की दौर ॥ १८ ॥
को सिखवत है नीरको, नीचेको ढर जाय ॥
अग्निशिखा ऊंची चलै, यहै अनादि स्वभाय ॥ १९ ॥
कहो मीनके बालको, को शिखवत है वीर ! ॥
जन्मत ही तिरबो तहां, महा उदधिके नीर ॥ २० ॥
कौन सिखावत बालको, लागत मा तन धाय ॥
क्षुद्धित पेट भरै सदा, यहै अनादि स्वभाय ॥ २१ ॥
पंछी चलै अकाशमें, कौन सिखावन हार ॥
यहै अनादि स्वभाव है, बन्यों जगत विस्तार ॥ २२ ॥
कौन सांपके वदनमें, विष उपजावत वीर ! ॥
यहै अनादि स्वभाव है, देखो गुण गंभीर ॥ २३ ॥
कहो सिंहके बालको, सूरपनो कब होत ॥
कोटि गजनके पुंजको, मार भगावै पोत ॥ २४ ॥
पृथिवी पानी पौन, पुन अग्नि अन्न आकास ॥
हैं अनादि इहि जगतमें, सर्व द्रव्यको वास ॥ २५ ॥
अपने अपने सहज सब, उपजत विनशत वस्त ॥
है अनादिको जगत यह, इहि परकार समस्त ॥ २६ ॥

चेतन अरु पुद्गल मिले, उपजे कई विकार ॥
तासों विन समुझे कहै, रच्यो किनहिं संसार ॥ २७ ॥
यह संसार अनादिको, यही भांत चल आय ॥
उपजै विनशै थिर रहै, सो सब वस्तु स्वभाय ॥ २८ ॥
को काहू कर्त्ता नहीं करता भुगता आप ॥
यहै जीव अज्ञानमें, करै पुण्य अरु पाप ॥ २९ ॥
पुण्य पाप जग बीज है, याहीतैं विस्तार ॥
जन्म मरन सुखदुख सहै, 'भैया' सब संसार ॥ ३० ॥
पुण्यपापको त्याग जे, भये शुद्ध भगवान ॥
अजरामर पदवी लई, सुख अनंत जिहं थान ॥ ३१ ॥
इहि अनादि बत्तीसिमें, बरनी बात अनादि ॥
'भैया' आप निहारिये, और बात सब बादि ॥ ३२ ॥
सत्रहसै पंचासके, आश्विन पहिला पक्ष ॥
तिथि तेरस रविवारको, कही अनादि प्रत्यक्ष ॥ ३३ ॥

इति अनादिबत्तीसी

अथ समुद्धातस्वरूप लिख्यते ।

दोहा.

चरन जुगल जिनदेवके, वंदत हों कर जोर ॥
जिहं प्रसाद निजसपदा, लहै कर्म दल मोर ॥ १ ॥
समुद्घात जे भांत हैं, तिनको कछु विस्तार ॥
कहूं जिनागम शाखतें, जिय परदेश विचार ॥ २ ॥
उदयकपाय प्रचंड है, निकसत जियपरदेश ॥
दमि दुर्जनकी देहको, बहुरि न करत प्रवेश ॥ ३ ॥

रोगादिक संयोगसों, औषध परसन काज ॥
निकश जाय परदेश जो, आवत करै इलाज ॥ ४ ॥
केवल ज्ञानी आतमा, लोक हद्दलों जाय ॥
परदेशन पूरित करै, उदै न कछु बसाय ॥ ५ ॥
मरन समय जिहं जीवको, समुदघात थित होय ॥
प्रथम परस गती आयकें, वहुर जात है सोय ॥ ६ ॥
षष्टम गुण थानीनको, उपजै कहुं संदेह ॥
प्रश्न करत जिनदेवको, निकसत अद्भुत देह ॥ ७ ॥
सुर मनुष्य कर वैक्रिया, नाना ठौर रमाहिं ॥
सब थानक परदेशजिय, निकसै आवै जाहिं ॥ ८ ॥
तैजस वपु मुनिरायके, निकसत उभय प्रकार ॥
अशुभ शुभनके काजको, समुदघात तिहं वार ॥ ९ ॥
तंतू सब लागे रहै, सुख दुख बेवे आप ॥
देहादिकके प्रसरते, परदेशनिमें व्याप ॥ १० ॥
'भैया' बात अगम्य है, कहन सुननकी नाहिं ॥
जानत है जिन केवली, जे लच्छन जिय पाहिं ॥

इति समुद्घातस्वरूप.

अथ मूढाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

चिन्मूरत चिंता हरन, पूरन वांछित आश ॥
अश्वसेन अंगज निलौ[1], नमू जिनेश्वर पाशे[2] ॥ १ ॥
अपने शुद्ध स्वभावसों, करै न कबहू प्रीति ॥
लगे फिरहिं परद्रव्यसों, यह मूढनकी रीति ॥ २ ॥

---

१ मणि. २ पार्श्वनाथ.

चौपाई (१६ मात्रा)

मूरख कहै ग्रन्थ पहिचानों । सांच झूठको भेद न जानों ॥
जो कुछ लिख्यो सोई मैं मानों । मेरे हृदय यहै ठहरानों ॥ ३॥
धूप मांहिं जो कहै अन्धेरा । सूरज अथवत होय सबेरा ॥
हिंसा करत पुण्य बहु होई । ऐसौ लिख्यो सत्य मुहि सोई ॥४॥
मा कहिकै जो बांझ बखाने । कर्म न होय प्रकृति परमाने ॥
जो मोको उपदेशहि ऐसो । तो मैं कहूं सत्य सब तैसो ॥ ५ ॥
सांच त्याग जो झूठ अलापै । झूठे वचन सत्य कहि थापै ॥
हिरदै सत्य सुन्यों मैं मबही । नैक विवेक धरों नहिं कबही ॥६॥
ऐसे शून्य हिये जे प्रानी । ते कलियुगकी बनी निशानी ॥
तिनको देख दया मन धरियें । वाद विवाद कछू नहिं करिये ॥७

दोहा.

ज्ञानवंत सुन वीनती, परसों नाही काम ॥
अनुभव आतम रामको, भैया[१] लख निजधाम ॥ ८ ॥

इति मूढाष्टकं ।

अथ सम्यक्त्वपचीसिका लिख्यते

सम्यक[२] आदि अनंत गुण, सहित सु आतम राम ॥
प्रगट भये जिंह कर्म तज, ताहि करों परणाम ॥ १ ॥
उपशम वेदक क्षायकी, सम्यक तीन प्रकार ॥
ताहीके नव भेद हैं, कहों ग्रंथ अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई. (१५ मात्रा)

उपसम समकित कहिये सोय । सात प्रकृति उपसम जहं होय ।
दर्शन मोह तीन परकार । अनतानुबंधीकी चार ॥ ३॥

---

१ कवि २ सम्यक वा सम्यग्दर्शन.

क्षय उपसमके तीन प्रकार । तिनके नाम कहूं निरधार ॥
अनंतानुबंधी चौकरी । जिहं जिय शक्ति फोरकें खरी ॥ ४ ॥
महा मिथ्यात मिश्र मिथ्यात । समै[1] प्रकृति उपशम विख्यात ॥
क्षय उपशम समकित तस नाम । अब दूजो बरनों इहि ठाम ॥५॥
अनंतानु जे चार कषाय । महा मिथ्यात्व मिले क्षय जाय ॥
दोय प्रकृति उपशम ह्वै रहै । तासों क्षय उपसम पुनि कहै ॥६॥
क्षय षट् जाहिं प्रकृति जिहं ठाम । समै प्रकृति उपसम तिहं नाम॥
ये क्षय उपशम तिहुं विधि कहे । अब वेदक बरनों सरदहै ॥७॥
जहां चार प्रकृति खपं रहैं । द्वै उपशम इक वेदक लहै ॥
क्षयउपसमवेदक तिहं नाव । कहे ग्रंथमें है बहु ठांव ॥ ८ ॥
पांच खपै उपशम है एक । समैप्रकृति वेदै गहि टेक ॥
दूजो भेद यहै सिरदार । अब तीजैको सुनहु विचार ॥ ९ ॥
छहों प्रकृति जामे क्षय जाहिं । समै मिथ्यात्व मिटै तहं नाहिं॥
क्षायक वेदक लच्छन एए । कहे ग्रंथमें नहिं संदेह ॥ १० ॥
उपशमवेदक कहिये तहां । छह उपशम इक वेदै[2] जहां
क्षायक समकित तब जिय लहै । सातों प्रकृति मूलसों दहै ॥११॥
जब लग ये प्रकृति नहिं जाती । तब लग कहिये जीव मिथ्याती
तिनके दूर कियेतै जीव । सम्यक दृष्टी कहे सदीव ॥ १२ ॥
उनकी थिति पूरी जब होय । तब वे खिरैं फिरैं नहिं सोय ॥
खिरकें निजगुण परगट लहै । सो गुण काल अनन्तो रहै ॥१३॥
जे गुण प्रगट भये तज कर्म । ते सब जानो जियको धर्म ॥
जैसो प्रभु देखो भगवान । तैसो है इनके सरधान ॥ १४ ॥
सम्यकवंत जीव बैरागी । भावन सों सबही का त्यागी ॥
निव्रत पक्ष करै व्रत नाही । अप्रत्याख्यान उदै घटमाही ॥१५

(१) सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व (२) उदयरूप.

मनवचकाय जोग त्रिक डोलै । लखै आपनी कर्म कलोलैं ॥
जितनी कर्म प्रकृति क्षय गई । तितनी कछु निर्मलता भई ॥१६
प्रकटी शक्ति ताहि पहिचानै । अरु जिनवरकी आज्ञा मानै ।
अक्षर एक विरोधै कोय । ताको भ्रमन वहुत जग होय ॥१७॥
तातैं व्रत पचखान न करै । जिनवरकी आज्ञासों डरै ॥
लेकैं व्रत जो भंजै जीव । ते महा पापी कहे सदीव ॥ १८ ॥
अप्रत्याख्यान जाय नहिं जहां । व्रत पचखान पलै नहिं तहां ।
सम्यकदृष्टी परम सुजान । धरहिं शुद्ध अनुभवको ध्यान ॥१९॥
अनुभवमें आतमरस लसै । आतमरसमें शिव सुख बसै ॥
आतम ध्यान धरयो जिनदेव । तातैं भये मुक्ति स्वयमेव ॥२०॥
मुक्ति होनको बीज निहार । आतम ध्यान धरै अरिटार ॥
ज्यों ज्यों कर्म विलयको जाहिं । त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहिं ॥२१
प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कर । चकचूर चढहिं गुण थान ॥
आगें महा ध्यान धर धीर । कर्म शत्रु जीतै बल वीर ॥२२॥
प्रगट करै निज केवल ज्ञान । सुख अनंत विलसै तिहं थान ॥
लोक अलोक सबहि झलकंत । तातैं सब भाखै भगवंत ॥२३॥
चारों कर्म अघाती हार । तब वे पहुंचै मुकति मंझार ॥
काल अनंतहि ध्रुव ह्वै रहै । तास चरन भवि वंदन कहै ॥२४॥

सुख अनंत की नीव यह, सम्यक दर्शन जान ॥
याहीतें शिवपद मिलै 'भैया' लेहु पिछान ॥२५॥
सत्रहसै पंचासके, मारगसिर सित पक्ष ॥
तिथि लच्छन[1] मुनिधर्मकी मृगपति[2] वार प्रत्यक्ष ॥२६॥

इति सम्यक्त्वपचीसिका ।

---

१ दशमीं. २ सोमवार.

अथ वैराग्यपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ॥
मन वच शीस नवायकै, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ॥
मूल दुहुनको यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥ २ ॥
क्रोधमान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ॥
येही तेरे शत्रु है, समुझो आतमराम ॥ ३ ॥
इनही च्यारों शत्रुको, जो जीतै जगमाहिं ॥
सो पावहि पथ मोक्षको, यामें धोखो नाहिं ॥ ४ ॥
जा लच्छीके काज तू, खोवत है निजधर्म ॥
सो लच्छी संग ना चलै, काहे भूलत भर्म ॥ ५ ॥
जा कुटुंबके हेत तू, करत अनेक उपाय ॥
सो कुटंब अगनी लगा, तोकों देत जराय ॥ ६ ॥
पोपत है जा देहको, जोग त्रिविधिके लाय ॥
सो तोकों छिन एकमें, दगा देय खिर जाय ॥ ७ ॥
लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहिं संग ॥
काढ़ काढ़ सुजनहि करै, देख जगतके रंग ॥ ८ ॥
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ॥
विषय सुखनके कारनें, सर्वस चले गमाय ॥ ९ ॥
जगहिं फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ॥
चेतन अब चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥ १० ॥
ऐसें मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ॥
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ११ ॥

पीतो सुधा स्वभावकी, जी ! तो कहूं सुनाय ॥
तू रीतो क्यों जातु है, बीतो नरभव जाय ॥ १२ ॥
मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ॥
भ्रष्ट करत है सिष्टको, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट ॥ १३ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेषको संग ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, शिव सुख होय अभंग ॥ १४ ॥
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री हूं पुनि नाहिं ॥
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानंद हूं माहिं ॥ १५ ॥
जो देखै इहि नैनसों, सो सब विनस्यो जाय ॥
तासों जो अपनो कहै, सो मूरख शिरराय ॥ १६ ॥
पुद्गलको जो रूप है, उपजै विनसै सोय ॥
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥ १७ ॥
देख अवस्था गर्भकी कौन कौन दुख होंहि ॥
बहुर मगन संसारमें, सो लानत है तोहि ॥ १८ ॥
अधो शीस ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ॥
थोरे दिनकी बात यह, भूलि जात संसार ॥ १९ ॥
अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रैन दिनाको वास ॥
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥ २० ॥
रोगादिक पीडित रहै, महाकष्ट जो होय ॥
तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥ २१ ॥
मरन समय विललात है, कोऊ लेहु बचाय ॥
जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछु बसाय ॥ २२ ॥
फिर नरभव मिलियो नहीं, किये हु कोट उपाय ॥
तातैं बेगहि चेत हू, अहो जगतके राय ॥ २३ ॥

भैयाकी यह वीनती, चेतन चितहिं विचार ॥
ज्ञानदर्श चारित्रमें, आपो लेहु निहार ॥ २४ ॥
एक सात पंचासको, संवत्सर सुखकार ॥
पक्ष शुकल तिथि धर्मकी, जै जै निशिपतिवार ॥ २५ ॥

इति वैराग्यपचीसी.

अथ परमात्माछत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीश ॥
परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि शीस ॥ १ ॥
एक जु चेतन द्रव्य है, तिनमें तीन प्रकार ॥
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पदसार ॥ २ ॥
बहिरातम ताको कहै, लखै न ब्रह्म स्वरूप ॥
मग्न रहै परद्रव्यमें, मिथ्यावंत अनूप ॥ ३ ॥
अंतर आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय ॥
चौथे अरु पुनि बारवें गुणथानक लों सोय ॥ ४ ॥
परमातम पद ब्रह्मको, प्रगट्यो शुद्ध स्वभाय ॥
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय ॥ ५ ॥
बहिरातमास्वभाव तज, अंतरातमा होय ॥
परमातम पद भजत है, परमातम ह्वै सोय ॥ ६ ॥
परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय ॥
परमातमको ध्यावते, यह परमातम होय ॥ ७ ॥
परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ॥
परसों भिन्न निहारिये, जोई अलख सोइ ईश ॥ ८ ॥

जो परमातम सिद्धमें, सो ही या तन माहिं ॥
मोह मैल दृग लगि रह्यो, तातैं सूझै नाहिं ॥ ९ ॥
मोह मैल रागादिको, जा छिन कीजे नाश ॥
ता छिन यह परमातमा, आपहिं लहै प्रकाश ॥ १० ॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध ॥
बीचकी दुविधा मिटगई, प्रगट भई निज रिद्ध ॥ ११ ॥
मैंहि सिद्ध परमातमा, मैं ही आतमराम ॥
मैं ही ज्ञाता ज्ञेयको, चेतन मेरो नाम ॥ १२ ॥
मैं अनंत सुखको धनी, सुखमय मोर स्वभाय ॥
अविनाशी आनंदमय, सो हौं त्रिभुवन राय ॥ १३ ॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान ॥
गुण अनंतकर संजुगत, चिदानंद भगवान ॥ १४ ॥
जैसो शिव खेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतें, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ १५ ॥
कर्मनके संयोगतें, भये तीन परकार ॥
एक आतमा द्रव्यको, कर्म नचावन हार ॥ १६ ॥
कर्म संघाती आदिके, जोर न कछू बसाय ॥
पाई कला विवेककी, राग द्वेष विन जाय ॥ १७ ॥
कर्मनकी जर राग है, राग जरे जर जाय ॥
प्रगट होत परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥ १८ ॥
काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होनके काज ॥
राग द्वेष को त्यागदे, 'भैया' सुगम इलाज ॥ १९ ॥
परमातम पदको धनी, रंक भयो विललाय ॥
राग द्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय ॥ २० ॥

राग द्वेषकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच ॥
परमातम पद ढांकके, तुमहिं किये तिरजंच ॥२१॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं ॥
राग द्वेषके जागते, ये सब सोये जांहिं ॥२२॥
राग द्वेषके नाशतें, परमातम परकाश ॥
राग द्वेषके भासतें, परमातम पद नाश ॥२३॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार ॥
देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार ॥२४॥
लाख बातकी बात यह, तोकों दई बताय ॥
जो परमातम पद चहैं, राग द्वेष तज भाय ॥२५॥
राग द्वेषके त्याग विन, परमातम पद नाहिं ॥
कोटिकोटि जपतप करो, सबहि अकारथ जाहिं ॥२६॥
दोष आतमाको यहै, राग द्वेषके संग ॥
जैसें पास मजीठके, वस्त्र और ही रंग ॥२७॥
तैसें आतम द्रव्यको, राग द्वेषके पास ॥
कर्म रंग लागत रहै, कैसे लहै प्रकाश ॥२८॥
इन कर्मनको जीतिवो, कठिन बात है मीत ॥
जड खोदै विन नहिं मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥२९॥
ल[1]ल्लोपत्तोके किये, ये मिटवेके नाहिं ॥
ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं ॥३०॥
ज्यों दारूके गंजे[2]को, नर नहिं सकै उठाय ॥
तनक आग संयोगतें, छिन इकमें उडि जाय ॥३१॥
देह सहित परमातमा, यह अचरजकी बात ॥

(१) टालटूल. (२) ढेरको.

राग द्वेषके त्यागतैं, कर्म शक्ति जर जात ॥२२॥
परमातमके भेद द्वय, निकल सकल परमान ॥
सुख अनंतमें एकसे, कहिवेको द्वय थान ॥२३॥
भैया वह परमातमा, सो ही तुममें आहि ॥
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥२४॥
राग द्वेषको त्यागके, धर परमातम ध्यान ॥
ज्यों पावे सुख संपदा, भैया इम कल्यान ॥२५॥
संवत विक्रम भूपको, सत्रहसे पंचास ॥
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥२६॥

इति परमात्माछत्तीसी ।

अथ नाटकपचीसी लिख्यते ।

कर्म नाट नृत तोरके, भये जगत जिन देव ॥
नाम निरंजन पद लह्यो, करूं त्रिविधि तिहिं सेव ॥१॥
कर्मनके नाटक नटत, जीव जगतके माहिं ॥
तिनके कछु लच्छन कहूं, जिन आगमकी छाहिं ॥२॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावनहार ॥
नाचत है जिय स्वांगधर, करकर नृत्य अपार ॥३॥
नाचत है जिय जगतमें, नाना स्वांग बनाय ॥
देव नर्क तिरजंचमें, अरु मनुष्य गति आय ॥४॥
स्वांग धरै जब देवको, मानत है निज देव ॥
वही स्वांग नाचत रहै, ये अज्ञानकी टेव ॥५॥
औरनसों औरहि कहै, आप कहै हम देव ॥
गहिके स्वांग शरीरको, नाचत है स्वयमेव ॥६॥

भये नरकमें नारकी, लागे करन पुकार ॥
छेदन भेदन दुख सहै, यही नाच निरधार ॥ ७ ॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होय ॥
यहै स्वांग निर्वाह है, भूलपरो मति कोय ॥ ८ ॥
नित निगोदके स्वांगकी, आदि न जानै जीव ॥
नाचत है चिरकालके, भव्य अभव्य सदीव ॥ ९ ॥
इत्तर नाम निगोद है, तहां बसत जे हंस ॥
ते सब स्वांगहि खेलकै, बहुर धर्यो यह बंस ॥ १० ॥
उछरि उछरिकें गिरपरै, ते आवै इहि ठौर ॥
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यहै स्वांग शिरमौर ॥ ११ ॥
कबहू पृथिवी कायमें, कबहू अग्नि स्वरूप ॥
कबहू पानी पौन है, नाचत स्वांग अनूप ॥ १२ ॥
वनस्पतीके भेद बहु, स्वास अठारह बार ॥
तामें नाच्यो जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥ १३ ॥
विकलत्रयके स्वांगमें, नाचे चेतन राय ॥
उसीरूप है परणये, वरनें कैसें जाय ॥ १४ ॥
उपजे आय मनुष्यमें, धरै पंचेंद्री स्वांग ॥
अष्ट मदनि मातो रहै, मातो खाई भांग ॥ १५ ॥
पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भये रंक ॥
सुख दुख आपहि मानिकें, नाचत फिरे निशंक ॥ १६ ॥
नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाहिं ॥
चेतनसों परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाहिं ॥ १७ ॥
ऐसे काल अनंत हुव, चेतन नाचत तोहि ॥
अजहू आप सभारिये, सावधान किन ! होहि ॥ १८ ॥

सावधान जे जिय भये, ते पहुंचे शिव लोक ॥
नाचभाव सब त्यागके, विलसत सुखके थोक ॥ १९ ॥
नाचत है जग जीव जे, नाना स्वांग रमंत ॥
देखत है तिह नृत्यको, सुख अनंत विलसंत ॥ २० ॥
जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहिं ॥
नाचनमें सब दुःख है, सुख निजदेखन माहिं ॥ २१ ॥
नाटकमें सब नृत्य है, सारवस्तु कछु नाहिं ॥
ताहि विलोको कौन है, नाचन हारे माहिं ॥ २२ ॥
देखै ताको देखिये, जानै ताको जान ॥
जो तोको शिव चाहिये, तो ताको पहचान ॥ २३ ॥
प्रगट होत परमातमा, ज्ञान दृष्टिके देत ॥
लोकालोक प्रमान सब, छिन इकमें लखलेत ॥ २४ ॥
'भैया' नाटक कर्मतें, नाचत सब संसार ॥
नाटक तज न्यारे भये. ते पहुचे भव पार ॥ २५ ॥

इति नाटकपचीसी. ।

अथ उपादाननिमित्तका संवाद लिख्यते ।

दोहा

पाद प्रणामि जिनदेवके, एक उक्ति उपजाय ॥
उपादान अरु निमित्तको, कहु संवाद बनाय ॥ १ ॥
पूछत है कोऊ तहां. उपादान किह नाम ॥
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके है इह ठाम ॥ २ ॥
उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव ॥
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव ॥ ३ ॥

निमित कहै मोको सबै, जानत है जग लोय ॥
तेरो नाव न जानहीं, उपादान को होय ॥ ४ ॥
उपादान कहै रे निमित, तू कहा करै गुमान ॥
मोकों जाने जीव वे, जो है सम्यकवान । ५ ॥
कहै जीव सब जगतके, जो निमित्त सोइ होय ॥
उपादानकी बातको, पूछै नाहीं कोय ॥ ६ ॥
उपादान विन निमित तू, कर न सकै इक काज ॥
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज ॥ ७ ॥
देव जिनेश्वर गुरु यती, अरु जिन आगम सार ॥
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार ॥ ८ ॥
यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनंती बार ॥
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यो संसार ॥ ९ ॥
कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय ॥
सो क्षायक सम्यक लहै, यह निमित्तबल जोय ॥ १० ॥
केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय ॥
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय ॥ ११ ॥
हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं ॥
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं ॥ १२ ॥
हिंसामें उपयोग जिहं, रहै ब्रह्मके राच ॥
तेई नर्कमें जात है, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥ १३ ॥
दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय ॥
जो निमित्त झूंठो कहो, यह क्यों मानै लोय ॥ १४ ॥
दया दान पूजा भली, जगतमाहिं सुखकार ॥
जहँ अनुभवको आचरन, तहँ यह बंध विचार ॥ १५ ॥

यह तो बात प्रसिद्ध है, शोच देख उरमांहिं ॥
नरदेहीके निमितबिन, जिय क्यों मुक्ति न जांहिं ॥१६॥
देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपर जात ॥
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात ॥ १७ ॥
उपादान सब जीवपै, रोकन हारो कौन ॥
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, बिन निमित्तके होन ॥ १८ ॥
उपादान सु अनादिको, उलट रह्यो जगमाहिं ॥
सुलटतही सूधे चलै, सिद्ध लोकको जाहिं ॥ १९ ॥
कहुं अनादि बिन निमितही, उलट रह्यो उपयोग ॥
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग ॥ २० ॥
उपादान कहै रे निमित, हमपै कही न जाय ॥
ऐसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवन राय ॥ २१ ॥
जो देख्यो भगवान ने, सोही सांचो आहि ॥
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि ॥ २१ ॥
उपादान कहै वह बली, जाको नाश न होय ॥
जो उपजत बिनशत रहै, बली कहांतें सोय ॥ २३ ॥
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार ॥
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार ॥ २४ ॥
जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं ॥
तो बासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥ २५ ॥
सूर सोम मणि आगिनके, निमित लखै ये नैन ॥
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन ॥ २६ ॥
सूर सोम मणि अग्नि जो, करै अनेक प्रकाश ॥
नैन शक्ति बिन ना लखै, अन्धकार सम भास ॥ २७ ॥

कहै निमित्त वे जीव को? मो विन जगके माहिं ॥
सबै हमारे वश परे हम विन मुक्ति न जाहिं ॥ २८ ॥
उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल ॥
ताको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल ॥ २९ ॥
कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसें शिव जात ॥
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात । ३० ॥
पंचमहाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार ॥
परको निमित्त खपायके तब पहूचें भवपार ॥ ३१ ॥
कहै निमित्त जग मैं बडो मोतैं बडो न कोय ॥
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय ॥ ३२ ॥
उपादान कहै तू कहा, चहुं गतिमें ले जाय ॥
तो प्रसादतैं जीव सब, दुखी होहिं रे भाय ॥ ३३ ॥
कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय ॥
सुखी कौन तैं होत है, ताको देहु वताय ॥ ३४ ॥
जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं ॥
ये सुख, दुखके मूल है, सुख अविनाशी माहिं । ३५ ॥
अविनाशी घट घट बसै, सुख क्यों विलसत नाहिं? ॥
शुभनिमित्तके योगविन, परे परे विललाहिं । ३६ ॥
शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार ॥
पै इक सम्यक दर्श विन, भटकत फिरचो गंवार ॥३७॥
सम्यक दर्श भये कहा, त्वरित मुकतिमे जाहि ॥
आगें ध्यान निमित्त हैं, ते शिवको पहुंचाहिं ॥ ३८ ॥
छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति ॥
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति ॥ ३९ ॥

तब निमित्त हारयो तहां, अब नहिं जोर बसाय ॥
उपादान शिव लोकमें, पहुंच्यो कर्म खपाय ॥ ४० ॥
उपादान जीत्यो तहां, निजबल कर परकास ॥
सुख अनत ध्रुव भोगवै, अंत न बरन्यो तास ॥ ४१ ॥
उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर ॥
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुंचे भवतीर ॥ ४२ ॥
भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे बरनी जाय ॥
वचनअगोचर वस्तु है, कहिबो वचन बनाय ॥ ४३ ॥
उपादान अरु निमितको, सरस बन्यो संवाद ॥
समदृष्टीको सुगम है, मूरखको बकवाद ॥ ४४ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद ॥
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥ ४५ ॥
नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको बास ॥
तिहं थानक रचनाकरी, 'भैया' स्वमति प्रकास ॥ ४६ ॥
संवत विक्रम भूप को, सत्रहसै पंचास ॥
फाल्गुण पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश ॥ ४७ ॥

इति उपादाननिमित्तसंवाद ।

अथ चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला लिख्यते ।

दोहा

बीस चार जगदीशको, बंदौं शीस नवाय ।
कहूं तास जयमालिका, नामकथन गुण गाय ॥ १ ॥

पद्धरिछन्द (१६ मात्रा).

जय जय प्रभु ऋषभ जिनेन्द्रदेव । जय जय त्रिभुवनपति

करहिं सेव ॥ जय जय श्री अजित अनंत जोर । जय जय जिहं कर्म हरे कठोर ॥ २ ॥ जय जय प्रभु संभव शिवसरूप । जय जय शिवनायक गुण अनूप ॥ जय जय अभिनंदन निर्विकार । जय जय जिहिं कर्म किये निवार ॥ ३ ॥ जय जय श्री सुमति सुमति प्रकाश । जय जय सब कर्म निकर्म नाश ॥ जय जय पद्मप्रभ पद्म जेम । जय जय रागादि अलिप्त नेम ॥ ४ ॥ जय जय जिनदेव सुपार्श्व पास । जय जय गुणपुज कहै निवास ॥ जय जय चंद्रप्रभ चन्द्रकांति । जय जय तिहुं पुरजन हरन भ्रांति ॥ ५ ॥ जय जय पुफदंत महंत देव । जय जय षट द्रव्यनि कहन भेव ॥ जय, जय जिन शीतल शीलमूल । जय जय मनमथ मृग शारदूल ॥ ६ ॥ जय जय श्रेयांस अनंत बच्छ । जय जय परमेश्वर हो प्रतच्छ ॥ जय जय श्री जिनवर वासुपूज । जय जय पूज्यनके पूज्य तूजं । ७ ॥ जय जय प्रभु विमल विमल महंत । जय जय सुख दायक हो अनंत ॥ जय जय जिनवर श्री अनंत नाथ । जय जय शिवरमणी ग्रहण हाथ ॥ ८ ॥

जय जय श्री धर्म जिनेन्द्र धर्म । जय जय जिन निश्चल करन मर्म ॥ जय जय श्रीजिनवर शांतिदेव । जय जय चक्री तीर्थंकरेव ॥ ९ ॥ जय जय श्रीकुंथु कृपानिधान । जय जय मिथ्यातमहरन भान ॥ जय जय अरिजीतन अरहनाथ । जय जय भवि जीवन मुक्ति साथ ॥ १० ॥ जय जय मलि नाथ महा अभीत । जय जय जिन मोहनरेन्द्र जीत ॥ जय जग मुनिसुव्रत तुम सुज्ञान । जय जय त्रिभुवनमे दीप भान ॥ ११ ॥ जय जय नमि-

(१) तू ही.

नाथ निवास सुक्ख । जय जय तिहुं भवननि हरन दुःख ॥ जय जय श्री नेम कुमारचंद । जय जय अज्ञानतमके निकंद ॥१२॥ जय जय श्रीपार्श्व प्रसिद्ध नाम । जय जय भविदायक मुक्तिधाम ॥ जय जय जिनवर श्रीवर्द्धमान । जय जय अनंत सुख के निधान ॥ १३ ॥ जय जय अतीत जिन भये जेह । जय जय सु अनागत ह्वै हैं तेह ॥ जय जय जिन हैं जे विद्यमान ॥ जय जय तिन वंदौं धर सु ध्यान ॥ १४॥ जय जय जिनप्रतिमा जिन स्वरूप । जय जयसु अनंत चतुष्ट भूप ॥ जय जय मन वच निज सीसनाय । जय जय जय 'भैया' नमै सुभाय ॥ १५ ॥

घत्ता.

जिनरूप निहारे आप विचारे. फेर न रंचक भेद कहे ॥
'भैया' इम वंदै ते चिरनंदै सुख अनंत निजमाहिं लहै ॥१६॥

दोहा.

रागभाव छूट्यो नहीं, मिट्यो न अंतर दोख ॥
संतति बाढै बंधकी, होय कहांसों मोख ॥ १७ ॥

इति चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला

अथ पंचेन्द्रियसंवाद लिख्यते ।

दोहा.

प्रथम प्रणमि जिनदेवको, बहुरि प्रणमि शिवराय ॥
साधु सकलके चरनको, प्रणमों सीस नवाय ॥ १ ॥
नमहुं जिनेश्वर वैनको जगत जीव सुखकार ॥
जस प्रसाद घटपट खुलै लहिये बुद्धि अपार ॥ २ ॥

इक दिन इक उद्यानमें, बैठे श्री मुनिराज ॥
धर्म देशना देत हैं, भवि जीवनके काज ॥ ३ ॥
समदृष्टी श्रावक तहां और मिले बहु लोक ॥
विद्याधर क्रीडा करत, आय गये बहु थोक ॥ ४ ॥
चली बात व्याख्यानमें, पांचों इन्द्रिय दुष्ट ॥
त्यों त्यों ये दुख देत है, ज्यों ज्यों कीजे पुष्ट ॥ ५ ॥
विद्याधर बोले तहां, कर इन्द्रिनको पक्ष ॥
स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो बात प्रत्यक्ष ॥ ६ ॥
हमहीतैं सब जगलखै, यह चेतन यह नाउं ॥
इक इन्द्रिय आदिक सबै, पंच कहे जिह ठाउं ॥ ७ ॥
हमतै जप तप होत है, हमतै क्रिया अनेक ॥
हमहीतै संयम पलै, हम विन होय न एक ॥ ८ ॥
रागी द्वेषी होय जिय, दोष हमहि किम देहु ॥
न्याव हमारो कीजिये, यह विनती सुन लेहु ॥ ९ ॥
हम तीर्थंकर देव पैं, पांचों है परतच्छ ॥
कहो मुक्ति क्यों जात है, निजभावन कर स्वच्छ ॥१०॥
स्वामि कहै तुम पांच हो, तुममें को सिरदार ॥
तिनसों चर्चा कीजिये, कहो अर्थ निरधार ॥ ११ ॥
नाक कान नैना कहै, रसना फरस विख्यात ॥
हम काहू रोकैं नहीं, मुक्ति लोकको जात ॥ १२ ॥
नाक कहै प्रभु मै बडो, मोतै बडो न कोय ॥
तीन लोक रक्षा करै, नाक कमी जिन होय ॥ १३ ॥

(१) मन

नाक रहेतैं सब रह्यो, नाक गये सब जाय ॥
नाक बरोबर जगतमें, और न बडो कहाय ॥ १४ ॥
प्रथम वदन पर देखिये, नाक नवल आकार ॥
सुंदर महा सुहावनो, जोहै लोक अपार ॥ १५ ॥
सीस नवत जगदीसको, प्रथम नवत है नाक ॥
तोहि तिलक विराजतो, सत्यारथ जग वाक ॥ १६ ॥

ढाल "दान सुपातन दीजिये" एदेशी भाषा गुजराती.

नाक कहै जग हूं वडो, वात सुनो सब कोईरे ॥
नाक रहे पत लोकमें, नाक गये पत खोई रे, नाक० १७॥
नाक रखनके कारणे, बाहूबलि बलवतौ रे ॥
देश तज्यो दीक्षा ग्रहै, पण न नम्यों चक्रवती रे, नाक० १८॥
नाक रहनके कारनै, रामचन्द्र जुध कीधो रे ॥
सीता आणी बलकरी, बलि ते संयम लीधो रे, नाक० १९॥
नाक राखण सीता सती, अगनी कुंडमें पैठी रे ॥
सिंहासन देवन रच्यो, तिह ऊपर जा बैठी रे, नाक० २०॥
दशार्णभद्र महा मुनि, नाक राखण व्रत लीधो रे ॥
इन्द्र नम्यो चरणे तिहां, मान सकल तज दीधोरे, नाक० २१
सगर थयो सौरों धणी, छलथी दीक्षा लीधीरे ॥
नाक तणी लज्जा करी, फिर नवि मनमा कीधीरे, नाक० २२
अभय कुंवर श्रेणिक तणो, बेटो आज्ञाकारीरे ॥
तूंकारो तातहि दियो, ततछिन दीक्षा धारीरे नाक० २३॥
नाम कहूं केता तणां जीव तरया जगमाहीरे ॥
नाक तणे परसादथी शिव संपति विलसाहीरे, नाक० २४॥

(१) टल्लत

सुख विलसै संसारना, ते सहु मुझ परसादेरे ॥
नाना वृक्ष सुगंधता, नाक सकल आस्वादेरे, नाक कहै० ॥२५॥
तीर्थंकर त्रिभुवन धणी, तेहना तनमां बासोरे ॥
परम सुगंधो घणी लसै, ते सुख नाक निवासोरे, नाक कहै० ॥२६
और सुगंधो अनेक छै, ते सब नाकज जाणेरे ॥
आनंदमां सुख भोगवे, भैया एम बखाणेरे, नाक कहै० ॥ २७ ॥

दोहा.

कान कहे रे नाक सुन, करै गुमान ॥
जो चाकर आगें चलै, तो नहिं भूप समान ॥ २८ ॥
नाक सुरनि पानी झरै, बहै सलेष्म अपार ॥
गूंघनि कर पूरित रहै, लाजै नही गॅवार ॥ २९ ॥
तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज ॥
मूंदे तुह दुर्गंधमें, तऊ न आवै लाज ॥ ३० ॥
वृषभ ऊंट नारी निरख, और जीव जग माहिं ॥
जित तित तोको छेदिये, तौऊ लजानो नाहिं ॥ ३१ ॥
कान कहे जिन बैनको, सुनै सदाचित लाय ॥
जस प्रसाद इह जीवको, सम्यग्दर्शन थाय ॥ ३२ ॥
कानन कुंडल झलकतो, मणि मुक्ता फल सार ॥
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार ॥ ३३ ॥
सातों सुरको गायबो, अद्भुत सुखमय स्वाद ॥
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद ॥ ३४ ॥
कानन सुन श्रावक भये, कानन सुनि मुनिराज ॥
कान सुनहि गुण द्रव्यके, कान बड़े शिरताज ॥ ३५ ॥

राग काफी धमालमें.

काननसुन ध्यानन ध्याइये हो, चिन्मूरत चेतन पाइये हो, कानन० टेक।

कानन सरभर को करे हो, कान बड़े सिरदार ॥
छहों द्रव्यके गुण सुणै हो, जानैं सकल विचार, कानन०॥ ३६ ॥
संघ चतुर्विध सब तरे हो, कानन सुनि जिन बैन ॥
निज आतम सुख भोगवै हो, पावत शिवपद ऐन, कानन०॥३७॥
द्वादशांग बानी सुनै हो, काननके परसाद ॥
गणधर तो गुरुवा कह्या हो, द्रव्य सूत्र सब याद, कानन० ॥ ३८ ॥
कानन सुनि भरतेश्वरे हो, प्रभुको उपज्यो ज्ञान ॥
कियो महोच्छव हरखसें हो, पायो है पद निर्वान, कानन० ॥३९॥
चिकट बैन धन्ना सुने हो, निकस्यो तज आवास ॥
दीक्षा गह किरिया करी हो, पायो शिवगति वास, कानन०॥४०॥
साधु अनाथीसों सुन्यो हो, श्रेणिक जीव विचार ॥
क्षायक सम्यक तब लह्यो हो, पावैगो भवदधि पार, कानन० ॥४१॥
नेमनाथवानी सुनी हो, लीनो संयम भार ॥
ते द्वारिकके दाहसों हो, उबरे हैं जीव अपार, कानन० ॥ ४२ ॥
पार्श्वनाथके बैन सुने हो, महामंत्र नवकार ॥
धरणेंधर पदमावती हो, भये हैं जु तिहि बार, कानन० ॥ ४३ ॥
कानन सुनि कानन गये हो, भूपति तज बहु राज ॥
काज सवारे आपने हो, केवलि ज्ञान उपाज, कानन० ॥ ४४ ॥
जिनवानी कानन सुने हो, जीव तरे जग मांहि ॥
नाम कहां लों, लीजिये हो, 'भैया' जे शिवपुर जांहि, कान० ४५

दोहा.

आंख कहैरे कान तू, इस्यो करै अहंकार ॥
मैलनिकर मूंद्यो रहै, लाजै नहीं लगार ॥ ४६ ॥

भली बुरी सुनतो रहै, तोरै तुरत सनेह ॥
तो सम दुष्ट न दूसरो, धारी ऐसी देह ॥ ४७ ॥
दुष्टवचन सुन तो जरै, महा क्रोध उपजंत ॥
तो प्रसादतै जीव बहु, नरकन जाय परंत ॥ ४८ ॥
पहिले तुमको बेधिये, नरनारीके कान ॥
तोहू नहीं लजात है, बहुर धरै अभिमान ॥ ४९ ॥
काननकी बातैं सुनी, सांची झूंठी होय ॥
आंखिन देखी बात जो, तामें फेर न कोय ॥ ५० ॥
इन आंखिनसों देखिये, तीर्थंकरको रूप ॥
सुख असंख्य हिरदै लसै, सो जानै चिद्रूप ॥ ५१ ॥
आंखिन लख रक्षा करै, उपजै पुण्य अपार ॥
आंखिनके परसादसों, सुखी होत संसार ॥ ५२ ॥
आंखिनतैं सब देखिये, तात मात सुत भ्रात ॥
देव गुरू अरु ग्रन्थ सब, आंखिनतैं विख्यात ॥ ५३ ॥

ढाल—"बनमालीके बाग चंपो मौलि रह्योरी" ए देशी ।

आंखिनके परसाद, देखे लोक सबैरी ॥
आवै निजपद याद, प्रतिमा पेखत बेरी, आंखनके० ॥५४ ।
देखूं दृग सिद्धान्त, ग्रन्थ अनेक कह्यारी ॥
जे भाख्या भगवंत, दर्वित तेह लह्यारी, आंखन० ॥ ५५ ॥
समवशरणकी रिद्धि, देखत हर्ष घनोरी ॥
प्रभु दर्शन फलसिद्धि, नाटक कौन गिनोरी, आंखन० ।५६
जिन मंदिर जयकार, प्रतिमा परम बनीरी ॥
देखत हर्ष अपार, थुति नहिं जाहि भनीरी, आंखन० ।५७

ईर्या समिति निहार, साधु चलै जु भलेरी ॥
ते पावै शिवनार, सुखकी कीर्ति फलेरी, आंखिन० ।५८।
आंखिन बिंब निहार, सम्यक शुद्ध लह्योरी ॥
गोत तीर्थंकर धार, रावन नाम कह्योरी, आंखिन० ॥ ५९ ॥
चारों परतेक बुद्ध. देखत भाव फिरेरी ॥
लहि निज आतमशुद्ध, भवजल वेग तिरेरी आंखिन० ॥ ६० ॥
पूरव भव अहार, देते दृष्टि परयोरी ॥
इहि चौवीस सार, अंम कुमार जु तरयोरी, आंखिन० ॥ ६१ ॥
बाघिनि साधु विदार, दंतहि दृष्ट धरीरी ॥
पूरव भवहि निहार, त्यागन देह करीरी, आंखिन० ॥ ६२ ॥
शालीभद्र सुकुमार, श्रेणिक दृष्टि परयोरी ॥
गहि संयमको भार आतम काज करयोरी, आंखिन० ॥ ६३ ॥
देख्यो शुद्ध अकाज, दीक्षा वेग गहेरी ॥
पांडव तज सब राज, निज निधि वेग लहेरी आंखन० ॥६४॥
कहूं कहांलों नाम, जीव अनेक तरेरी ॥
भैया शिवपुर ठाम, आंखितैं जाय वरेरी, आंखन ॥ ६५ ॥

दोहा.

जीभ कहै रे आंखि तुम, काहे गर्व करांहि ॥
काजल कर जो रंगिये, तो हू नाहिं लजांहि ॥ ६६ ॥
कायर ज्यों डरती रहै, धीरज नहीं लगार ॥
बातबातमें रोयदे, बोलै गर्व अपार ॥ ६७ ॥
जहां तहां लागत फिरै देख सलौनो रूप ॥
तेरे ही परसाद तैं, दुख पावै चिद्रूप ॥ ६८ ॥

कहा कहूं दृगदोषको, मोपैं कहे न जाहिं ॥
देख विनाशी वस्तुको, बहुर तहां ललचाहिं ॥ ६९ ॥
जीभ कहै मोतैं सबै, जीवत है संसार ॥
षटरस भुंजों स्वाद ले, पालों सब परिवार ॥ ७० ॥
मोबिन आंखन खुल सकैं, कान सुनैं नहिं वैन ॥
नाक न सूंघै बासको, मो विन कहीं न चैन ॥ ७१ ॥
मंत्र जपत इह जीभसों, आवत सुरनर धाय ॥
किंकर ह्वै सेवा करैं, जीभहिके सुपसाय ॥ ७२ ॥
जीभहितैं जंपत रहै, जगत जीव जिन नाम ॥
जसु प्रसादतैं सुख लहै, पावैं उत्तम ठाम ॥ ७३ ॥

ढाल—" रे जीया तो विन घडी रे छ मास " ए देशी ।

यतीश्वर जीभ बडी संसार, जपै पंच नवकार,
जतीश्वर० ॥ टेक ॥

द्वादशांगवाणी श्रवैजी, बोलै बचन रसाल ॥
अर्थ कहै सूत्रन सबैजी, सिखवै धर्म विशाल, यतीश्वर० ॥७४॥
दुरजनतैं सज्जन करैजी, बोलत मीठे बोल ॥
ऐसी कला न औरपैंजी, कौन आंख किह तोल, यतीश्वर०॥७५॥
जीभहितैं सब जीतियेजी, जीभहितैं सब हार ॥
जीभहितैं सब जीवकेजी, कीजतु है उपकार, यतीश्वर० ॥७६॥
जीभहितैं गणधर भयेजी, भव्यनि पंथ दिखाय ॥
आपन वे शिवपुर गयेजी, कर्मकलंक खपाय, यतीश्वर० ॥७७॥
जीभहितैं उवझायजूजी, पावैं पद परधान ॥
जीभहितैं समकित लह्यो जू, परदेशी परवान, यतीश्वर०॥७८॥

मथुरा नगरीमें हुवोजी, जंबूनाम कुमार ॥
कहिकें कथा सुहावनीजी, प्रति बोध्यो परिवार, यतीश्वर० ॥७९॥
रावनसों विरचे भलेजी, वाल महामुनि चाल ॥
अष्टापद मुक्त गयाजी, देखहु ग्रंथ निहाल, यतीश्वर० ॥८०॥
मिटै उरझ उरकी सबैजी, पूछत प्रश्न प्रतक्ष ॥
प्रगट लहै परमातमाजी, विनसे भ्रमको पक्ष, यतीश्वर० ॥८१॥
तीन लोकमें जीभही जी, दूर करै अपराध ॥
प्रतिक्रमणक्रिरिया करैजी, पढै सिझाये साध, यतीश्वर ॥८२॥
जीभहि ते सब गाइयेजी, सातों सुरके भेद ॥
जीभहितै जस जंपियेजी, जीमहि पढिये वेद, यतीश्वर, ॥८३॥
नाम जीभतैं लीजियेजी, उत्तर जीभहि होय ॥
जीभहि जीव खिमाइयेजी, जभि समौं नहि कोय, यतीश्वर०॥८४॥
केते जिय मुक्ति गयेजी, जीभहिके परसाद ॥
नाम कहांलों लीजियेजी, भैया बात अनादि, जतीश्वर ॥८५॥

दोहा.

फर्स कहैरे जीभ तू, एतो गर्व करंत ॥
तो लागै झूंठो कहै, तो हू नाहि लजंत ॥ ८६ ॥
कहै वचन कर्कस बुरे, उपजै महा कलेश ॥
तेरे ही परसादतैं, भिड भिड मरै नरेश ॥ ८७ ॥
तेरे ही रस काजको, करत अरंभ अनेक ॥
तोहि तृपति क्यों ही नही, तोतैं सबै उदेक ॥ ८८ ॥
तोसै तो अवगुण घने, कहत न आवै पार ॥
तो प्रसादत सीपको, जात न लागै वार ॥ ८९ ॥
झूंठे ग्रंथ न तू पढै, दै झूंठो उपदेश ॥

जियको जगत फिरावती, और हू करै कलेश ॥ ९० ।

जा दिन जिय थावर वसत, ता दिन तुममें कौन ॥
कहा गर्व खोटो करो, नाक आंख मुख श्रौन ॥ ९१ ॥

जीव अनंते हम धरें, तुम तौ संख असंखि ॥
तितहू तो हम विन नहीं, कहा उठत हो झखि ॥ ९२ ॥

नाक कान नैना सुनो, जीभ कहा गर्वाय ॥
सब कोऊ शिरनायकै, लागत मेरे पाय ॥ ९३ ॥

झूठी झूठी सब कहै, सांची कहै न कोय ॥
विन काया के तप तपे, मुक्ति कहांसों होय ॥ ९४

सहै परीसह वीस द्वै, महा कठिन मुनि राज ॥
तब तौ कर्म खपाइकैं पावत है शिवराज ॥ ९५ ॥

ढाल—"मोरी सहियोरे लाल न आवैगो" ए देशी ।

मोरासाधुजी फरस बडो संसार, करै कई उपकार, मोर

दक्षिण करतैं दीजिये जी, दान अनेक प्रकार
तो तिहं भवशिवपद लहैजी, मिटै मरनकी मार, मोरा० ।९

दान देत मुनिराजको जी, पावै परमानंद ॥
सुरनर कोटि सेवा करैजी, प्रतपै तेज दिनंद, मोरा० ॥९९

नरनारी कोऊ धरोजी, शील व्रतहिं शिरदार ॥
सुख अनेक सो जी लहैजी, देखो फरस प्रकार, मो० ॥९८

तपकर काया कृश करेजी, उपजै पुण्य अपार ॥
सुख विलसै सुर लोककेजी, अथवा भवदधि पार मोरा० ९

भाव जु आतम भावतोजी, सो बैठो मो माहिं ॥
काया विन किरिया नहीं जी, किरिया विन सुख नाहिं मो. १०

गज सुकुमार गिरयो नहीं जी, फरस तपत भई जोर ॥
केवल ज्ञान उपायकैंजी, पहुच्यो शिवगति ओर मोरा० १०१
खंदक ऋषिकी खाल उतारी; सह्यो परीसह जोर ॥
पूर्व बंध छूटे नहीजी, घट गये कर्म कठोर, मोरा० ॥१०२॥
देखहु मुनि दमदंतको जी, कौरों करी उपाधि ॥
ईटनमें गर्भित भयोजी, तऊन तजीय समाधि, मोरा०॥१०३॥
सेठ सुदर्शनको दियोजी, राजा दंड प्रहार ॥
सह्यो परीसह भावस्योंजी, प्रगट्यो पुण्य अपार, मोरा० ॥१०४॥
प्रसन्न चन्द्र शिर फरसियोजी, फिर जगये सब भाव ॥
नरकहि तज शिवगति लहीजी, देखहु फरस उपाय, मोरा० १०५
जेते जिय मुकते गयेजी फरसहिके उपगार ॥
पंच महाव्रत विनधरेजी, कोऊ न उतरयो पार मोरा० १०६॥
नांव कहांलों लीजियजी, वीत्यो काल अनंत ॥
'भैया मुझ उपकारकोजी, जाने श्रीभगवत, मोरा० ॥ १०७ ॥

सोरठा.

मन बोल्यो तिहं ठौर, अरे फरस संसारमें ॥
तू मूरख शिरमौर, कहा गर्व झूठो करै ॥ १०८ ॥
इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे ॥
कहा करै अभिमान, देख अवस्था नरककी ॥ १०९ ॥
पांचों अव्रत सार, तिनसेती नित पोषिये ॥
उपजै कई विकार, एतेपै अभिमान यह ॥ ११० ॥
छिन इकमें खिर जाय, देखत हष्ट शरीर यह ॥
एतेपै गर्वाय, तासम मूरख कौन है ॥ १११ ॥

घत्ता.

मन राजा मन चक्रि है, मन सबको सिरदार ॥
मनसों बडो न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥ ११२ ॥
मनतैं सबको जानिये, जीव जिते जगमाहिं ॥
मनतैं कर्म खपाइये, मनसरभर कोउ नाहिं ॥ ११३ ॥
मनतैं करुणा कीजिये, मनतैं पुण्य अपार ॥
मनतैं आतमतत्त्वको, लखिये सबै विचार ॥ ११४ ॥
मनहि सयोगी स्वामिपैं, सत्य रह्यो ठहराय ॥
चार कर्मके नाशतैं, मन नहीं नाश्यो जाय ॥ ११५ ॥
मन इन्द्रिनको भूप है, इन्द्रिय मनके दास ॥
यह तौ बात प्रसिद्ध है; कीन्हीं जिनपरकाश ॥ ११६ ॥
तब बोले मुनिरायजी, मन क्यों गर्व करंत ॥
देखहु तंदुल मच्छको, तुमतैं नर्क परंत ॥ ११७ ॥
पाप जीव कोई करो, तू अनुमोदै ताहि ॥
तासम पापी तू कह्यो, अनरथ लेही विसाहि ॥ ११८ ॥
इन्द्रिय तौ बैठी रहैं, तू दौरै निशदीश ॥
छिन छिन बांधै कर्मको, देखत है जगदीश ॥ ११९ ॥
बहुत बात कहिये कहा, मन सुनि एक विचार ।
परमातमको ध्याइये, ज्यों लहिये भवपार ॥ १२० ॥
मन बोल्यो मुनि राजसों, परमातम है कौन ॥
स्वामी ताहि बताइये, ज्यों लहिये सुख भौन ॥ १२१ ॥
आतमको हम जानते, जो राजत घट माहिं ॥
परमातम किह ठौर है हम तौ जानत नाहिं ॥ १२२ ॥

परमातम उहि ठौर है, रागद्वेष जिहि नाहिं ॥
ताको ध्यावत जीवये, परमातम ह्वै जाहिं ॥ १२३ ॥
परमातम द्वै विधि लसै, सकल निकल परमान ॥
तिसमें तेरे घट वसै, देखि ताहि धर ध्यान ॥ १२४ ॥

ढाल—"कपूर हुवे अति उजलो रे मिरियासेती रग" ए देशी।

प्राणी आतम धरम अनूपरे.जगमें प्रगट चिद्रूप.प्राणी० टेक

इन्द्रिनकी संगति कियेरे, जीव परै जग माहिं ॥
जन्म मरन बहु दुख सहैरे, कबहू छूटै नाहिं, प्राणी० ॥१२५॥
भौंरा पर्यो रस नाकके रे, कमलमुदित भये रैन ॥
केतकी कांटन वांधियोरे, कहूं न पायो चैन, प्राणी० ॥१२६॥
काननकी संगत कियेरे, मृग मार्यो वन माहिं ॥
अहि पकर्यो रस कानकेरे, कितहू छूट्यो नाहिं, प्राणी० ॥१२७॥
आंखनिरूप निहारकेरे, दीप परत है धाय ॥
देखहु प्रगट पतंगकोरे, खोवत अपनो काय, प्राणी० ॥१२८॥
रसनारस मच्छ मारियोरे, दुर्जन कर विसवास ॥
यातैं जगत विगूचियोरे सहै नरकदुख वास, प्राणी० ॥१२९॥
फरसहितै गज वासपर्योरे बंध्यो सांकल तान ॥
भूख प्यास सवदुखसहैरे, किंहंविधिकहहिं वखान प्राणी० १३०।
पंचेन्द्रियकी प्रीतिसोंरे, जीव सहै दुख घोर ॥
काल अनंतहिं जग फिरैरे, कहूं न पावे ठौर, प्राणी ॥१३१॥
मन राजा कहिये वडोरे, इंद्रिनको सिरदार ॥
आठ पहर प्रेरत रहैरे, उपजै कई विकार, प्राणी० ॥ १३२॥
मन इंद्री संगति कियेरे, जीव परै जग जोय ॥
विषयनकी इच्छा वढैरे, कैसें शिवपुर होय, प्राणी० ॥१३३॥

इन्द्रिनतैं मन मारियेरे, जोरिये आतम माहिं ॥
तोरिये नातो रागसोंरे, फोरिये बल ज्यौं थाहिं, प्राणी० ॥१३४॥
इन्द्रिन नेह निवारियेरे, टारिये क्रोध कषाय ॥
धारिये संपति शास्वतीरे, तारिये त्रिभुवन राय प्राणी० ॥१३५॥
गुण अनंत जामें लसैरे, केवल दर्शन आदि ॥
केवल ज्ञान विराजतोरे, चेतन चिन्ह अनादि, प्राणी० ॥१३६॥
थिरता काल अनादिलोंरे, राजै जिहँ पद माहिं ॥
सुख अनंत स्वामी वहैरे, दूजो कोऊ नाहिं, प्राणी० ॥१३७॥
शक्ति अनंत विराजतीरे, दोष न जामहि कोय ॥
समकित गुणकर सोभितोरे, चेतन लखिये सोय प्राणी० १३८॥
बढै घटै कबहू नहींरे, अविनाशी अविकार ॥
भिन्न रहै परद्रव्यसोंरे, सो चेतन निरधार, प्राणी० ॥१३९॥
पंच वर्णमें जो नहींरे नही पंच रस माहिं ॥
आठ फरसतैं भिन्नहैरे, गंध दोऊ कोउ नाहिं, प्राणी० ॥ १४० ॥
जानत जो गुण द्रव्यकेरे, उपजन विनसन काल ॥
सो अविनाशी आतमारे, चिह्नहु चिन्ह दयाल, प्राणी० ॥१४१॥
गुण अनंत या ब्रह्मकेरे, कहिय किँहविधि नाम ॥
'भैया' मनवचकायसोंरे, कीजे तिहपरिणाम, प्राणी० ॥१४२॥

दोहा.

परद्रव्यनसों भिन्न जो, स्वक्रिय भाव रसलीन ॥
सो चेतन परमातमा, देख्यो ज्ञान प्रवीन ॥ १४३ ॥
जो देखै गुण द्रव्यके, जानै सबको भेद ॥
सो या घटमें प्रगट है, कहा करत है खेद ॥ १४४ ॥
सुख अनंतको नाथ वह, चिदानंद भगवान ॥

दर्शन ज्ञान विराजतो, देखो घर निज ध्यान ॥ १४५ ॥
देखनहारो ब्रह्म वह, घट घटमें परतच्छ ॥
मिथ्यातमके नाशतैं, सूझै सबको स्वच्छ ॥ १४६ ॥
जैसो शिव तैसो इहाँ, भैया फेर न कोय ॥
देखो सम्यक नयनसों, प्रगट विराजै सोय ॥ १४७ ॥
निकट ज्ञानदृग देखतैं, निकट चर्मदृग होय ॥
चिकट कटै जब रागकी, प्रगट चिदानंद जोय ॥ १४८ ॥
जिनवानी जो भगवती, दास तास जो कोय ॥
सो पावहि सुखसास्वते, परम धर्म पद होय ॥ १४९ ॥
संवत सत्र इक्यावने, नगर आगरे माहिं ॥
भादों सुदि सुभ दोजको, बालख्याल प्रगटाहिं ॥ १५० ॥
सुरसमाहिं सब सुख बसै, कुरसमाहिं कछु नाहिं ॥
दुरस बात इतनी यहै, पुरुष प्रगट समझांहिं ॥ १५१ ॥
गुण लीजे गुणवंत नर, दोष न लीज्यो कोय ॥
जिनवानी हिरदै बसे, सबको मंगल होय ॥ १५२ ॥

इति पंचेन्द्रियसंवाद ।

अथ ईश्वरनिर्णयपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीस ॥
परमभाव उर आनकें, वंदत हों नमि सीस ॥ १ ॥
ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखे न कोय ॥
ईश्वर तो सो ही लखै, जो समदृष्टी होय ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश जे, ते पाये नहिं पार ॥
ता ईश्वरको और जन, क्यों पावै निरधार ॥ ३ ॥

ईश्वरकी गति अगम है, पार न पायी जाय ॥
वेदस्मृति सब कहत हैं, नाम भजोरे भाय ॥ ४ ॥

कवित्त.

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों पच हारे, काहु न निहारे प्रभु कैसे जगदीस हैं। दशों अवतार माहिं कौनैधौं[1] जनम लीन्हों, तिन हु न पाये परब्रह्म ऐसे ईस हैं। ध्रुव प्रहलाद दुरवासा लोम ऋषि भये, किन हू न कहे ऐसे आप विस्वावीस है। आवत अचंभो इह धावत सकल जग, पावत न कोऊ ताहि नावै काहि सीस हैं ॥ ५ ॥

एक मतवारे कहैं अन्य मतवारे सब, मेरे मतवारे परवारे मत सारे हैं। एक पंचतत्त्ववारे एक एकतत्त्व वारे, एक भ्रममतवारे एक एक न्यारे हैं॥ जैसे मतवारे बकै तैसें मतवारे बकै, तासों मतवारे तकैं विना मतवारे है॥ शांतिरसवारे कहै मतको निवारे रहैं, तेई प्रानप्यारे लहैं और सब न्यारे है ॥ ६ ॥

अनङ्गशेखर.

अरे अज्ञान आतमा लखै न तू महातमा, लग्यो है तो महातमा निजातमा न सूझई। प्रसिद्ध जो विख्यातमा विराजै गात गातमा, कहावै पात पातमा चिदातमा न बूझई॥ मिथ्यात्व मोह मातमा लग्यो तु जीव घातमा, क्रोधादि घातघातमा अज्ञातम है झूझई। अनंत शक्ति जातमा उद्योत ज्यों प्रभातमा, सु सूझै खंध आतमा तू बंधमें अरूझई ॥ ७ ॥

कवित्त.

हिंसाके करैया जोपै जैहै सुरलोक मध्य, नर्कमाहिं कहो बुध

(१) किसने. २ भोले.

कौन जीव जावेंगे ? । लेकैं हाथ शस्त्र जेई छेदत पराये प्रान, ते नहीं पिशाच कहो और को कहावेंगे ? ॥ ऐसे दुष्ट पापी जे संतापी पर जीवनके, ते तो सुख संपतिसों कैसें के अघावेंगे॥ अहो ज्ञानवंत संत तंतकै विचार देखो, बोवें जे बंबूर ते तौ आम कैसें खावेंगे ? ॥ ८ ॥

कुंडलिया ।

सुख जो तुमको चाहिये, सो सुख सबको चाह ।
खान पान जीवत रहै, धन सनेह निरवाह ॥
धन सनेह निरवाह, दाह दुख काहि न व्यापै ।
थावर जंगम जीव, मरन भय धार जु कांपै ॥
आपै देह विचार, होयकैं आपहि सनमुख ।
'भैया' घटपट खोल, बोल कहि कौन चहै सुख ॥ ९ ॥

कवित्त.

वीतराग वानीकी न जानी बात प्रानी मूढ, ठानी तै क्रिया अनेक आपनी हठाहठी । कर्मनके बंध कौन अन्ध कछू सूझै तोहि, रागदोष परणितसों होत जो गठागठी ॥ आतमाके जीतकी न रीत कहू जानै रंच, ग्रन्थनके पाठ तू करै कहा पठापठी । मोहको न कियो नाश सम्यक न लियो भास, सूत न कपास करै कोरीसों[1] लठालठी ॥ १० ॥

हाथी घोरे पालकी नगारे रथ नालकी न, चकचोल चालकी न चढि रीझियतु है । स्वेतपट चालकी न मोती मन मालकी न, देख द्युति भाल की न मान कीजियतु है ॥ शैल बाग ताल की न जल जंतु जालकी न, दया वृद्ध बालकी न दंड दीजियतु है ।

(१) कपड़ा बुननेवालेसों.

देख गति कालकी न ताह कौन हालकी न, चाबिचूभ गालकी न बीन लीजियतु है ॥ ११ ॥

जैसें कोउ स्वान परयो काचके महलबीच, ठौर ठौर स्वान देख भूंस भूंस मरयो है। बानर ज्यों मूठी बांध परयो है पराये वश, कूयेमें निहार सिंह आप कूद परयो है ॥ फटिककी शिलामें विलोक गज जाय अरयो, नलिनीके सुवटाको कौनैधों पकरयो है। तैसें ही अनादिको अज्ञानभाव मान हंस, अपनो स्वभाव भूलि जगतमें फिरयो है ॥ १२ ॥

दोहा.

ईश्वरके तो देह नहिं, अविनाशी अविकार ॥
ताहि कहैं शठ देह धर, लीन्हों जग अवतार ॥ १३ ॥
जो ईश्वर अवतार ले, मरै बहुर पुन सोय ॥
जन्म मरन जो धरतु है, सो ईश्वर किम होय ॥ १४ ॥
एकनकी घां होय कैं, मरै एकही आन ॥
ताको जे ईश्वर कहैं, ते मूरख पहचान ॥ १५ ॥
ईश्वरके सब एकसे, जगतमांहि जे जीव ॥
काहूपै नहिं द्वेष है, सबपैं शांति सदीव ॥ १६ ॥
ईश्वरसों ईश्वर लरै, ईश्वर एक कि दोय ॥
परशुराम अरु रामको, देखहु किन जगलोय ॥ १७ ॥
रौद्र ध्यान वर्ते जहां, तहां धर्म किम होय ॥
परम बध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय ॥ १८ ॥
ब्रह्माके खरशीस हो, ता छेदन कियो ईस ॥
ताहि सृष्टिकर्त्ता कहै, रख्यो न अपनो सीस ॥ १९ ॥

जो पालक सब सृष्टिको, विष्णु नाम भूपाल ॥
सो मारयो इक बानतें, प्रान तजे तत्काल ॥ २० ॥
महादेव वर दैत्यको, दीनों होय दयाल ॥
आपन पुन भाजत फिरयो, राख लेहु गोपाल ॥ २१ ॥
जिनको जग ईश्वर कहै, ते तो ईश्वर नाहिं ॥
ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट माहिं ॥ २२ ॥
ईश्वर सो ही आतमा, जाति एक है तंत ॥
कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजंत ॥ २३ ॥
जो गुण आतम द्रव्यके, सो गुण, आतम माहिं ॥
जडके जडमें जानिये, यामें तो भ्रम नाहिं ॥ २४ ॥
दर्शन आदि अनत गुण, जीव धरै तिहु काल ॥
वर्णादिक पुद्गल धरै, प्रगट दुहूंकी चाल ॥ २५ ॥
सत्यारथ पथ छोडके, लगैं मृषाकी ओर ॥
ते मूरख संसारमें, लहै न भवको छोर ॥ २६ ॥
'भैया' ईश्वर जो लखै सो जिय ईश्वर होय ॥
यों देख्यो सर्वज्ञने, यामें फेर न कोय ॥ २७ ॥
इति ईश्वरनिर्णयपचीसी ।

अथ कर्त्ताअकर्त्तापचीसी लिख्यते ।

दोहा.

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय ॥
ता ईश्वरके चरन को. वंदों सीस नवाय ॥ १ ॥
जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन ।
जो करता सो भोगता, यहै न्यायको मौन ॥ २ ॥

दुहूं दोषतै रहित है, ईश्वर ताको नाम ॥
मनवचशीस नवाइकै, करूं ताहि परणाम ॥ ३ ॥
कर्मनको करता वहै, जापै ज्ञान न होय ॥
ईश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्त्ता ह्वै सोय ॥ ४ ॥
ज्ञानवंत ज्ञानहिं करै, अज्ञानी अज्ञान ॥
जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगै दोष असमान ॥ ५ ॥
ज्ञानीपै जडता कहा, कर्त्ता ताको होय ॥
पंडित हिये विचारकै, उत्तर दीजे सोय ॥ ६ ॥
अज्ञानी जडतामयी, करै अज्ञान निशंक ॥
कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवंत ॥ ७ ॥
ईश्वरकी जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान ॥
जो इह नै कर्त्ता कहो, तौ ह्वै बात प्रमान ॥ ८ ॥
अज्ञानी कर्त्ता कहै, तौ सब बनै बनाव ॥
ज्ञानी ह्वै जड़ता करै, यह तौ बनै न न्याव ॥ ९ ॥
ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कहुं अज्ञान ॥
अज्ञानी जड़ता करै, यह तो बात प्रमान ॥ १० ॥
जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय ॥
सुख दुख काको दीजिये, न्याय करहु बुध लोय ॥ ११ ॥
नरकनमे जिय डारिये, पकर पकरकें बाँह ॥
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥ १२ ॥
ईश्वरकी आज्ञा विना, करत न कोऊ काम ॥
हिंसादिक उपदेशको, कर्त्ता कहिये राम ॥ १३ ॥
कर्त्ता अपने कर्मको, अज्ञानी निर्धार ॥
दोष देत जगदीशको, यह मिथ्या आचार ॥ १४ ॥

ईश्वर तौ निर्दोष है करता भुक्ता नाहिं ॥
ईश्वरको कर्त्ता कहै, ते मूरख जगमाहिं ॥ १५ ॥
ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीनलोक आभास ॥
सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास ॥ १६ ॥
जाके गुन तामें बसै, नहीं औरमें होय ॥
सुधी दृष्टि निहारतें, दोष न लागै कोय ॥ १७ ॥
वीतरागवानी विमल, दोषरहित तिहुंकाल ॥
ताहि लखै नहिं मूढ जन, झूठे गुरुके चाल ॥ १८ ॥
गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न बाट कुबाट ॥
विना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिये कपाट ॥ १९ ॥
जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्त्ता होय ॥
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय ॥ २० ॥
दर्व कर्म पुद्गल मयी, कर्त्ता पुद्गल तास ॥
ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझे सब परकाश ॥ २१ ॥
जोलों जीव न जान ही, छहों कायके वीर ॥
तौलों रक्षा कौनकी, कर है साहस धीर ॥ २२ ॥
जानत है सब जीवको, मानत आप समान ॥
रक्षा यातैं करत है, सबमें दरसन ज्ञान ॥ २३ ॥
अपने अपने सहजके[1], कर्त्ता हैं सब दर्व ॥
यहै धर्मको मूल है, समझ लेहु जिय सर्व ॥ २४ ॥
'भैया' बात अपार है, कहै कहांलों कोय ॥
थोरेहीमें समझियो, ज्ञानवंत जो होय ॥ २५ ॥

(१) स्वभावके.

सत्रहसे इक्यावनै, पोष शुक्ल तिथि वार ॥
जो ईश्वरके गुण लखै, सो पावे भवपार ॥ २६ ॥

इति कर्त्ताअकर्त्तापचीसी.

अथ दृष्टांतपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, बसै चिदातम देव ॥
मन बच शीस नवायकैं, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
एक शुद्ध परमातमा, दुविधि तास पद जान ॥
त्रिविधि नमत हौं जोर कर, चहुं निक्षेपन बान ॥ २ ॥
सुरसति वर्षति मेघ जिम, जिन मुख अम्रत धार ॥
पीवत है भवि जीव जे, ते सुख लहैं अपार ॥ ३ ॥
जिय हिंसा जगमें बुरी, हिंसा फल दुख देत ॥
मकरी मांखी भक्ष्यती, ताहि चिरी भख लेत ॥ ४ ॥
जिय हिंसा करते नहीं, धरते शुद्ध स्वभाय ॥
तौ देखौ मुनिराजकै, सेवत सुरनर पाय ॥ ५ ॥
झूंठ भलो नहिं जगतमें, देखहु किन दृग जोय ॥
झूंठी तूती बोलती, ता ढिग रहै न कोय ॥ ६ ॥
सांच बडो संसारमें, मानत सब परमान ॥
सांच सूआ कहै रामको, सुनत सबै धर कान ॥ ७ ॥
विन दीनों जे लेत है, ताहि लगै बहु पाप ॥
चौरहि सूली दीजिये, देखहु जग संताप ॥ ८ ॥

---

(१) सप्तमी.

लेत नहीं परद्रव्यको, देत सकल परत्याग ॥
तो लच्छी भगवानके, रहत चरन ढिग लाग ॥ ९ ॥
शीलव्रत पालै नहीं, भालै परतिय रूप ॥
पेख हु रावन आदि बहु, परत नर्कके कूप ॥ १० ॥
मन वच काया योगसों शीलव्रतहिं ठहराय ॥
सेठ सदर्शन देखिये, सुरगण भये सहाय ॥ ११ ॥
परिग्रह संग्रह ना भलो, परिग्रह दुखको मूल ॥
माखी मधुको जोरती, देखहु दुखको शूल ॥ १२ ॥
जिनके परिग्रह रंच नहि, मातजात जिम बाल ॥
तिह मुनिवरके इंद्र हू, सेवत चरन त्रिकाल ॥ १३ ॥
मन वच काया योगसों, मन त्यागी मुनिराज ॥
कछु त्यागी जिय अणुव्रती, तेहू है सिरताज ॥ १४ ॥
राग न कीजे जगतमें, राग किये दुख होय ॥
देखहु कोकिल पींजरै, गहि डारत हैं लोय ॥ १५ ॥
देख संडासी पकरिये, अहिरण ऊपर डार ॥
आगहि घनसों पीटिये, लोहे संग निवार ॥ १६ ॥
नेह न कीजै आनसों, नेह किये दुख होय ॥
नेह सहित तिल पेलिये, डार जंत्रमें जोय ॥ १७ ॥
परसंगति कीजे नहीं, परहि मिले दुख पेख ॥
पानी जैसें पीटिये, वस्त्र मिले दुख देख ॥ १८ ॥
पवन जु पोपै मसकको, मसक थूल ह्वै जाय ॥
देखहु संगति दुष्टकी, पौनहि देह जराय ॥ १९ ॥
चेतन चंदन वृक्षसों, कर्म सांप लपटाहि ॥
बोलत गुरुवच मोरके, सिथल होय दुर जाहिं ॥ २० ॥

(१) लुहारकी धोंकनी.

कुगुरु कुगतिके सारथी, मूढनको ले जाहिं ॥
हिंसाके उपदेश दै, धर्म कहै तिहमाहिं ॥ २१ ॥
दक्षनके हित दक्षसों, शठकै शठसों प्रीत ॥
अलि अम्बुजपै देखिये, दर्दुर कर्दम मीत ॥ २२ ॥
परभावनसों विरचकें, निज भावनको ध्यान ॥
जो इह मारग अनुसरै, सो पावै निर्वान ॥ २३ ॥
बहुत बात कहिये कहा, थोरे ही दृष्टन्त ॥
जो पावै निज आतमा, सो पावै भव अन्त ॥ २४ ॥
'भैया' निज पाये विना, भ्रमन अनंते कौन ॥
तेई तरे संसारमें, जिहं आपो लखि लीन ॥ २५ ॥
एक सात पण दोय है, अश्विन दिशा[1] प्रकास ॥
यह दृष्टांत पचीसिका, कही भगोतीदास ॥ २६ ॥

इति दृष्टान्तपचीसी

अथ मनबत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

दर्शन ज्ञान चरित्र जिहं, सुख अनंत प्रतिभास ॥
वंदत हों तिहं देवको, मन धर परम हुलास ॥ १ ॥
मनसों वंदन कीजिये, मनसों धरिये ध्यान ॥
मनसों आतम तत्त्वको, लखिये सिद्ध समान ॥ २ ॥
मन खोजत है ब्रह्मको, मन सब करै विचार ॥
मनविन आतम तत्त्वको, करै कौन निरधार ॥ ३ ॥
मनसम खोजी जगतमें, और दूसरो कौन ॥
खोज गहै शिवनाथको, लहै सुखनको भौन ॥ ४ ॥

---

(१) दशमी.

जो मन सुलटै आपको, तो सूझै सब सांच ॥
जो उलटै संसारको, तौ मन सूझै कांच ॥ ५ ॥
सत असत्य अनुभय उभय, मनके चार प्रकार ॥
दोय झुकै संसारको, द्वै पहुंचावै पार ॥ ६ ॥
जो मन लागै ब्रह्मको, तो सुख होय अपार ॥
जो भटकै भ्रम भावमें, तौ दुख पार न वार ॥ ७ ॥
मनसो बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥
तीन लोकमें फिरत ही, जातन लागै वार ॥ ८ ॥
मन दासनको दास है, मन भूपनको भूप ॥
मन सब बातनि योग्य है, मनकी कथा अनूप ॥ ९ ॥
मन राजाकी सैन सब, इन्द्रिनसे उमराव ॥
रात दिना दौरत फिरै, करै अनेक अन्याव ॥ १० ॥
इन्द्रियसे उमराव जिहं, विषय देश विचरत ॥
भैया तिह मन भूपको, को जीतै विन संत ॥ ११ ॥
मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय ॥
मन जीते विन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥ १२ ॥
मनसो जोधा जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥
ताहि पछारै सो सुभट, जीत लहै जग माहिं ॥ १३ ॥
मन इन्द्रिनको भूप है, ताहि करै जो जेर ॥
सो सुख पावे मुक्तिके, यामें कछू न फेर ॥ १४ ॥
जब मन मूंद्यो ध्यानमें, इंद्रिय भई निराश ॥
तब इह आतम ब्रह्मने, कीने निज परकाश ॥ १५ ॥
मनसो मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥
सुख समुद्रको छाडकें, निपके वनमें जाय ॥ १६ ॥

विष भक्षनतें दुख बढै, जानै सब संसार ॥
तबहू मन समझै नहीं, विषयन सेती प्यार ॥ १७ ॥
छहों खंडके भूप सब, जीत किये निजदास ॥
जो मन एक न जीतियो, सहै नर्क दुख बास ॥ १८ ॥
छांड तनकसी झूंपरी, और लंगोटी साज ॥
सुख अनंत विलसंत है, मन जीतै मुनिराज ॥ १९ ॥
कोटि सताइस अपछरा, बत्तिस लक्ष विमान ॥
मन जीते विन इन्द्र हू, सहै गर्भ दुख आन ॥ २० ॥
छांड घरहि बनमें बसै, मन जीतनके काज ॥
तौ देखो मुनिराजजू, विलसत शिवपुर राज ॥ २१ ॥
अरि जीतनको जोर है, मन जीतनको खाम ॥
देख त्रिखंडी भूपको, परत नर्कके धाम ॥ २२ ॥
मन जीतै जे जगतमें, ते सुख लहै अनंत ॥
यह तो बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्रीभगवंत ॥ २३ ॥
देख बडे आरंभसों, चक्रवर्ति जग माहिं ॥
फेरत ही मन एकको, चले मुक्तिमें जांहिं ॥ २४ ॥
बाहिज परिगह रंच नहिं, मनमें धरै विकार ॥
तांदुल मच्छ निहारिये, पडै नरक निरधार ॥ २५ ॥
भावनहीतें बंध है, भावनहीतै मुक्ति ॥
जो जानै गति भावकी, सो जानै यह युक्ति ॥ २६ ॥
परिग्रह कारन मोहको, इम भाख्यो भगवान ॥
जिहं जिय मोह निवारियो, तिहिं पायो कल्यान ॥ २७ ॥

अरिल्ल.

कहा भयो बहु फिरे तीर्थ अडसठका ॥
कहा होय तन दहे, रैन दिन कष्टका ॥

कहा होय नित रटै राम मुख पट्टका ॥
जो बस नाही तोहि पसेरी अट्टका ॥ २८ ॥
कहा मुंडाये मूंड बसे कहा मट्टका ।
कहा नहाये गंग नदीके तट्टका ॥
कहा कथाके सुने बचनके पट्टका ।
जो बस नाही तोहि पसेरी अट्टका ॥ २९ ॥

चोपाई १६ मात्रा.

कहा कहों जियकी जडताई । मोपैं कछु बरनी नहिं जाई ।
आरज खंड मनुष्यभव पायो । सो विषयनसंग खेल गमायो ॥३०॥
आगें कहो कौन गति जैहो । ऐसे जनम बहुर कहां पैहो ॥
अरे तू मूरख चेत सवेरे । आवत काल छिनाहि छिन नेरे ॥३१॥
जबलों जमकी फौज न आवै । तबलों जो मनको समुझावै ॥
आतम तत्त्व सिद्धसम राजै । ताहि विलोक मर्नभय भाजै ॥३२
बहुत बात कहिये कहु केती । कारज एक ब्रह्म ही सेती ॥
ब्रह्म लखै सो ही सुख पावै । भैया सो परब्रह्म कहावै ॥ ३३ ॥

चौपाई १५ मात्रा

नगर आगरे जैनी बसै । गुण मणिरिद्धि वृद्धि कर लसै ॥
तिह थानक मन ब्रह्म प्रकाश । रचना कही 'भागोतीदास' ३४

इति मनबत्तीसी ।

अथ स्वप्नबत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

स्वपनेवत संसारमें जागे श्रीजिनराय ॥
तिनके चरन चितारकें, वंदत हों मन लाय ॥ १ ॥

---

(१) आठ पसेरीका मन ।

मोह नींदमें जीवको, बीत गयो चिरकाल ॥
जाग न कबहू आपकी, कीन्ही सुध संभाल ॥ २ ॥
जानत है सब जगतमें, यह तन रहिबो नाहिं ॥
पोषत हैं किहं भावसों, मोहगहलता माहिं ॥ ३ ॥
मेरे मीत नचीत तु, ह्वै बैठ्यो किह ठौर ॥
आज काल जम लेत है तोहि सुपन भ्रम और ॥ ४ ॥
देखत देखत आंखसों, यह तन विनस्यो जाय ॥
एतेपर थिर मानिये, यहो मूढ शिरराय ॥ ५ ॥
जो प्रभातको देखिये, सो संध्याको नाहिं ॥
ताहि सांच कर मानिये, भ्रम अरु कहा कहाहिं ॥ ६ ॥
ज्यों सुपनेमें देखिये, त्यों देखत परतच्छ ॥
सबै विनाशी वस्तु हैं, जात छिनकमें शच्छ[१] ॥ ७ ॥
सुपनेमें भ्रम देखिये, जागत हू भ्रम मूल ॥
ताहि सांच शठ मानिके, रह्यो जगतमें फूल ॥ ८ ॥
सुपनेमें अरु जागतें, फेर कहा है मीर ॥
वाहूमें भ्रम भूल है, वाहूमें भ्रम भीर ॥ ९ ॥
सुपनेवत संसार है, मूढ न जाने भेव ॥
आठ पहर अज्ञानमें, मग्न रहे अहमेव ॥ १० ॥
सुपनेसों कहे झूठ है, जाग कहे निजगेह ॥
ते मूरख संसारमें, लहे न भवको छेह[२] ॥ ११ ॥
कहा सुपनमें सांच है, कहा जगतमें सांच ॥
भूलि मूढ थिर मानिकें, नाचत डोले नाच ॥ १२ ॥
आंख मूंद खोले कहा, जागत कोऊ नाहिं ॥
सोवत सब संसार है, मोहगहलता माहिं ॥ १३ ॥

१ चली। २ छेह–अंत।

मोह नींदको त्यागकें, जे जिय भये सचेत ॥
ते जागे संसारमें, अविनाशी सुख लेत ॥ १४ ॥
अविनाशी पद ब्रह्मको, सुख अनंतको मूल ॥
जाग लह्यो जिहँ जगतमें, तिहँ पायो भवकूल[1] ॥ १५ ॥
अविनाशी घट घट प्रगट, लखत न कोऊ ताहि ॥
सोय रहे भ्रम नींदमें, कहि समुझावें काहि ॥ १६ ॥
आप कहै हम दक्ष हैं, औरन कहै अज्ञान ॥
अहो सुपनकी भूलमें, कहा गहै अभिमान ॥ १७ ॥
मान आपको भूपती, औरनसों कहै रंक ॥
देख सुपनकी संपदा, मोहित मूढ निशंक ॥ १८ ॥
देख सुपनकी साहिबी, मूरख रह्यो लुभाय ॥
छिन इकमें छय जायगी, धूम महलके न्याय ॥ १९ ॥
कहा सुपनकी साहिबी, मूरख हिये विचार ॥
जम जोधा छिन एकमें, लैहैं तोहि पछार ॥ २० ॥
सोवतमें इह जीवको, सुगति रहै नहिं रंच ॥
आप कछु मानै कछू, सबहि भरम परपंच ॥ २१ ॥
मूरख है यह आतमा, क्योंहू समझत नाहिं ॥
देखि सुपनवत आंखसों बहुर मगन तिहमाहिं ॥२२॥
जानत है जमराजकी, आवत फौज प्रचंड ॥
मारि करै इह देहको, छिनकमाहिं शत खंड ॥ २३ ॥
ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय ॥
तिनसम मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥ २४ ॥
मूरख सोवत जगतमें, मोह गहलतामाहिं ॥
जन्म मरन बहु दुख सहै, तो हू जागत नाहिं ॥ २५ ॥

१—संसारका किनारा ।

जन ऊपर जम जोर है, जिनसों जम हु डराय ॥
तिनके पद जो सेइये, जमकी कहा बसाय ॥ २६ ॥
जिनके पदको सेवते, निजपद परगट होय ॥
तिनतैं बडो न दूसरो, और जगतमें कोय ॥ २७ ॥
निजपद परगट होत ही, शिवपद मिलै सुभाय ॥
जनम मरन बहु दुख मिटै, जम विलख्यो ह्वै जाय ॥ २८ ॥
जम जीतेतैं जीवको, सुख अनंत ध्रुव होय ॥
बहुरि न कबहू, सोयबो, जगे कहावैं सोय ॥ २९ ॥
जम जीते जीते वहै, जागे वहै प्रमान ॥
वहै सबन शिरमुकुट है, चेतन धर तिह ध्यान ॥ ३० ॥
ध्यान धरत परब्रह्मको, तोहि परमपद होय ॥
तुहू कहावै सिद्धमय, और कहै कहा कोय ॥ ३१ ॥
चेतन ढील न कीजिये, धरहु ब्रह्मको ध्यान ॥
सुख अनंत शिवलोकमें, प्रगटै महा कल्यान ॥ ३२ ॥
इह विधि जो जागै पुरुष, निज दृग कर परकास ॥
तिहं पायो सुख शास्वतो, कहै 'भगोतीदास' ॥ ३३ ॥
उग्रसेनपुर अवनिपैं, शोभत मुकुट समान ॥
तिह थानक रचना कही, समुझ लेहु गुणवान ॥ ३४ ॥

इति सुपनबत्तीसी।

अथ सूआबत्तीसी लिख्यते।

दोहा.

नमस्कार जिन देवको, करों दुहूं कर जोर ॥
सुवा बतीसी सुरस मैं, कहूं अरिनदलमोर ॥ १ ॥

आतम सुआ सुगुरु वचन, पढत रहै दिन रैन ॥
करत काज अघरीतिके, यह अचिरज लखि नैन ॥ २ ॥
सुगुरु पढावे प्रेमसों, यहू पढत मनलाय ॥
घटके पट जो ना खुलै, सबहि अकारथ जाय ॥ ३ ॥

चौपाई.

सुवा पढायो सुगुरु बनाय । करम बनहि जिन जइयो भाय ॥ भूले चूके कबहु न जाहु । लोभनलिनिपै भूआ न खाहु ॥ ४ ॥ दुर्जन मोह दगाके काज । बांधी नलिनी तर धर नाज ॥ तुम मति बैठहु सुवा सुजान । नाज विषयसुख लखि तिह थान ॥ ५ ॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो । जो पकरो तो दृढ मति गहियो ॥ जो दृढ गहो तो उलटि न जइयो । जो उलटो तौ तजि भजि जइयो ॥ ६ ॥ इह विधि सुआ पढायो नित्त । सुअटा पढिकें भयो विचित्त ॥ पढत रहै निशदिन य वैन । सुनत लहै सब प्रानी चैन ॥ ७ ॥ इक दिन सुअटै आई मनै । गुरु संगति तजि भजि गये वनें । वनमें लोभनलिन अति बनी । दुर्जन मोह दगाको तनी ॥ ८ ॥ ता तरु विषयभोग अन धरे सुअटै जान्यो ये सुख खरे ॥ उतरे विषयसुखनिके काज । बैठ नलिनपैं विलसै राज ॥ ९ ॥ बैठो लोभ नलिनपै जबै । विषय स्वाद रस लटके तबै ॥ लटकत तैं उलटि गये भाव । तर मुंडी ऊपर भये पांव ॥ १० ॥ नलिनी दृढ पकरै पुनि रहै । मुखतें वचन दीनता कहै कोउ न वनमें छुडावनहार । नलिनी पकरहि करहि पुकार ॥ ११ ॥ पढत रहै गुरुके सब वैन । जे जे हितकर सिखये ऐन ॥ सुअटा वनमें उडि जिन जहु । जाहु तो भूलि खता मति खाहु ॥ १२ ॥

१–२ नाज—अन्न, धान्य ।

नलिनीके मति जइयो तीर । जाहु तो तहां न बैठहु वीर ॥ जो बैठो तो दृढ मति गहो । जो दृढ गहो तो पकरि न रहो ॥१३ जो पकरो तो चुगा न खइयो । जो खावो तो उलटि न जइयो ॥ जो उलटो तो तजि भजि जइयो । इतनी सीख हृदयमें लहियों" ॥ १४ ॥ ऐसे वचन पढत पुनि रहै । लोभ नलिनि तजि भज्यो न चहै ॥ आयो दुर्जन दुर्गतिरूप । पकडे सुअटा सुंदर भूप ॥ १५ ॥ डारे दुखके जाल मझार । सो दुख कहत न आवै पार ॥ भूख प्यास बहु संकट सहै । परबस परे महा दुख लहै ॥ ॥१६॥ सुअटाकी सुधि बुधि सब गई । यह तो बात और कछु भई ॥ आय परे दुख सागर माहिं । अब इततें कितको भजि जाहिं ॥ १७ ॥ केतो काल गयो इह ठौर । सुअटैं जियमें ठानी और ॥ यह दुखजाल कटै किहं भांति । ऐसी मनमें उपजी खांति ॥ १८ ॥ राति दिना प्रभु सुमिरन करै । पाप जाल काटन चित धरै ॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघजाल । सुमिरन फल भयो दीनदयाल ॥ १९ ॥ अब इततें जो भजकैं जाउं । तो नलिनीपर बैठ न खाउं ॥ पायो दाव भज्यो ततकाल । तजि दुर्जन दुर्गति जंजाल ॥ २० ॥ आये उडत बहुर बनमाहिं । बैंठे नरभव द्रुमकी छाहिं ॥ तित इक साधु महा मुनिराय । धर्म देशना देत सुभाय ॥ २१ ॥ यह संसार कर्मवनरूप । तामहि चेतन सुआ अनूप ॥ पढत रहै गुरुवचन विशाल । तौहु न अपनी करै संभाल ॥ २२ ॥ लोभ नलिनपै बैठे जाय । विषय स्वाद रस लटके आय ॥ पकरहि दुर्जन दुर्गति परै । तामें दुःख बहुत जिय भरै ॥ २३ ॥ सो दुख कहत न आवै पार । जानत

जिनवर ज्ञानमझार ॥ सुनतैं सुअटा चौंक्यो आप । यह तो मोहि परयो सब पाप ॥ २४ ॥ ये दुख तौ सब मैं ही सहे । जो मुनिवरने मुखतैं कहे ॥ सुअटा सोचै हिये मझार । ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिर्यो करमवन माहिं । ऐसे गुरु कहुं पाये नाहिं ॥ अब मो पुण्य उदै कछु भयो । सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥ २६ ॥ गुरुकी गुणस्तुति बारंबार । सुमिरै सुअटा हिये मझार ॥ सुमिरत आप पाप भजि गयो । घटके पट खुलि सम्यक थयो ॥ २७ ॥ समकित होत लखी सब बात । यह मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निजमहि धरे । पुद्गल रागादिक परिहरे ॥ २८ ॥ आप मगन अपने गुणमाहिं । जन्म मरण भय जियको नाहिं ॥ सिद्धसमान निहारत हिये । कर्म कलंक सबहि तजि दिये ॥ २९ ॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश । दुहुं पद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुअटा ध्यावत ध्यान । दिनदिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥ ३० ॥ अनुक्रम शिवपद जियको भयो । सुख अनंत विलसत नित नयो ॥ सतसंगति सबको सुख देय । जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥ ३१ ॥ केवलिपद आतम अनुभूत । घट घट राजत ज्ञान संजूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय । जाके निजपद परगट होय ॥ ३२ ॥ सुआ बतीसी सुनहु सुजान । निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त । 'भयाकी' विनती धर चित्त ॥ ३३ संवत सत्रह त्रेपन माहिं । आश्विन पहिले पक्ष कहाहिं ॥ दशमी दशों दिशा परकास । गुरुसंगतितैं शिवसुख भास ॥ ३४ ॥

इति सुआबत्तीसी ।

अथ ज्योतिषके छन्द लिख्यते ।

छप्पय.

दिन करके दिन वीस, चंद्र पंचास प्रमानहु ।
मंगल विंशति आठ, बुद्ध छप्पन शुभ ठानहु ॥
शनिके गण छत्तीस, देव गुरु दिनहि अठावन ।
राहु वियालिस लहिय, शुक्र सत्तरि मन भावन ॥
इम गनहु दशा निजराशितैं, सूरज जित संक्रमहिं तित ।
शुभ फलहिं विचारहु भविक जन, परम धरम अवधार चित ॥१॥
मेष वृछिक पति भौम, वृषभ तुलनाथ शुक्र सुर ।
मीनराशि धनराशि ईश, तस कहत देव गुरु ॥
कन्या मिथुन बुधेश, कर्क स्वामी श्री चंद गणि ॥
मकर कुंभ नृप शनी, सिंह राशिहि प्रभु रवि भणि ॥
ये राशी द्वादश जगतमें, ज्योतिष ग्रंथ बखानिये ।
तस नाथ सात लखि भविक जन, परम तत्त्व उर आनिये ॥२
मेप सूर वृप चंद्र, मकर मंगल गण लिज्जै ।
कन्या बुध अति शुद्ध, कर्क सुरगुरुहि भणिज्जै ॥
मीन शुक्र सुख करन, तुलहि दुख हरन शनीश्वर ॥
मिथुन राहु जय करय, भरय भंडार धनीश्वर ॥
इह विधि अनेक गुण उच्च महि, रिद्धि सिद्धि संपति भरय ॥
तस नाथ सात लखि भविक जन, परम धर्म जिय जय करय ॥३॥

दोहा.

तुल सूरज वृश्चिक शशी, कर्क भौम बुध मीन ॥
मकर वृहस्पति कन्य भृगु, मेष शनिश्वर दीन ॥ ४ ॥

राहु होय धन राशि जो. ए सब कहिये नीच ॥
परमारथ इनमें इतो, रहिये निज सुख वीच ॥ ५ ॥
इति ज्योतिषछन्द ।

अथ पद राग प्रभाती ।

साहिब जाके अमर है सेवक सब ताके ॥
दीप और पर दीपमें भर रहे सदाके, साहिब० ॥ १ ॥
जामें तीर्थंकर भये चक्री वसु देवा ॥
काल अनन्तहु एकमे, घट बढ नहि टेवा, साहिब०॥२॥
जाकी उत्पति नित्य है नित होय विनाशा ॥
जीव चिना पुद्गल विना सागर सम वासा, साहिब०॥३॥
अर्थ कहो याको कहा विनती सौ वारा ॥
नाम कह्यो या पद विषै, तुम लेहु विचारा, साहिब०॥४॥

पुनः

कहा तनकसी आयुपै, मूरख तू नाचै ॥
सागरथितिधर खिरि गये, तू कैसें बाचै, कहा० ॥ १ ॥
देख सुपनकी सपदा, तू मानत सांचै ॥
वे जु नर्ककी आपदा, जर है को आंचै, कहा० ॥ २ ॥
धर्मकर्ममें को भलो परखो मणि काचै ॥
भैया आप निहारिये परसों मति मांचै, कहा० ॥ ३ ॥
इति पद.

अथ फुटकर विषय लिख्यते ।

कवित्त.

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजतु है, तेरो ही स्वभाव सुख सागरमें लहिये। तेरो ही स्वभाव ज्ञान दरसनहू राजतु है, तेरो ही

स्वभाव ध्रुव चारितमें कहिये ॥ तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसतु है तेरो ही स्वभाव परभावमें न गहिये । तेरो ही स्वभाव सब आन लसै ब्रह्ममाहिं यातै तोहि जगतको ईश सरदहिये ॥१॥

मोह मेरे सारने विगारे आन जीव सब, जगतके बासी तैसे बासी कर राखे हैं ॥ कर्मगिरिकंदरामें वसत छिपाये आप, करत अनेक पाप जात कैसे भाखे हैं. विषैवन जोर तामें चोरको निवास सदा, परधन को हरिवेके भाव अभिलाखे हैं। तापै जिनराज जूके बैन फौजदार चढे, आन आन मिले तिन्हें मोक्षदेश दाखे हैं ॥ २ ॥

जोलों तेरे हिये भर्म तोलों तू न जानै मर्म कौन आप कौन कर्म कौन धर्म सांच है । देखत शरीर चर्म जो न सहे शीत घर्म, ताहि धोय मानै धर्म ऐसे भ्रम माच है ॥ नेक हू न होय नर्म बात बातमाहिं गर्म रहे चाहे हेमहर्म[1] बसनाहीं पांच है । एते पै न गहै शर्म कैसें ह्वै प्रकाश पर्म, ऐसे मूढ भर्ममाहिं नाचै कर्म नाच है॥३

अमल सु पी रहैरी अमल सुपीरहैरी, अमल वही रहैरी अमल सु पीर है । बानी जो गही रहैरी बानी जो वहै रहैरी, बानी न कही लहैरी बानी न कही रहै ॥ परको शरीरहैरी परको नहीं रहैरी, परको नहीं रहैरी वही दुख भीर है । औदधि गहीरहैरी आयो तिह तीरहैरी, जैतै निज घर कहीरी पर ह्वै सही रहै ॥४॥

अरिनके ठट्ट दह वट्ट कर डारे जिन, करम सुभट्टनके पट्टन उजारे है । नर्क तिरजंच चट पट्ट देकैं बैठ रहे, विषै चोर झट झट्ट पकर पछारे है ॥ जोबन कटाय डारे अष्ट मद दुष्ट मार, मदनके देश जारे क्रोध हू संहारे हैं । चढत सम्यक्त सूर चढत प्रताप पूर, सुखके समूह भूर सिद्धके निहारे हैं ॥ ५ ॥

---

१ हर्म्य—महल.

वारवार फिर आई वारवार फिर आई, वारवार फेर आई आतममों हरी है। वारवार जुर आई वारवार जर आई, वारवार जार आई ऐसी नीच खरी है॥ वारवार वार चाहै वारवार वार चाहै, वारवार चार चाहै मानो चार दरी है, वारवार धोखो खाहि वारवार कहै काहि, वारवार पोषै ताहि वारबुधि करी है॥ ६॥

अपनी कमाई भैया पाई तुम यहां आय, अब कछु सोच किये हाथ कहा परि है। तब तो विचार कछु कीन्हों नाहिं बंधमैं, याके फल उदै आय हमै ऐसे करि है॥ अब पछिताये कहा होत है अज्ञानी जीव, भुगते ही बनै कृतिकर्म कहूं टरि है। आगेको संभारिकैं विचारि काम वही करि, जातैं चिदानंद फंद फेरकै न परि है॥ ७॥

नाम मात्र जैनी पै न सरधान शुद्ध कहूं, मूँडके मुँडाये कहा सिद्धि भई बावरे। काय कृश किये कछू कर्म तौ न कृश होहिं, मोह कृश करिवेको भयो तो न चावरे॥ छाँड्यो घरवार पै न छांड्यो घरवार कोऊ, वार वार ढूंढै धन वनै कहू दावरे। कलि-युगके साधुकी वडाई कहा केती कीज, रात दिना जाके भाव रहैं हाव हावरे॥ ८॥

सवैया.

हे मन नीच निपट निरर्थक, काहेको सोच करै नित कूरे।
तू कितहू कितहू पर द्रव्य है, ताहिकी चाह निशा दिन झूरे।
आवत हाथ कछू शठ तेरे जु, बांधत पाप प्रमाण न पूरे।
आगेको वेलि बढै दुखकी कछु, सूझत नाहिं किधों भयो सूरे॥९॥

छप्पय छंद.

शीश गर्व नहिं नम्यो, कान नहिं सुनै बैन सत ॥
नैन न निरखे साधु, बैनतैं कहे न शिवपति ॥
करतैं दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनो ॥
पेट भरयो करि पाप, पीठ परतिय नहिं दीनो ॥
चरन चले नहिं तीर्थ कहूं, तिहि शरीर कहा कीजिये ॥
इमि कहै श्याल रे श्वान यह! निंद निकृष्ट न लीजिये ॥१०॥

सवैया (मात्रिक) ।

मनवचनकाय योग तीनहूंमों, सब जीवनको रक्षक होय ॥
झूठ वचन न बोलै कबहू, विना दियें कछु लेय न जोय ॥
शीलव्रतहिं पालै निरदूषन, दुविध परिग्रह रंच न कोय ॥
पंच महाव्रत ये जिन भाषित, इहि मग चलै साधु है सोय ॥११॥

कवित्त.

पेटहीके काज महाराजजूको छांड देत: पेटहीके काज झूंठ जंपन बनायकें । पेटहीके काज राव रंकको बखान करै, पेटहीके काज तिन्हें मेरु कहै जायकें ॥ पेटहीके काज पाप करत डरात नाहिं, पेटहीके काज नीच नवै शिर नायकें । पेटहीके काजको खुशामदी अनेक करै, ऐसे मूढ पेट भरै पंडित कहायकें ॥१२॥

छप्पय.

वीतरागके बिंब मेय, समदृष्टी करई ॥
अष्टक द्रव्य चढाय, थाल भरि आगे धरई ॥
पूजा पाठ प्रमान, जाप जप ध्यानहिं ध्यावै ॥
अचल अंग थिरभाव, शुद्ध आतम लौ लावै ॥

मंजार निरखि नैवेधको, मर्कट फल इच्छा धरहि।
तंदुलहिं चिरा पुष्पहिं भमर, एक थाल भुंजन करहि।१३।

मात्रिक कवित्त.

जे जिह काल जीव मत ग्राही, किरिया भाव होहिं रस रच ।
कर करनी निज मन आनंदै, वांछा फल चिंतहिं दिन रत्त ॥
रहित विवेक सु ग्रंथ पाठ कर, झार धूर पद तीन धरत्त ॥
तिनको कहिये औगुन थानक चक्री घरमें नृपति भरत्त ।

कवित्त.

केई केई वेर भये भूपर प्रचंड भूप, बडे बडे भूपनके देश छीनि लीने हैं । केई केई वेर भये सुर भौनवासी देव, केई केई वेर तो निवास नर्क कीने हैं ॥ केई केई वेर भये कीट मलमूत माहिं, ऐसी गति नीच वीच सुख मान भीने हैं। कौडीके अनंत भाग आपन विकाय चुके, गर्व कहा करे मूढ ! देखि ! हग दीने हैं ॥ १५ ॥

जब जोग मिल्यो जिनदेवजीके दरसको, तब तो संसार कछु करी नाहिं छतियां । सुनि जिनवानी पै न आनी कहूं मन माहिं ऐसो यह प्रानी यों अज्ञानी भयो मातियां ॥ स्वपर विचारको प्रकार कछु कीन्हों नाहिं, अब भयो बोध तब झूरे दिन रतियां । इहां तो उपाय कछु बनै नाहिं संजमको, वीति गयो औसर बनाय कहैं बतियां ॥ १६ ॥

छप्पय.

जहां जपहिं नवकार, तहां अघ कैसे आवें ।
जहां जपहिं नवकार, तहां व्यंतर भज जावें ॥

जहां जपहिं नवकार, तहां सुख संपति होई ।
जहां जपहिं नवकार, तहां दुख रहै न कोई ॥
नवकार जपत नव विधि मिलैं, सुख समूह आवै सरब ।
सो महा मंत्र शुभ ध्यानसों, 'भैया' नित जपवो करव॥१७

दोहा.

सीमंधर स्वामी प्रमुख, वर्त्तमान जिनदेव ॥
मन वच शीस नवायके, कीजे तिनकी सेव ॥ १८ ॥
महिमा केवल ज्ञानकी, जानत है श्रुतज्ञान ॥
तातें दुहू बराबरी, भाषें श्री भगवान ॥ १९ ॥
जितनो केवल ज्ञान है, तितनो है श्रुतज्ञान ॥
नाम भिन्न यातें कह्यो, कर्म पटल दरम्यान ॥ २० ॥
विन कषायके त्यागतें, सुख नहिं पावै जीव ॥
ऐसे श्रीजिनवर कही, वानी माहिं सदीव ॥ २१ ॥
जो कुदेवमें देव बुधि, देव विषै बुधि आन ॥
जो इन भावन परिणवे, सो मिथ्या सरधान ॥ २२ ॥
जैसे पट[1]को पेखनो, तैसो यह संसार ॥
आय दिखाई देत है, जात न लागे बार ॥ २३ ॥
त्याग विना तिरबो नहीं, देखहु हिये विचार ॥
तूंबी लेपहिं त्यागती, तब तरि पहुंचे पार ॥ २४ ॥
त्याग बडो संसार में, पहुंचावै शिवलोक ॥
त्यागहितें सब पाइये सुख अनंतके थोक ॥ २५ ॥
सुगुरु कहत है शिष्यको, आपहि आप निहार ॥
भले रहे तुम भूलिकें, आपहि आप विसार ॥ २६ ॥

१ पटबीजना (खद्योत)।

जो घर तज्यो तो कहा भयो, राग तज्यो नहिं वीर ॥
सांप तजै ज्यों कंचुकी, विष नहिं तजै शरीर ॥ २७ ॥
भरतक्षत्र पंचम समय, साधू परिग्रहवंत ॥
कोटि सात अरु अर्ध सब, नरकहिं जांय परंत ॥ २८ ॥
देत मरन भव सांप इक, कुगुरु अनंती वार ॥
वरु सांपहिं गहि पकरिये, कुगुरु न पकर गंवार ॥ २९ ॥
वाघ सिंहको भय कहा एक वार तन लेय ॥
भय आवत है कुगुरुको, भवभव अति दुख देय ॥ ३० ॥
हगके दोष न छूटहीं, मृग जिमि फिरत अजान ॥
धृग जीवन या पुरुषको, भृगुके दाम[1] समान ॥ ३१ ॥
केवलज्ञान स्वरूप मय, राजत श्री जिनराय ॥
वंदत हों तिनके चरन, मन वच शीस नवाय ॥ ३२ ॥
कर्मनके वश जीव सब, भ्रमत जगतके माहिं ॥
जे कर्मनको वश किय, ते सब शिवपुर जाहिं ॥ ३३ ॥

इति फुटकर विषय.

अथ परमात्मशतक लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, परम पुरुष आराधि ॥
कहों कछू संक्षेपसों, केवल ब्रह्म समाधि ॥ १ ॥
सकल देवमें देव यह, सकल सिद्धमें सिद्ध ॥
सकल साधुमें साधु यह, पेख[2] निजातमरिद्ध ॥ २ ॥

---

१ एकाक्षी (काना)

२ यह निजातम की समृद्ध सम्पूर्ण देवोंमें देव, सम्पूर्ण सिद्ध पर-

सारे विभ्रम मोहके, सारे जगत मझार ॥
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहिं विसार ॥ ३ ॥

सोरठा.

पीरे होहु सुजान पीरे कारे ह्वै रहे ॥
पीरे तुम बिन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ ॥ ४ ॥
विमल रूप निज मानि, विमल आन तू ज्ञानमें ॥
विमल जगतमें जानि, विमल ममलतातें भयो ॥ ५ ॥
उजरे भाव अज्ञान, उजरे जिहतें बंध थे ॥
उजरे निरखे भान, उजरे चारहु गतिनतें ॥ ६ ॥

मात्माओंमें सिद्ध और सम्पूर्ण साधुओंमें साधु हैं इससे हे भव्य उस निजात्म रिद्धिको पेख अर्थात् देख ॥२॥

(सारे) सम्पूर्ण जगतमे जो मोहके (सारे) सब विभ्रम हैं, तुम (सारे) उत्तम उत्तम गुणोंको विसारके उन्हींके (सारे) सहारे अर्थात् आश्रय पडे हो ॥३॥

हे सुजान ! (पीरे) पियरे अर्थात प्यारे हो. (पीरे) दुःखित (कारे) क्यों हो रहा है, और तू विना ज्ञानके ही (पीरे) पीडे अर्थात दुःखित हुआ है, इसलिये अब वुद्धिरूपी अमृत को (पीरे) पान कर ॥४॥

हे विमल आत्मन् ! अपना (विमल) कर्मों से रहित स्वरूप मान करके (तू ज्ञानमे आन) ज्ञानको प्राप्त हो, (विमल) विशेष मलरहित सिद्ध संसारमंसे ही जानो, क्योंकि विमल मलसहितसे होता है, भावार्थ मोक्ष ससारपूर्वकही होता है ॥५॥

हे आत्मन् ! वह अज्ञानभाव (उजरे) उजडे अर्थात विनाश

सुमरहु आतम ध्यान, जिहि सुमरे सिधि होत है ॥
सुमरहिं भाव अज्ञान, सुमरन से तुम होतहो ॥ ७ ॥

दोहा.

मैनकाम जीत्यो वली, मैनकाम रस लीन ॥
मैनकाम अपनो कियो, मैनकाम आधीन ॥ ८ ॥
मैनासे तुम क्यों भये, मैनासे सिघ होय ॥
मैनाहीं वा ज्ञानमें, मैनरूप निज जोय ॥ ९ ॥
जोगी सो ही जानिये, वसे संजोगगेह ॥
सोई जोगी जोग है, सब जोगी मिरतेह ॥ १० ॥

को प्राप्त हुए जिनसे आत्मा (उजरे) उजले अर्थात प्रगट रूपसे बंद हो रहा था, और जब ज्ञान सूर्य (उजरे) उज्वल देखे गये, तब चारों गतियोंसे (उजरे) छूटे। भावार्थ सिद्ध पदको प्राप्त हुए ॥६॥

हे भाई! ध्यानमें आत्माका स्मरण करो, जिसके स्मरणसे कार्य सिद्ध होता है, अथवा जिससे सिद्ध होते हो, अज्ञान भावोंके (सुमरेहिं) विलकुल नष्ट होजाने से तुम (सुमरनसे) स्मरण करनें योग्य (परमात्मा) हो सकते हो ॥७॥

मैं बलवान कामको न जीत सका और (मैंनकाम) मैं 'नकाम' व्यर्थ रसलीन अर्थात् विषयाशक्त हुआ. मैनकाम कहिये कामदेवके आधीन होकर मैंने अपना काम न किया अर्थात् आत्मकल्याण नहिं किया ॥८॥

(पी) हे प्रिय ! तुम (तारी) ध्यानको भूल करके अथवा तारी कहिये मोहरूपी नसा पी कहिये पिया और (तारीनन) संसार की अथवा मोहकी रीतियों में लवलीन हो रहेहो, इसलिये हे प्रवीण, तुम ज्ञानकी (तारी) ताली अर्थात कुजी (चाबी) 'खोजो' तलाश करो जो (तारी)

---

१ तेरहवे गुणस्थानमें। २ योग्य है.

तारी[1] पी तुम भूलके, तारीतन रसलीन ॥
तारी खोजहु भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥ ११ ॥
जिने[2] भूलहु तुम भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥
जिने[3] भूलहि तुम भूलहो, जिन शासनको मर्म ॥ १२ ॥
फिरे वहुत संसारमें, फिरि फिरि थाके नाहिं ॥
फिरै[4] जबहिं निजरूपको, फिरे न चहुं गति माहिं ॥ १३ ॥
हरी खात हो बावरे हरी तोरि मति कौन ॥
हरी भजो आपौ तजो, हरी रीति सुख हौन ॥ १४ ॥

द्व्यक्षरी दोहा.

जैनी जाने जैन नै, जिन जिन जानी जैन ॥
जेजे जैनी जैन जन, जानैं निज निज नैन ॥ १५ ॥

तुम्हारी (पत) लज्जा है अथवा तुम प्रवीण और तारीपति कहिये ज्ञानरूपी तारीके पतिहो ॥१०॥

(१४) हे (बावरे) भोले जीव ! तेरी मति किसने हरली है, जो तू (हरी) (सचित्त वस्तुएँ) खाता है, अब आपो (ममत्व) छोड करके (हरी) सिद्ध भगवान को भजो अर्थात् ध्यावो. यही सुख देनेवाली (हरी) ताजी अथवा उत्तम रीति है.

(१५) जैनी जैनशास्त्रोक्त नयोंको जानता है, और (जिन) जिन्हों ने उन नयोंको [जिन] नहीं जानीं, उनकी [जै न] जय नहीं होती है. इसलिये [जेजे] जो जो [जैनजन] जिनधर्मके दास जैनी है वे अपनी २ [नैन] नयोंको अवश्य ही जानें अर्थात् समझें.

---

(१) ताडका रस—नशा. (२) मत (निषेधार्थ.) (३) जिनेश्वर भगवानको. (४) पलटै, सन्मुख होवै.

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास ॥
परमारथ परिचय विना, प्राणी रहै उदास ॥ १६ ॥
परमारथ जानें परम, पर[2] नहिं जाने भेद ॥
परमारथ निज परखिबो, दर्शन ज्ञान अभेद ॥ १७ ॥
परमारथ निज जानिबो, यह[3] परमको राज ॥
परमारथ जाने नहीं, कहा परम किहिं काज ॥ १८ ॥
आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥
आप[4] आप जाने नहीं, आप प्रगट क्यों होय ॥ १९ ॥
सब सुख सांचेमें वसै, सांचो है सब झूठ ॥
सांचो झूठ वहायके, चलो जगतसों रूठ ॥ २० ॥
जिनकी महिमा जे लखें, ते जिन[5] होंहिं निदान ॥
जिनवानी यों कहत है, जिन जानहु कछु आन ॥ २१ ॥
ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञान माहि उर आन[6] ॥
तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान ॥ २२ ॥
चेतन रूप अनूप है, जो पहिचानें कोय ॥
तीन लोकके नाथकी, महिमा पावे सोय ॥ २३ ॥
जिन पूजहि जिनवर नमहिं, धरहिं सुथिरता ध्यान ॥
केवलपदमहिमा लखहिं, ते जिय सम्यकवान ॥ २४ ॥

(२०) सम्पूर्ण सुख साचेमें अर्थात् सच्च स्वरूपमें है, और सांचा अर्थात् पौद्गलिक देहरूपी सांचा बिलकुल झूठा अर्थात् अस्थिर है इसलिये, (सांचो झूट) इस देहरूपी झूटे, साचेको त्याग करके, संसारसों [रूठ] रुष्ट होकर चल अर्थात मोक्ष प्राप्त कर.

[1] दुखित २ परन्तु. ३ आतमा. ४ आप अपनेंको नहीं जानता. ५ तीर्थंकर. ६ हृदयमें ज्ञान लाकरके.

मुद्दत लों परवश रहे, मुद्दत करि निज नैन ॥
मुद्दत आई ज्ञानकी, मुद्दतकी, गुरु बैन ॥ २५ ॥
ज्ञान दृष्टि धरि देखिये, शिष्ट[1] न यामहिं कोय ॥
इष्ट[2] करै पर वस्तुसों, भिष्ट[3] रीति है सोय ॥ २६ ॥
तुम तो पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव ॥
लिप्त भये गोरस[4] विषै, ताको कौन उपाव ॥ २७ ॥
वेदभाव[5] सब त्यागि करि, वेद[6] ब्रह्मको रूप ॥
वेद[7] माहिं सब खोज[8] है, जो वेदे[9] चिद्रूप ॥ २८ ॥
अनुभवमें जोलों नहीं, तोलों अनुभव नाहिं ॥
जे अनुभव जानें नहीं, ते जी अनुभव माहिं ॥ २९ ॥
अपने रूप स्वरूपसों, जो जिय राखै प्रेम ॥
सो निहचै शिवपद लहै, मनसा[10]वाचा नेम ॥ ३० ॥

हे आत्मन्! तुम अपने नेत्रोंको (मुद्दत) मुद्रित अर्थात् बद करके (मुद्दतलों) बहुत समय तक परवश अर्थात् पुद्गलके वशमें रहे; परंतु जब ज्ञानकी (मुद्दत) अवधि आई, तब गुरुके वचनोंने (मुद्दत) मदत अर्थात् सहायता की। २५।

जबतक अनुभव=' अणु—थोडे ' भव=ससारमें नहीं अर्थात जबतक थोडे भव बाकी न रहें, तबतक ' अनुभव ', अर्थात सम्यक ज्ञान नहीं है, क्योंकि जो अनुभव (सम्यक ज्ञान) नहीं जानते हैं, वे ' अनुभव ', अर्थात पीछे ससारमे ही पडे रहते हैं, । २९ ।

१ उत्तम. २ प्यार. ३ ' भृष्ट ' खराब. ४ ' गो ' इन्द्रियोंके ' रस ' विषयमे. ५ स्त्रीपुनपुसकभाव. ६ वेद अर्थात् ज्ञान. ७ शास्त्रोंमे. ८ पता. ९ जो-यदि चिद्रूपको जानता हो, तो. नहीं वो कुछ नहीं. १० मनसे और वचनसे, नेम-नियम.

प्रश्नोत्तर.

षट दर्शनमें को शिरैं ? कहा धर्मको मूल ? ॥
मिथ्यातीके ह्वै कहा ? 'जैन' कह्यो सु कबूल ॥ ३१ ॥
वीतराग कीन्हों कहा ? को चन्दा की सैन ? ॥
धामद्वार को रहतु है ? 'तारे' सुन शिख बैन ॥ ३२ ॥
धर्मपन्थ कौनें कह्यो ? कौन तरै संसार ? ॥
कहो रंकवल्लभ कहा ? 'गुरु' बोले वच सार ॥ ३३ ॥
कहो स्वामि को देव है ? को कोकिल सम काग ? ॥
को न नेह सज्जन करै ? सुनहु शिष्य 'विनराग' ॥ ३४ ॥
गुरु सङ्गति कहा पाइये ? किहि विन भूलै भर्म ? ॥
कहो जीव काहे मयी ? 'ज्ञान' कह्यो गुरु मर्म ॥ ३५ ॥
जिनैं पूजैं ते हैं किसे ? किहतें जगमें मान ? ॥
पंचमहाव्रत जे धरैं, 'धन' बोले गुरु ज्ञान ॥ ३६ ॥
छिन छिन छीजै देह नर, कित ह्वै रहो अचेत ॥
तेरे शिरपर अरि चढ्यो, 'काल' दमामों देत ॥ ३७ ॥
जो जन परसों हित करैं, निज सुधि सबै विसारि ॥
सो चिन्तामणि रत्न सम, गयो जन्म नर हारि ॥ ३८ ॥
जैसे प्रगट पतङ्गके, दीप माहिं परकाश ॥

छहों दर्शनमे जैनदर्शन श्रेष्ठ है, धर्मोंका मूल है, मिथ्यातीके जे न अर्थात जैं (विजय) नहीं होती। ३१।

---

१ घर. २ गरीबका वल्लभ अर्थात प्यारा गुरु (भारी) पदार्थ होता है. ३ जो कोयल विना राग (मोटी आवाज) की हो वह काग समान ही है. ४ जो जिन भगवानकी पूजा करते हैं वे धन अर्थात धन्य हैं. ५ सूर्य.

तैसे ज्ञान उदोतसों, होय तिमिरको नाश ॥ ३९ ॥
चार माहिं जोलों फिरै, धरै चारसों प्रीति ॥
तोलों चार लखै नहीं, चार खूंट यह रीति ॥ ४० ॥
जे लागे दशवीससों, ते तेरह पंचास ॥
सोरह वासठ कीजिये, छांड चारको वास ॥ ४१ ॥
विधि कीजे विधि भाव तज, सिद्ध प्रसिद्ध न होय ॥
यहै ज्ञानको अंग है, जो घट बूझै कोय ॥ ४२ ॥
वार[1] व्यसन को नृपति जो, प्रभु जूआ तो ज्ञान ॥
तुम राजा शिवलोकके, वह दुरमतिकी खान ॥ ४३ ॥
आप अकेलो ब्रह्ममय, पर्यो भरमके फंद ॥
ज्ञानशक्ति जानै नहीं, कैसे होय स्वछंद ॥ ४४ ॥
शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनन्त ॥
शिवसमाधिमें रम रहे, शिवमूरति भगवंत ॥ ४५ ॥

---

(४०) जीव जब तक चार माहि अर्थात् चार गतियों (देव, मनुष्य नरक, तिर्यञ्च) मे है और चार (क्रोध, मान, माया, लोभ) में प्रीति रखता है, तब तक चार अनन्त चतुष्टय (अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तबल, अनतवीर्य) को प्राप्त भी नहीं कर सकता है, अर्थात् कर्मोंसे रहित नहीं हो सकता है, यह चार खूटकी रीति है।

(४१) जो दश×वीस=तीस कहिये तृष्णासे अथवा स्त्रीसे अनुरक्त हुए, वे तेरह×पचास–कहिये ते-सठ हैं अर्थात् मूर्ख है इसलिये सोलह+बासठ+अठहत्तर कहिये आठ कर्मोको हतकर तर कहिये तिरो और चार गतियोंका वास छोड दो। इससे संख्या शब्दोंसे श्लेष रूप दूसरा अर्थ ग्रहण कर कविने चतुराई दिखाई है.

(१) सात, क्योंकि, सोम आदि वार सात ही हैं।

बालापन गोकुल बसे, यौवन मनमथ राज ॥
वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुबजा काज ॥ ४६ ॥
दिना दशकके कारणे, सब सुख डारयो खोय ॥
विकल भयो संसारमें, ताहि मुक्ति क्यों होय ॥ ४७ ॥
या माया सों राचिके, तुम जिन भूलहु हंस ॥
संगति याकी त्यागिके, चीन्हों अपनो अंस ॥ ४८ ॥
जोगी न्यारो जोगतें, करै जोग सब काज ॥
जोग जुगत जानें सबै, सो जोगी शिवराज ॥ ४९ ॥
जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकाश ॥
सो अविनाशी घट विषें, कीन्हों आय निवास ॥ ५० ॥
केवल रूप स्वरूपमें, कर्मकलङ्क न होय ॥
सो अविनाशी आतमा, निजघट परगट होय ॥ ५१ ॥
धर्माधर्म स्वभाव निज, धरहु ध्यान उर आन ॥
दर्शन ज्ञान चरित्रमें, केवल ब्रह्म प्रमान ॥ ५२ ॥
निज चन्दाकी चाँदनी, जिहि घटमें परकाश ॥
तिहिं घटमें उद्योत है, होय तिमिरको नाश ॥ ५३ ॥

(४६) कृष्णजी बालापनमें गोकुलमें रहे यौवनमें मथुरामें, और फिर कुब्जा परस्त्रीके रसमे मग्न हो उसके द्वारे वृन्दावनमें रहे. ऐसी प्रकार हे जीव ! तू बालापनमें तो 'गोकुल, अर्थात इन्द्रियोंके कुल समूहमें अथवा उनकी केलिमें रहा, और जवानीमें मनमथ अर्थात कामदेवके राज्यमें रहा अर्थात वशमें रहा, और पीछे वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमें रचा. काहेके लिये, ' द्वारे कुबजाकाज, कहिये द्वार जो आस्रव उसके कबजेमें आनेको अथवा द्वार जो मोक्षका उसको कुब्ज अर्थात बन्द करनेकेलिये,

१ आतमा २ मन वचन कायके योगसे. ३ योग्य (उचित). ४ योग ध्यान ५ मोक्ष.

जित देखत तित चांदनी, जब निज नैनन जोत[1] ॥
नैन मिचैत पेखै नहीं, कौन चांदनी होत[2] ॥ ५४ ॥
ज्ञान भान[3] परगट भयो, तम अरि नासे दूर ॥
धर्म कर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहि पूर ॥ ५५ ॥
जे तनकी संगति किये, चेतन होत अजान ॥
ते तनसों ममता धरै, अपुनो कौन सयान[4] ॥ ५६ ॥
जे तनसों दुख होत है, यहै अचंभो मोहि ॥
ते तनसों ममता धरै, चेतन! चेत न तोहि ॥ ५७ ॥
जा तनसों तू निज कहै, सो तन तौ तुझ नाहिं ॥
ज्ञान प्राण संयुक्त जो, सो तन तौ तुझ माहिं ॥ ५८ ॥
जाके लखत यहै लख्यो, यह मै यह पर होय ॥
महिमा सम्यक् ज्ञानकी, विरला बूझै कोय ॥ ५९ ॥
छहों द्रव्य अपने सहज, राजत हैं जगमाहिं ॥
निहचै दृष्टि विलोकिये, परमें कबहू नाहिं ॥ ६० ॥
जड चेतन की भिन्नता, परम देवको राज ॥
सम्यक होत यहै लख्यो, एक पंथ द्वै काज ॥ ६१ ॥
समुझै पूरण ब्रह्मको, रहै लोभ लौ लाय ॥
जान बूझ कूए परै, तासों कहा बसाय ॥ ६२ ॥
जाकी प्रीतिप्रभावसों, जीत न कबहू होय ॥
ताकी महिमा जे धरैं, दुरबुद्धी जिय सोय ॥ ६३ ॥
जाकी परम दशाविषैं, कर्म कलङ्क न कोय ॥
ताकी प्रीतिप्रभावसों, जीत जगतमें होय ॥ ६४ ॥

१ ज्योतिः—प्रकाश २ बन्द होते. ३ सूर्य. ४ चातुर्य. ५ ममता.

अपनी नवनिधि छांडि कैं, मांगत घर घर भीख ॥
जान बूझ कूए परै, ताहि कहां कहा सीख ॥ ६५ ॥
मूढ मगन मिथ्यातमें, समुझै नाहिं निठोल[१] ॥
कानी कौडी कारणें, खोवै रतन अमोल ॥ ६६ ॥
कानी कौडी विषय सुख, नरभव रतन अमोल ॥
पूरव पुन्यहिं कर चढ्यो. भेद न लहैं निठोल ॥ ६७ ॥
चौरासी लखमें फिरै, रागद्वेष परसङ्ग ॥
तिनसों प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानको अङ्ग ॥ ६८ ॥
चल चेतन तहां जाइये, जहां न राग विरोध ॥
निज स्वभाव परकाशिये, कीजे आतम बोध ॥ ६९ ॥
तेरे बाग[३] सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल ॥
ताहि विलोकहु परम[४] तुम, छांडि आल जंजाल ॥ ७० ॥
छहों द्रव्य अपने सहज, फले फूल सुरंग ॥
तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञानको अंग ॥ ७१ ॥
सांच विसार्यो भूलके करी झूठसों प्रीति ॥
ताहीतें दुख होत है, जो यह गही अनीति ॥ ७२ ॥
हित शिक्षा इतनी यहै, हंस सुनहु आदेश ॥
गहिये शुद्ध स्वभावको, तजिये कर्म कलेश ॥ ७३ ॥

सोरठा.

ज्यों नर सोवत कोय, स्वप्न माहिं राजा भयो ॥
त्यों मन मूरख होय, देखहि सम्पति भ्रमकी ॥ ७४ ॥
कहहु कौन यह रीति. मोहि बतावहु परम तुम ॥
तिन ही सों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं ॥ ७५ ॥

१ निठल्ला बेकाम मूर्ख. २ फूटी. ३ बगीचा ४ शुद्धात्मा.

अहो! जगतके राय, मानहु एती वीनती ॥
त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरममें ॥ ७६ ॥
एहो! चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ॥
जो नरकहिं ले जाय, तिनहीमों राचे सदा ॥ ७७ ॥
तुम तौ परम सयान, परसों प्रीति कहा करी ।
किहि[1] गुण भये अयान, मोहि बतावहु सांच तुम ॥७८॥
कर्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ मानिये ॥
कहहु मुक्ति क्यों होय, जो इन मारग अनुसरैं ॥ ७९ ॥
मायाहीके फन्द, उरझे चेतनराय तुम ॥
कैसे होहु स्वछन्द, देखहु ज्ञान विचारिके ॥८०॥
एहो! परम सयान, कौन सयानप[2] तुम करी ॥
काहे भये अयान, अपनी जो रिधि छांडिके ॥ ८१ ॥
तीन लोकके नाथ, जगवासी तुम क्यों भये ॥
गहहु ज्ञानको साथ, आवहु अपने थलविषैं[3] ॥ ८२ ॥
तुम पूनों सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे ॥
परे पराये फन्द, चेतहु चेतनरायजू ॥ ८३ ॥
जानहिं गुण पर्याय, ऐसे चेतनराय हैं ॥
नैंनानि लेहु लखाय, एहो! सन्त सुजान नर ॥ ८४ ॥
सब कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें ॥
भेद न लहत निठोल[4], भूलत मिथ्या भरममें ॥ ८५ ॥

दोहा.

आन न मानहि औरकी, आनें उर जिनवैन ॥

(८६) जो और (अन्य धर्मवालों) की (आन) आज्ञा अथवा

1 किस कारण. २ चतुरता. ३ मोक्षस्थल. ४ मूर्ख.

आनन देखै परमको, सो आनै शिव ऐन ॥ ८६ ॥
'लो' गनको लागो रहे, 'भ'वजल बोरै आन ॥
ये द्वय अक्षर आदिके, तजहु ताहि पहिचान ॥ ८७ ॥
जित देखहु तित देखिये, पुद्गलहीसों प्रीत ॥
पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥ ८८ ॥
पुद्गलको कहा देखिये, धरै विनाशी रूप ॥
देखहु आतमसम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप ॥ ८९ ॥
भोजन जल थोरो निपट, थोरी नींद कषाय ॥
सो मुनि थोरे कालमें, वसहिं मुक्तिमें जाय ॥ ९० ॥
जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार ॥
चेतन अब किन चेतहू, नरभव लह अतिसार ॥ ९१ ॥
दुर्लभ दश दृष्टान्तसों, सो नरभव तुम पाय ॥
विषय सुखनके कारणे, सर्वस चले गँवाय ॥ ९२ ॥
ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय ॥
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ९३ ॥
देखहु तो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आह ।
सबै विनाशी देखिये, को तज गहिये काह ॥ ९४ ॥

लज्जा नहीं मानता है, अपने हृदय में भगवानके वचनोंको धारण करता है, और परम अर्थात् शुद्धात्माको 'आनन' मुख अर्थात् रूप अवलोकन करता है, वह यथार्थ मोक्षको प्राप्त करता है.

---

१ लोभ. २ अत्यन्त. ३ क्यों न ४ अब. ५ सर्वस्व. ६ दौडके

केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप ॥
सो अविनाशी आतमा, चिद्विलास चिद्रूप ॥ ९५ ॥
जैसो शिवखेतहिं[2] वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ ९६ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, रागद्वेषको संग ॥
जे प्रगटै निज सम्पदा, शिवसुख होय अभंग ॥ ९७ ॥
तू अनन्त सुखको धनी, सुखमय तोहि स्वभाव ॥
करते छिनमें प्रगट निज, होय बैठ शिवराव ॥ ९८ ॥
ज्ञान दिवाकर[3] प्रगटतें, दश दिशि होय प्रकाश ॥
ऐसी महिमा ब्रह्मकी, कहत भगवतीदास ॥ ९९ ॥
जुगल चन्दकी जे कला, अरु संयमके भेद ॥
सो संवत्सर जानिये, फाल्गुन तीज सुपेद ॥ १०० ॥

इति परमात्मशतकम्.

१०० (जुगलचन्दकी जे कला) चन्द्रकी सोलह कलाके जो जुगल (दूने) बत्तीस और संयम (नियम) के भेद सत्रह अर्थात १७३२ सम्बत्की फाल्गुन सुपेद (सुदी) तीज— "फाल्गुनशुक्ल तृतीया सम्बत् १७३२ विक्रमाब्दको यह परमात्मशतक बनाया."

१ सिद्धपरमात्मा. २ मोक्षक्षेत्रमे. ३ सूर्य.

अथ चित्रबद्धकविता.

अनुष्टुपछन्द,

आपा थान न था पाआ ।
चार मार रमा रचा ॥
राधा सील लसी धारा ।
साद साम मसा दसा ॥ १ ॥

पादानुपादगतागत चित्रम्.

आ	पा	था	न
चा	र	मा	र
रा	धा	सी	ल
सा	द	सा	म

दोहा.

पर्म सेव पर सेव तज, निज उधरन मन धारि ॥
धर्म सेव वर सेव सज, निज सुधरन घन धारि ॥ २ ॥

त्रिपदीबद्धचित्रम्.

प	से	प	से	त	नि	उ	र	म	धा
र्म	व	र	व	ज	ज	ध	न	न	रि
ध	से	व	से	स	नि	सु	र	घ	धा

त्रिपदीपंचकोष्टकं.

पर्म	पर	तज	उध	मन
सेव	सेव	निज	रन	धारि
धर्म	वर	सज	सुध	धन

अन्य सप्तकोष्टकंत्रिपदी.

पर्म	वप	सेव	जनि	उध	नम	धा
से	र	त	ज	र	न	रि
धर्म	वर	सेव	जिन	सुध	नध	धा

दोहा.

जैन धर्म में जीव की, कही जात तहकीक ॥
अैन धर्म में जीत की, लही बात यह ठीक ॥ ३ ॥

एकाक्षर त्रिपदीबद्ध चक्रम्.

जै	ध	में	व	क	जा	त	की
न	र्म	जी	की	ही	त	ह	क
अै	ध	में	त	ल	बा	य	ठी

कपाटबद्ध चक्रम्.

जै	न		न	अै
ध	र्म		र्म	ध
में	जी		जी	में
व	की		की	त
क	ही		ही	ल
जा	त		त	वा
त	ह		ह	य
की	क		क	ठी

अश्वगतिबद्ध चित्रम्

जै	न	ध	र्म	में	जी	व	की
क	ही	जा	त	त	ह	की	क
अै	न	ध	र्म	में	जी	त	की
ल	ही	वा	त	य	ह	ठी	क

छन्द (मात्रा १०) अनुप्रासरहित.

न तनमें मैंन तन, तहेम सु सुमहेत ॥
न मनमें मैंन मन, मैं सु मैं हों हों मै सु मै ॥ ४ ॥

सर्वतोभद्रगति चित्रम्

न	त	न	मै	मै	न	त	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	म	न	मैं	मै	न	म	न
मै	सु	मै	हों	हों	मैं	सु	मै
मै	सु	मै	हों	हों	मै	सु	मै
न	म	न	मै	मै	न	म	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	त	न	मै	मै	न	त	न

मात्रिक सवैया (३२ मात्रा)

या मनके मान हरनको भैया, तू निहचै निज जानि दया
को हित तो विचारत क्यों नहिं, रागरुद्वेष निवारि नया ॥
भर्मादिक भाव विछेद करो, ज्यों तोहि लोपन प्रकाश भया
यामन मानह कोन भलो, नन लोभ न कोह न मान मया ॥ ५ ॥

पर्वतबद्ध चित्रम्.

या
म
न
के मा न
ह र न को भै
या तू नि ह चै नि ज
जा नि द या को हि त तो हि
वि चा र त क्यों न हिं रा ग रु द्वे
ष नि वा रि न या भ र्मा दि क भा व वि
छे द क रो ज्यों तो हि लो प न प्र का श भ या
न

दोहा.

जैन धर्ममे जीवकी. कही जात तहकीक ॥
अैन धर्ममे जीत की, लही बात यह ठीक ॥ ३ ॥

चटाई बद्ध चित्रम्

दोहा— करमनसों कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान ॥
तान स्वबलसों परम तू, मारो मनमथ जान ॥ ६ ॥

चक्र बद्ध चित्रम्

दोहा.

परम धरम अवधारि तू, परसंगति कर दूर ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, सुख संपति रहै पूर ॥ ७ ॥

धनुषबद्धचित्रम्.

आभीर छंद.

रामदेव चित चाहि । सामदेव नित गाहि ॥

जामदेव मिल पाहि । तामदेव हित ठाहि ॥८॥

सर्वतो भद्रगति चित्रम्.

दोहा– आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप ॥

काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप टप टाप ॥९॥

विंशतिपत्र कमलाकार बद्ध चित्रम्

दोहा.

आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप ॥

काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप टप टाप ॥१॥

हारबद्ध चित्रम्.

नाग बद्ध चित्रम्

षट्पद.
श्री रिषभ अजित संभव अभिनदन ।
सुमति नलिन सुपार्श्व चन्द्रप्रभ वदन ॥
सुविध शीतल श्रास वासु पूज्य अरि गजन ।
नाथ जगत भय हरै विमल अभि रंजन ॥
सु अनंत धर्म जिनचन्द शांति अरि कुंति मलि ।
वंदि मूलि मुनि न मिने मि नरपास श्री वीरबलि ॥
॥१०॥

दोहा

अरि परि हरि अरि हेरि हरि, घेरि घेरि अरि टारि ॥
करि करि थिरि थिरि धारि धरि, फिरि फिरि तरि तरि तारि ॥११॥

चामराकार बद्ध चित्रम्.

(क्रमन्तानार पूर्ववत् जानना)

द्वितीय नाग बद्ध

षट्पद.
तजहु पंचरिपु चलन,
रचहु निज परजी । पापरीत पर
हरहु रटत किम वरजी ।। मन धर
पर्म स्वरूप, देख अदभुत वदन । पूरन
निज गुन भरयो, सुमति जीते मदन ।।
यहु एक बहुत कर्म न मिलें, छिन २
नृत्य करंत । त्यहि जान पंच पद सुम-
रिलै, सुभवसागर हितरंत ।।
१२
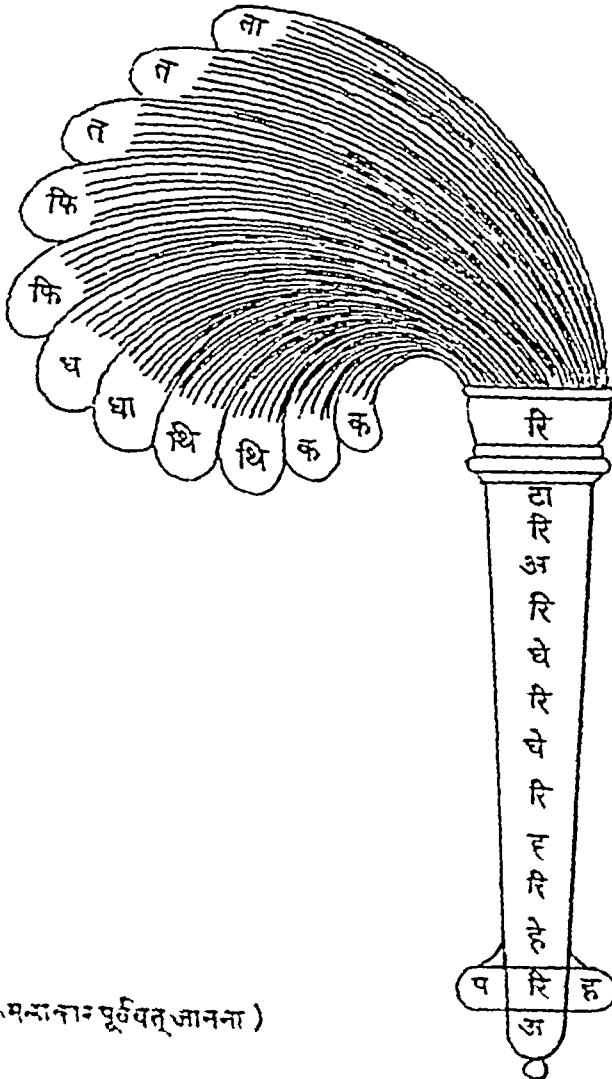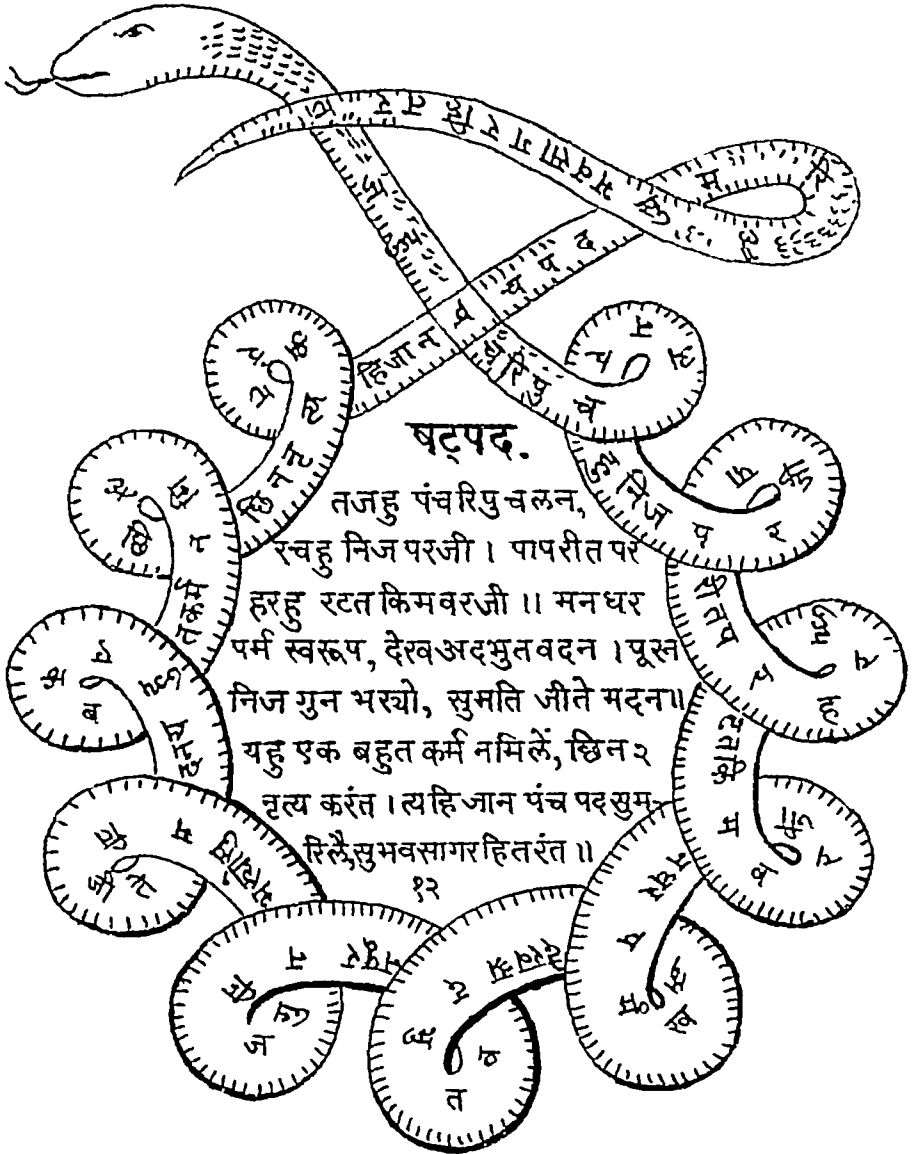
तृतीय नागबद्ध - वहिर्लापिका.
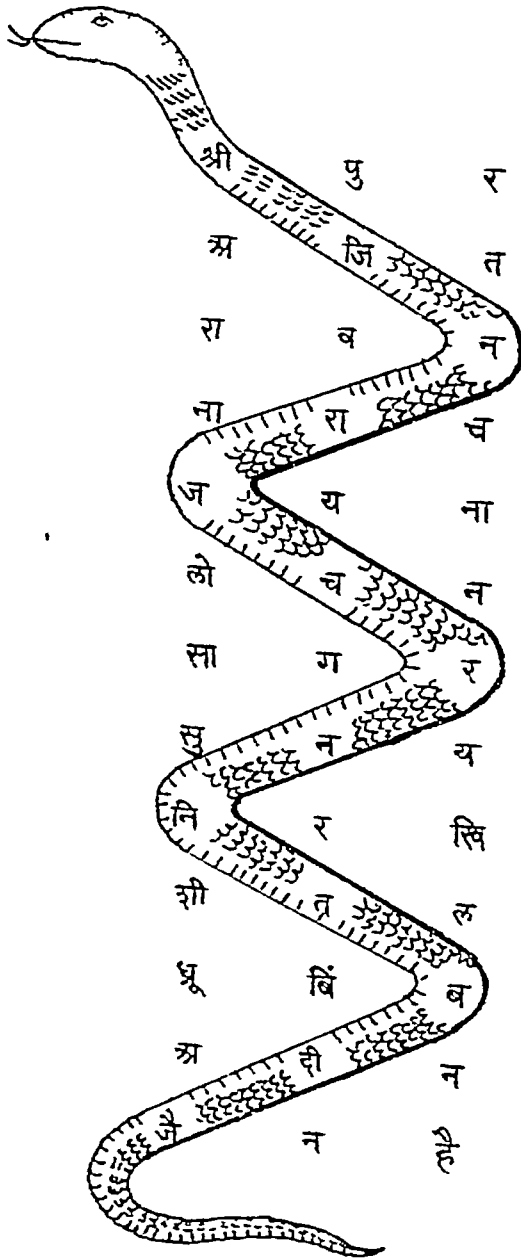
षट्पद.

कहा अंसको जनम ? नाम कहा दूजे जिनको ?। कौन सीय अपहरी ? कहो तीजो संहनको ?॥
दयावत कहा करै ? कौन वर्णादिक पेखै ?॥ को अति जल संग्रहै ? श्रवण गुण को कहु लेखै ?॥
साधु चलत किम धरणिपर ? भद्दलिपुर जिन कवन हुव ?। कवन अक्रित्तम ? कवन प्रभु ? कवन शिरोमणि धर्म तुव ?॥१३॥

अथ ग्रन्थकर्त्ता परिचय. चौपाई ।

जंबूद्वीप सु भारत वर्ष । तामें आर्य क्षेत्र उत्कर्ष ॥
तहां उग्रसेन पुर थान । नगर आगरा नाम प्रधान ॥१॥
तहां बसहिं जिनधर्मी लोक । पुण्यवन्त बहु गुणके थोक ॥
बुद्धिवन्त शुभ चर्चा करें । अखय भंडार धर्मको भरें ॥२॥
नृपति तहां राजै औरंग । जाकी आज्ञा वहै अभंग ॥
ईति भीति व्यापै नहिं कोय । यह उपकार नृपतिको होय ॥३॥
तहां जाति उत्तम बहु बसै । तामें ओसवाल पुनि लसै ॥
तिनके गोत बहुत विस्तार । नाम कहत नहिं आवै पार ॥४॥
सबतें छोटो गोत प्रसिद्ध । नाम कटारिया रिद्धि समृद्ध ॥
दशरथ साहु पुण्यके धनी । तिनके रिद्धि वृद्धि अति घनी ।५
तिनके पुत्र लालजी भये । धर्मवंत गुणधर निर्मये ॥
तिनके पुत्र भगवतीदास । जिन यह कीन्हों ब्रह्मविलास ॥६
जामें निज आतमकी कथा । ब्रह्मविलास नाम है यथा ॥
बुद्धिवंत हसियो मति कोय । अल्पमती भाषा कवि होय ॥७॥
भूल चूक निज नयन निहारि । शुद्ध कीजियो अर्थ विचारि ॥
संवत सत्रह पंचपचास । ऋतु वसंत वैशाख सुमास ॥८॥
शुक्लपक्ष तृतिया रविवार । संघ चतुर्विधको जयकार ॥
पढत सुनत सबको कल्यान । प्रगट होय निज आतम ज्ञान ॥९॥
तिहूं कालके जिन भगवान । वंदन करों जोरि जुग पान ॥
भैया नाम भगवतीदास । प्रगट होहु तसु ब्रह्मविलास ॥१०॥
बहुत बात कहिये कहा घनी । जीव यहै त्रिभुवनको धनी ॥
प्रगट होय जब केवल ज्ञान । शुद्ध स्वरूप यही भगवान ॥११॥

इति श्रीआगरानिवासी भैया भगवतीदासजीकृत ब्रह्मविलास सम्पूर्ण.

बालजैनग्रंथमाला।

इस ग्रंथमालामें जैन पाठशालाओंकी लाइब्रेरीमें रखने व पाठशालाओंमें समस्त बालक कन्याओंके पढने पढाने योग्य जैन साहित्यका सार व पठनक्रमकी पुस्तकें पवित्रप्रेसमें छपकर प्रकाशित होती रहैंगी तथा न्योछावर भी सुलभ रक्खी जायगी। इस मालाका सबसे प्रथम ग्रंथ-बालपद्मपुराण छपाया है। दूसरा-ग्रंथ दौलतरामजीकृत छहढाला अर्थसहित, तीसरा ग्रंथ-रत्नकरंडश्रावकाचार सरल अन्वय अर्थसहित नये ढगसे लिखवाकर छपाया है और चौथा ग्रंथ-द्रव्यसंग्रह भी मूल, प्राकृतका अन्वय, अर्थ, विशेषार्थ और प्रश्नावलीसहित बालकों-केलिये अति उपयोगी अत्यंत सरल और पदार्थोंका स्वरूप समझानेवाले दर्पणकी समान नया लिखवाकर छपाया है। न्योछावर रत्नकरंड श्रा. ।- और सबकी चार चार आने हैं। इसी प्रकार आदिपुराणसार, हरिवंशपुराणसार, पार्श्वपुराणसार आदि अनेक ग्रंथ प्रकाशित होते हैं। जो पाठशालायें वा बालक-दो रुपया मनिओर्डरसे भेजकर इस ग्रंथमालाके पक्के ग्राहक बन जायेंगे, उनको सब ग्रंथ पौणी न्योछावरसे भेजे जांयगे। सबका जुदा जुदा खाता लगाकर दो रुपये जमा कर लिये जांयगे और जो ग्रंथ तैयार होगा पोष्टेज लगाकर पेड रवाना करके पोष्टेजसहित उनके नांवें मांड दिया जायगा। जब कई ग्रंथ चले जानेपर दो रुपये खतम हो जांयगे तो हिसाब भेजकर फिर दो रुपये मगालेंगे। इस प्रकार करनेका कारण यह है कि चार आठ आनेकी पुस्तक प्रत्येक बार वी. पी. से भेजनेमें कमसे कम ।-) ।=) तो पोष्टेज ही लग जाता है। इस कारण दो

रुपये एक वार भेज देनेसे प्रत्येक पुस्तकपर आध आना वा एक आना ही डांक खर्च पडेगा। यही कारण है कि दो रुपये पेसगी भेजकर सबको ग्राहक बन जाना चाहिये।

रुपया भेजनेका पता—नेमिचंद बाकलीवाल,
मालिक—पवित्रजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,
ठि. चंदावाडी। पोष्ट—बंबई नं. ४.

—:०:—

यह ब्रह्मविलास नीचे लिखे ठिकानोंसे मिल सकता है।

१। पन्नालाल बाकलीवाल
मालिक—जैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय
ठि. चंदावाडी। पोष्ट-बंबई नं. ४

२। नेमिचंद बाकलीवाल
मालिक—पवित्र जैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय
ठि. चंदावाडी। बंबई नं. ४

३। शेठ रावजी सखाराम दोशी—जैन बुकडिपो
ठि. मंगलवारपेठ सोलापूर.

४। विहारीलाल जैन कठनेरा
मालिक—हिंदी जैन साहित्यप्रसारक कार्यालय
हीराबाग पोष्ट—बंबई नं. ४

५। मैनेजर—'श्रीधर' प्रेस, सोलापूर सिटी

पवित्र जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालयमें मिलनेवाले पवित्र जैनग्रंथ।

श्रीयुत पन्नालालजी बाकलीवालकृत

१	वालपद्मपुराण पद्मपुराणसार	।)
२	छहढाला अर्थ सहित दौलतरामजी कृत	।)
३	रत्नकरंड श्रावकाचार नवीन अन्वयार्थ सहित	।-)
४	द्रव्यसंग्रह नवीन अन्वयार्थ विशेषार्थ और प्रश्नावली सहित~	।)
५	जैनधर्मशिक्षक प्रथमभाग (वालबोध जैन प्रथमभाग	-)
६	जैनधर्म शिक्षक दूसराभाग (वालबोध जैनधर्म दूसराभाग	-)॥
७	जैनधर्मशिक्षक तीसराभाग(वालबोध-जैनधर्म तीसरा	≡)
८	मौखिकवर्णपरिचय छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेकी कल	)॥
९	जैनवालबोध प्रथम भाग	।)
१०	जैनवालबोध द्वितीयभाग	॥)
११	जैनवालबोधक तृतीयभाग	॥।)
१२	जैनवालबोधक चतुर्थ भाग	१।)
१३	जैनस्त्रीशिक्षा प्रथम भाग	=)
१४	जैनस्त्री शिक्षा द्वितीय भाग	≡)
१५	मोक्षशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र अर्थ सहित	१।)
१६	ब्रह्मविलास भैया भगोतीदासकृत नया छपा	२)
१७	रत्नकरंडश्रावकाचार बडा सदासुखजीकृत बडाटाईप खुलेपत्र	५॥
१८	पुरुषार्थसिद्धयुपाय बडा—वादीभकेशरी पं. मक्खनलालकृत	५॥)
१९	चारित्रसार भाषाटीका सहित	२॥)
२०	विमलपुराण भाषावचनिका पं श्रीलालकृत	१॥)
२१	नित्यनियमपूजा ।) अर्थसहित	॥)
२२	भैया पूजासंग्रह १) जिल्द सहित	१।)
२३	चतुर्विंशतिपूजा—रामचंद्रजीकृत	१)

मिलनेका पता—नेमिचंद बाकलीवाल

मालिक—पवित्र जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय

ठि० चंदावाडी पोष्ट—वंबई नं. ४